Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मैं कौन हूँ ?

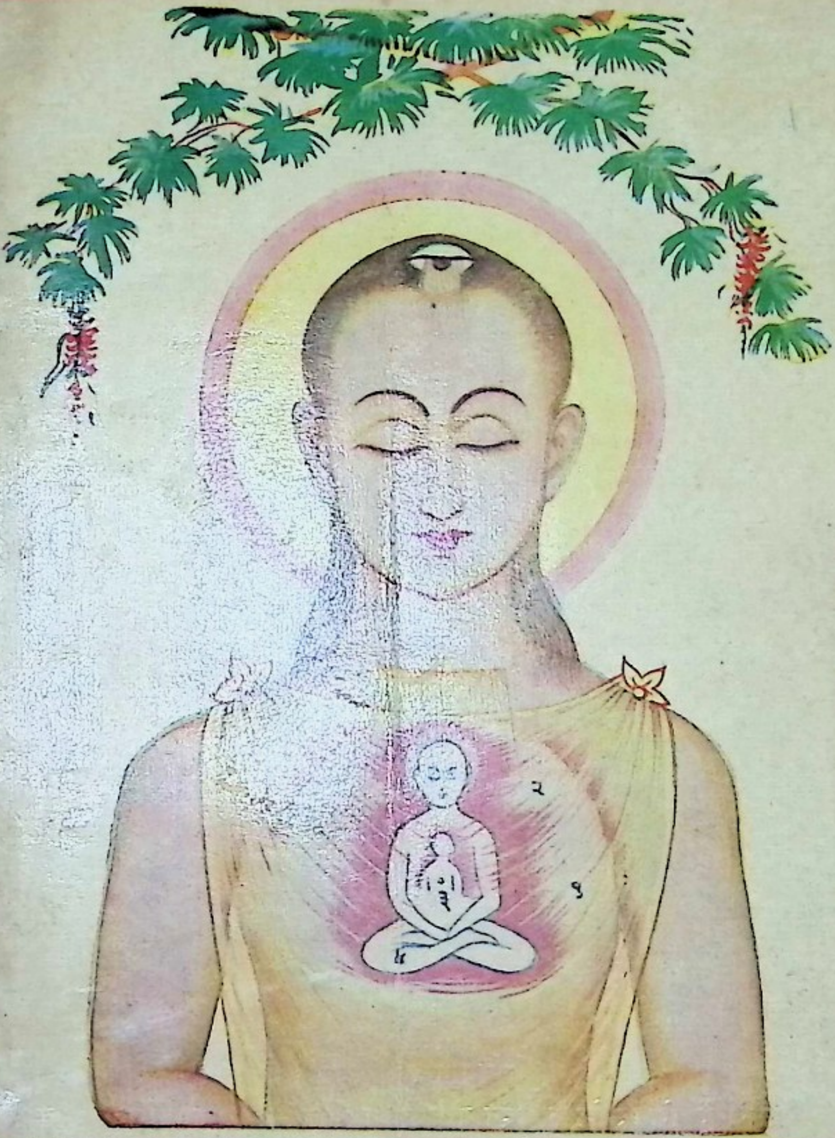

जन-ज्ञान
मासिक

अध्यात्म अंक
दीपावली सम्वत् २०२५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि दयानन्द सरस्वती

जिन्हें शिवरात्रि के दिन बोध हुआ 'मैं कौन हूँ' का उत्तर प्राप्त करने का धरती का, मार्ग दर्शन कर दीपावली के दिन वे चले गए। आइए, हम उन की राह पर चलने का व्रत लें। —संपादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"ओ३म्"

जन ज्ञान (मासिक)

अध्यात्म-अंक

●

मैं कौन हूं ?

लेखक

प्रो० संतराम "आनन्द"

एम. एस-सी.

(भू० पू० प्राध्यापक विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

●

"मानव" शरीर का आध्यात्मिक
और
वैज्ञानिक विवेचन

●

दीपावली : संवत् २०२५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान (मासिक)
१५६७, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५

भारतेन्द्रनाथ "साहित्यालंकार" के संरक्षण
निर्देशन में प्रकाशित

आर्य जनता का अपना प्रतिनिधि प्रकाशन

●

संपादक
भगवान देव शर्मा

वार्षिक मूल्य	इस अंक का मूल्य	वर्ष १
६)	२)	अंक ६
विदेश में		
१२ शिलिंग		

नवम्बर : दीपावली : संवत् २०२५

मुद्रक तथा प्रकाशक श्रीमती राकेशरानी द्वारा जन-ज्ञान प्रकाशन हेतु
रायसीना प्रेस, चमेलियन रोड, दिल्ली में मुद्रित
और १५६७, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५ से प्रकाशित।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रकाश का पर्व और हमारा संकल्प

'ज्ञान" प्रकाश का प्रतीक है। 'वेद' स्वयं आदेश देता है "आरोह तमसा ज्योतिः" अन्धकार (अविद्या) से निकलकर प्रकाश (ज्ञान) की ओर बढ़ो।

और ज्ञान का प्रथम पाठ आरम्भ होता है, अपने को जानने से। जो विद्या मनुष्य को सर्वप्रथम 'मैं' कौन हूं' का उत्तर देने योग्य बनाती है, वह ही 'विद्या' है अन्यथा 'अविद्या'। आज संसार के समस्त शिक्षा-मन्दिरों में और सभी कुछ सिखाया जाता है किन्तु जो पढ़ रहा है वह स्वयं कौन है. इस प्रश्न का उत्तर कहीं भी बताने की व्यवस्था नहीं।

प्रस्तुत अंक में इसी उद्देश्य से दिल्ली विश्वविद्यालय में विज्ञान विभाग के प्राध्यापक श्री संतराम एम० एस-सी० लिखित ग्रन्थ हम अपने पाठकों को भेंट कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ का पारायण कर पाठक जीवन के सत्य को समझेंगे। उन्हें जहां अपने शरीर का, उसके विकास और साधनों का, सृष्टि की विशाल स्थिति और विराट ब्रह्मांड का ज्ञान होगा वहां यह सभी कुछ जान इस सारे चक्र के नियन्ता परमात्मा से मिलने और मिले कौन···वह है क्या ? यह जानने की उत्कण्ठा भी जागेगी।

अंक के प्रकाशन में आर्य विद्वान् पं० सत्यपाल जी "वेदशिरोमणि", एम० ए० का श्रम और सहयोग हमें प्राप्त हुआ। वस्तुतः उनके योगदान की सराहना के लिए हमारे पास शब्द नहीं, हम उनके आभारी हैं। प्रसिद्ध पत्रकार और गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक दैनिक हिन्दुस्तान के सह-सम्पादक पं० क्षितीशकुमार 'वेदालंकार' एम० ए० ने भी अपने निर्देशन और पथप्रदर्शन से हमारा मार्गदर्शन किया उनके हम ऋणी हैं।

लेखक श्री सन्तराम जी ने पुस्तक के प्रकाशन की अनुमति सहर्ष प्रदान की। समय समय पर रुग्ण होते हुए भी उत्साह पूर्वक प्रत्येक संभव योगदान दिया। अतः उनकी उदारता—भावना के लिए हम कृतज्ञ हैं। 'जन-ज्ञान' अपने जीवन के ६ मास के काल में अपने प्रिय पाठकों को यह दूसरा विशेषांक भेंट कर रहा है। हमारा विश्वास है कि प्रभु कृपा व आर्य जनता के स्नेह बल पर हम आगामी ६ मास में २ विशेषांक और भेंट करेंगे।

प्रभु कृपा करें, हमें सद्बुद्धि दें कि अंधकार की गहन रात्रि और तीव्र आंधी में भी हमारे पैर लड़खड़ाएं नहीं, मंजिल की ओर बढ़ते जाएं।

प्रकाश का प्रसार और अन्धकार की समाप्ति के लिए दीप बन कर जलना ही, आज प्रकाश के पावन पर्व पर, ऋषिवर दयानन्द के प्रति हमारी श्रद्धांजलि है।

—भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विषय-सूची

लीजिए अंक, उपस्थित है···क्षितीशकुमार वेदालंकार		५
लेखक की ओर से	···	१७
विषय प्रवेश	···	२०
अन्वेषण	···	२४
मैं कौन हूं के अन्वेषक	···	७१
मैं कौन हूं के प्रसंग में जीवशास्त्र	···	८३
मैं का समष्टि जीवन में स्थान	···	९८
नृ-वंश विज्ञान	···	११२
मैं कौन हूं का व्यक्तिरूप	···	१३२
सृष्टि उत्पत्ति	···	१४९
उपसंहार	···	१६३

प्रार्थना

प्रकाश प्रदाता परमब्रह्म !

ओ३म् ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरुस्ताद्वि
सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः
सतश्च योनिमसतश्च वि विः ॥
(अ० ४–१)

महान् प्रकाशमय ब्रह्म के प्रकाश से युक्त ज्ञानी विद्वान् ब्रह्म के प्रकाश से आत्मा के चारों ओर छाए अन्धकार को दूर करता है ।

ब्रह्मांड को जानकर प्रभु की अपार लीला से परिचित होकर वह सत्य को समझ जीवन में शांति और आनन्द का मार्ग ग्रहण करता है—

हे प्रभु ! प्रकाश दो, ज्ञान दो, अंधकार दूर करो और मुझे सत्य राह पर चलाकर अपनी अमृतमय स्मृति से प्रेरित कर वह ज्ञान दो कि मैं प्रतिपल प्रकाश पर्व मना सकूं ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लीजिए ! अंक उपस्थित है

'मैं कौन हूं'—यह चिरन्तन प्रश्न है। जबसे मनुष्य में चिन्तन-शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ तभी से सबसे पहले इसी प्रश्न ने मनुष्य का ध्यान अपनी ओर खींचा। यह प्रश्न मननशील मानव का ध्यान अपनी ओर कैसे न खींचता ! अपनी आंखें बन्द करके संसार के अन्य सब पदार्थों को देखने से मैं इन्कार कर सकता हूं, परन्तु अपने आप से इन्कार करने का कोई अर्थ नहीं है। बुद्धिशून्य या विक्षिप्त मनुष्य ही वैसा कर सकता है। अपने लिए मैं स्वयं जितना प्रत्यक्ष हूं, उतना और कोई नहीं। सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते और कोई भी क्रिया करते मुझसे अपने अस्तित्व का भान बिसराया नहीं जाता। वह सम्भव ही नहीं है।

सेमेटिक मत आदम अर्थात आदिम मानव के विषय में इस प्रकार का वर्णन करते हैं कि वह अदन के बाग में अपने आपको भूला हुआ और अपने अस्तित्व तक से अनभिज्ञ यत्र-तत्र निरुद्देश्य परिभ्रमण करता रहता था, किन्तु जब शैतान की प्रेरणा से हव्वा आदम के पीछे पड़ गई कि हमें ज्ञान-वृक्ष का फल अवश्य खाना चाहिए, भले ही खुदा ने उस फल का खाना वर्जित कर रखा हो; और अन्ततः आदम और हव्वा ने ज्ञान-वृक्ष का फल तोड़कर खा लिया, तब वे अपने शरीर, अपने अस्तित्व और अपनी इच्छाओं से अनभिज्ञ नहीं रह सके। इस सब वर्णन का भी यही अर्थ है कि मनुष्य में ज्ञान अर्थात् चिन्तन-शक्ति का उदय होते ही सबसे पहले उसका ध्यान अपनी ओर गया और वह अपने आप से पूछने लगा कि मैं कौन हूं, क्या हूं, कहां से आया हूं, क्यों आया हूं, मेरे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अस्तित्व का प्रयोजन क्या है ?

पौरस्त्य जगत् और पाश्चात्य जगत् में सर्वत्र इस प्रश्न ने मनीषियों के मन को उद्वेलित किया है और उन्होंने अपने-अपने ढंग से इस प्रश्न के समाधान का प्रयत्न किया है। पूर्व में यदि दर्शन-परम्परा का श्रीगणेश इसी प्रश्न से होता है, तो पश्चिम में भी समस्त फिलासफी का आधार यही प्रश्न है। निस्सन्देह पूर्व और पश्चिम की विचार-सरणि भिन्न है, approach भी भिन्न है, परन्तु सत्य क्योंकि मूलतः सदा एक होता है, इसलिए इनकी विचार-सरणियों, शैलियों और बाह्यरूपों में भेद होते हुए भी निष्कर्ष सबका एक ही है। जबसे विज्ञान बीच में आ कूदा है तबसे उसका प्रभाव इतना सर्वग्रासी रहा है कि अध्यात्म और दर्शन भी उसके सामने विनत हो गए और अतीन्द्रिय तथा परोक्ष वस्तुओं के लिए भी विज्ञान की ही कसौटी अपनायी जाने लगी। हालांकि विज्ञान अपनी ओर से डिण्डिम-घोष के साथ यह घोषणा करता रहा कि अतीन्द्रिय जगत् मेरा विचार-क्षेत्र नहीं है, परन्तु विज्ञान के पीछे दीवाना इस युग का मानव इस तर्क-संगत बात को भी सहसा अपने गले के नीचे नहीं उतार सका। उसने समझा कि विज्ञान के रूप में मुझे 'अलादीन का चिराग' हाथ लग गया है और जब अलादीन के इस चिराग की बदौलत मैंने जल-थल तथा नभ में इतने चमत्कारों की सिद्धि प्राप्त की है तब उस चिराग के माध्यम से अध्यात्म-क्षेत्र में भी अवश्य कोई न कोई चमत्कार करके दिखा सकूंगा।

परन्तु इसे विज्ञान की हिमाकत के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता। 'हिमाकत' शब्द का प्रयोग करने से हमारा अभिप्राय विज्ञान को हिकारत की नजर से देखना या उसे उस उच्च सिंहासन से च्युत करना नहीं है। परन्तु अध्यात्म के क्षेत्र में विज्ञान के हस्तक्षेप द्वारा किन्हीं निष्कर्षों की प्राप्ति की आशा वैसे ही दुराशा-मात्र है जैसे हलवाई की दुकान से कपड़ा प्राप्त करने की आशा। बेशक आज कल का विज्ञान किसी विशिष्ट पण्य वस्तु की दुकान न रहकर बिसाती की दुकान बन गया है—जिसमें दैनिक जीवन के उपयोग की आम वस्तुएं प्रायः मिल जाती हैं, परन्तु फिर भी ईमानदारी की बात यह है कि जो विषय विज्ञान

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का विचार-क्षेत्र नहीं है उसकी आशा विज्ञान से नहीं की जानी चाहिए—अर्थात् अध्यात्म क्षेत्र के विवादग्रस्त अभियोगों के निर्णयार्थ न्यायाधीश का पद विज्ञान को नहीं सौंपा जाना चाहिए।

परन्तु **'मैं कौन हूं'**—यह प्रश्न क्या केवल अध्यात्म से ही सम्बन्धित है, भौतिक विज्ञान से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है ? (यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि 'विज्ञान' शब्द का प्रयोग हम उसके प्रचलित अर्थ—'भौतिक ज्ञान' में ही कर रहे हैं, न कि औपनिषदिक 'विज्ञान' के अर्थ में; क्योंकि औपनिषदिक 'विज्ञान' शब्द तो अध्यात्म का ही पर्याय है, भौतिक विज्ञान का नहीं।) सच तो यह है कि पाश्चात्य विचारकों ने **'मैं कौन हूं'**—इस प्रश्न के भौतिक विज्ञान वाले पहलू का समाधान करने का अधिक प्रयत्न किया है और पौरस्त्य विचारकों ने इस प्रश्न के आध्यात्मिक पहलू का। परन्तु इतने मात्र से यह तो स्पष्ट हो ही जाएगा कि **'मैं कौन हूं'**—इस प्रश्न का सम्बन्ध अध्यात्म और विज्ञान दोनों से है, इसलिए इस प्रश्न का अन्तिम समाधान खोजने के लिए दोनों का ही आश्रय लेना होगा। किसी एक का आश्रय लेने से जो समाधान प्राप्त होगा, वह एकांगी होगा।

वेद एकांगी ज्ञान का समर्थक नहीं है। वेद जितना बड़ा ग्रंथ अध्यात्म का है, उतना ही बड़ा ग्रंथ विज्ञान का भी है। इसीलिए उसने

"विद्यां च अविद्यां च यस्तद्वेदोभय ँ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया ऽमृतमश्नुते॥"

—का उपदेश दिया है। अर्थात्-वेद की दृष्टि में विद्या और अविद्या दोनों का ज्ञान आवश्यक है। इस सन्दर्भ में 'विद्या' और 'अविद्या दोनों शब्द पारिभाषिक हैं। विद्या का अर्थ है—परा विद्या, इसी को हम आधुनिक शब्दावलि में अध्यात्म की संज्ञा देते हैं। अविद्या का अर्थ है—अपरा विद्या। अर्थात् अध्यात्म उत्कृष्ट विद्या है और विज्ञान अपरा एवं इससे निचले स्तर की विद्या है।

वेद की दृष्टि में **'मैं कौन हूं'**—इस प्रश्न का समाधान अध्यात्म और विज्ञान दोनों से समन्वित है। वेद का यह निश्चयात्मक समाधान न केवल गम्भीर आर्ष साहित्य में, अपितु सामान्य लौकिक संस्कृत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साहित्य में भी छाया पड़ा है। आर्यों की वही मूल दृष्टि रही है। प्राचीन ऋषियों ने उसी आर्य दृष्टि का सहारा लेकर न केवल **'मैं कौन हूं'** का समाधान किया है, प्रत्युत **'मुझसे भिन्न शेष संसार क्या है'**—इस प्रश्न का भी समाधान किया है। सच तो यह है कि प्रथम प्रश्न का उचित समाधान मिलने पर दूसरे प्रश्न का समाधान अपने आप मिल जाता है। क्योंकि जिस सृष्टि का निर्माण किसी बुद्धिमान् चित्-शक्ति द्वारा हुआ हो उसमें असंगति और विसंगति नहीं हो सकती, उसमें अव्यवस्था नहीं हो सकती, उसमें व्यष्टि और समष्टि में परस्पर विरोध नहीं हो सकता। इसीलिए गीता में कहा है—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

इस सृष्टि में कहीं अभिक्रम का नाश नहीं है, न ही कहीं कोई प्रत्यवाय विद्यमान है।

सभी शास्त्रों में और समस्त लौकिक संस्कृत साहित्य में जो दृष्टि-कोण छाया हुआ है, वह कौन-सा है? इसके उत्तर के लिए हम व्याकरण से प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि व्याकरण समस्त शास्त्रों का मुख कहा जाता है।

व्याकरण में तीन पुरुष माने जाते हैं—प्रथम, मध्यम, उत्तम। प्रथम पुरुष है—'सः', मध्यम पुरुष है—'त्वम्' और उत्तम पुरुष है—'अहम्।'

'मैं कौन हूं'—जब इस प्रश्न पर विचार आरम्भ करेंगे, तब सबसे पहले अहम् अर्थात उत्तम पुरुष से आरम्भ करना होगा। 'अस्मत्' शब्द की प्रथमा का एक वचन है—'अहम्।' 'अस्मत्' का अर्थ क्या है'अस्+मत् अर्थात अस्तित्ववान्, जिसका अस्तित्व है ऐसा पुरुष। यह चिन्तन की पहली सीढ़ी है, यह ज्ञान का प्रथम उन्मेष है, यह अपने अस्तित्व का सबसे पहला भान है, यह अपनी सत्ता की अपने मन में सबसे पहली अनुभूति है कि मैं अस्तित्ववान् हूं। और चाहे किसी पदार्थ का अस्तित्व हो या न हो, मेरा अस्तित्व है। मैं हूं, किसी की अपेक्षा से नहीं हूं, निरपेक्ष हूं, मैं हूं—यही सबसे बड़ी बात है। इसी 'अस्मत्' शब्द का एक वचन है—अहम्। 'अ+हं' अर्थात जिसका त्याग न हो सके। (अ) नहीं (हा) त्याग जिसका, वह है—'अ—हं। सारे संसार का त्याग किया जा सकता है, किन्तु मेरा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

त्याग नहीं किया जा सकता, क्योंकि मैं अस्तित्ववान् हूं। और सचमुच जब तक मेरा अस्तित्व है, तब तक मेरी उपेक्षा नहीं हो सकती, मेरा त्याग नहीं किया जा सकता। मैं जीते जी अपना त्याग कैसे होने दूंगा? मेरे अस्तित्व का प्रमाण ही यह है कि मेरा त्याग नहीं किया जा सकता।

और यह 'अस्मत्' और 'अहं' कौन है? यह उत्तम पुरुष है, अर्थात् पुरुषोत्तम है। उत्तम पुरुष और पुरुषोत्तम, एक ही बात है। 'अहं ब्रह्म अस्मि'—का अर्थ भी यही है कि 'मैं बड़ी शक्ति वाला हूं,' मैं सर्वश्रेष्ठ हूं, मैं उत्तम पुरुष अथवा पुरुषोत्तम हूं,' मैं दीन-हीन नहीं हूं, मैं तुच्छ अथवा उपेक्षणीय नहीं हूं। ऐसी भावना मन में आते ही मननशील मानव का मुख कैसे आत्मगौरव की दीप्ति से देदीप्यमान हो उठता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे मैं शक्ति का पुंज हूं, अदीन हूं, परोपजीवी नहीं हूं, परमुखापेक्षी नहीं हूं, अपने ही बल पर अपने पांवों पर खड़ा हूं। संसार में जो भी कुछ है, सब मेरी ही अपेक्षा से है, मैं नहीं हूं तो उस सबके होने का भी कोई अर्थ नहीं है। '**सम्मीलने नयनयोः नहि किञ्चिदस्ति**'—जिस दिन मैं आंखें बन्द कर लूंगा उस दिन यह सब दृश्यमान जगत् भी नहीं रहेगा, कम से कम मेरे लिए। मैं अब भी आंखें बन्द कर लूं तो यह संसार कहां है? पर मैं? मैं तो हूं, आंखें बन्द कर लेने पर भी हूं, मुझे प्रतिक्षण अपने अस्तित्व का आभास होता रहता है। इतना सर्वातिशायी है मेरा अस्तित्व।

अस्मत है, तभी युष्मत् भी है। उत्तम पुरुष है, तभी मध्यम पुरुष है। यदि 'अस्मत्' न होता, तो 'युष्मत' कहां से आता? अस्मत् की ही बदौलत तो युष्मत् का अस्तित्व है। क्योंकि 'युष्मत्' का अर्थ है 'आयुष्+मत्' मेरे आशीर्वाद से आयुष्य प्राप्त करने वाला। मैंने ही तुझे अस्तित्व प्रदान किया है मैं न होता तो तेरा अस्तित्व भी न होता। 'मैं' न होऊं तो तुझे 'तू' कहने वाला भी कौन है? 'तू है' ऐसा मैंने कहा, तभी तो तुझे अस्तित्व प्राप्त हुआ। इसीलिए मैं उत्तम पुरुष हूं और तू मध्यम पुरुष है, क्योंकि मेरे अस्तित्व के बिना तेरा अस्तित्व नहीं है।

मैं और तू के अतिरिक्त एक तृतीय पुरुष भी है—वह है 'तत्—अर्थात्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वह। वह अस्मत् की तरह अस्तित्ववान् भी नहीं है और युष्मत् की तरह मेरे आशीर्वाद द्वारा आयुष्य प्राप्त करने वाला भी नहीं है। ऐसा है यह तृतीय पुरुष।

मैं, तू, वह--इन तीन पुरुषों से यह समस्त संसार व्याप्त है। इनमें 'मैं' उत्तम पुरुष है। सबसे उच्च है 'मैं'। इस मैं के अस्तित्व से ही सबको अस्तित्व प्राप्त हुआ है। मैं अपने अस्तित्व से सदा शोभायमान तथा दूसरों को अस्तित्व प्रदान करने वाला सबसे अधिक सामर्थ्यशाली उत्तम पुरुष हूं।

व्याकरण के इन तीन शब्दों में ही कितना गूढ़ तत्वज्ञान भरा है?

यही है ऋषियों की दृष्टि जो सब शास्त्रों के मुख रूप व्याकरण के माध्यम से समस्त वैदिक वाङ्मय में छाई हुई है। यही दृष्टिकोण समस्त अध्यात्मज्ञान का आधार है। व्याकरण के इन तीन शब्दों में जहां इस बात का उत्तर आ गया कि 'मैं कौन हूं' वहां इस बात का भी उत्तर आ गया कि 'तू कौन है' और साथ ही इस प्रश्न का भी उत्तर आ गया कि वह (अर्थात् संसार) क्या है?

यह अस्तित्वमय जितना दृश्यमान जगत् है उसके सबसे उच्च शिखर पर यदि कोई आसीन है तो वह 'मैं' हूं, मैं उत्तम पुरुष हूं, 'मैं' पुरुषोत्तम हूं, मैं नर के रूप में नारायण हूं, मैं शक्ति का भण्डार हूं।

परन्तु पौराणिक काल में अवैदिक विचारधारा भारतवर्ष में फैल गई। उसी समय सर्वत्र इस भावना का प्रसार हुआ कि—

पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसंभव:

"—अर्थात् मैं पापी हूं, पापकर्म करने वाला हूं, पापात्मा हूं और पाप के कारण ही मेरा जन्म हुआ है।" जो उत्तम पुरुष और पुरुषोत्तम था, उसकी इतनी अवमानना, उसका इतना पतन? समस्त वेदों और उपनिषदों में ऐसा एक भी वाक्य नहीं आया जिसमें मनुष्य के जन्म को पापमूलक बताया गया हो, जिसमें उसका इस प्रकार अपमान किया गया हो। जो 'अमृत का पुत्र' है (शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्रा:), वह पाप की औलाद कैसे होगा? मनुष्य-योनि पूर्वजन्म के सुकृतों और पुण्यों का परिणाम है, फिर वह पाप योनि कैसे हो सकती है? मनुष्य जन्म को पापमूलक मानने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की प्रवृत्ति कदाचित् बौद्धधर्म से पुराणों में आई और बौद्धधर्म से ही वह ईसाइयत और इस्लाम जैसे सेमेटिक मतों में गई। मनुष्य-जाति के अधः-पतन का बहुत कुछ उत्तरदायित्व इस अवैदिक विचारधारा के सिर डाला जा सकता है।

'मैं कौन हूं'—इसका स्पष्ट उत्तर वेद ने यों दिया है—

अहं इन्द्रो न पराजिग्य इद्धनम्। न मृत्यवे अवतस्थे कदाचन॥

ऋक् १०।४८।५

—"मैं इन्द्र हू, मेरा धन मुझे पराजित करके कोई नहीं छीन सकता। मैं अपने ऐश्वर्य के कारण कभी पराजित नहीं हो सकता, मैं कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकता।"

'मैं पुरुषोत्तम हूं,' 'मैं ब्रह्म हूं,' 'मैं इन्द्र हूं'—इन सब वाक्यों का एक ही अर्थ है और वह यह कि 'मैं शक्तिमान् हूं, मैं शक्ति का केन्द्र हूं। मेरे इन्द्र होने का ही यह स्पष्टीकरण है कि मेरा कोई पराभव नहीं कर सकता। 'मैं' नाम की जो वस्तु है वह शक्तिमान् है या निर्बल है, इस प्रश्न का उत्तर इस मन्त्र ने इस रूप में दिया कि मैं शक्तिमान् हूं, मैं इन्द्र हूं। इन्द्र का अर्थ है शत्रुओं विदारण करने वाला (इन्+द्र)। मैं इन्द्र हूं इसका यही अर्थ है कि मैं इतना सामर्थ्यवान् हूं कि अपने समस्त शत्रुओं का विदारण कर सकता हूं और मेरा कोई पराभव नहीं कर सकता।

परन्तु जिस प्रकार सामर्थ्यशाली विद्युत् समस्त पदार्थों में विद्यमान है, किन्तु घर्षणादि प्रयोगों से उसे प्रकट करना आवश्यक होता है, इसी प्रकार 'मैं के अन्दर यह इन्द्रशक्ति छिपी हुई है जो साधना और अनुष्ठान द्वारा प्रकट होती है। यह तो निश्चित है कि शक्ति है, और 'मैं' निर्बल नहीं, सबल हूं। परन्तु किसी में यह शक्ति प्रसुप्त होती है, किसी में प्रकट। इसके प्रसुप्त होने और प्रकट होने के स्तर में अन्तर हो सकता है, किन्तु वह शक्ति है अवश्य। उस शक्ति का सम्पादन ही मानव-जीवन की साधना है। और यही मानव-जीवन की उपयोगिता है।

इन्द्र की एक सभा है, इन्द्र उस सभा का अध्यक्ष है, अन्य सब देव उस सभा के सभासद हैं। इन्द्र देवताओं का राजा है। जहां इन्द्र होगा वहीं उसके सहचारी देव होने चाहिएं। अतः यदि 'मैं' इन्द्र है तो शेष

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सब देव भी इसके आसपास ही होने चाहिएं।

सब जानते हैं कि शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और कुछ अन्तरिन्द्रियां है। यह 'इन्द्रिय' शब्द स्वयं ही अपना रहस्य खोल देता है। इन्द्रिय का अर्थ है—इन्द्र की शक्ति। ये सारी इन्द्रियां इन्द्र की शक्तियां हैं। यदि कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां तथा अन्तरिन्द्रियां इन्द्र की शक्तियां हैं तो इन इन्द्रियों में अपनी शक्ति भेजने वाला इन्द्र भी कहीं आसपास ही छिपा होगा। इन्द्रियों का नामकरण 'इन्द्र की शक्ति' होने के कारण ही हुआ है, अतः इन इन्द्रियों का संचालक, अधिष्ठाता और अधिपति जो हो, वही इन्द्र होना चाहिए। वह इन्द्र कहां है? वह इन्द्र इसी शरीर के अन्दर होना चाहिए। प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि देह का जो स्वामी 'मैं' है, वह इन्द्र है और उसी की शक्ति सब इन्द्रियों में फैली हुई है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि आत्मा ही इन्द्र है और उसीकी शक्ति से संचालित होने के कारण इन्द्रियां 'इन्द्रिय' कहलाती हैं।

अब तक के विवरण से यह स्पष्ट हुआ कि आत्मा के रूप में इन्द्र इसी शरीर में निवास करता है। जहां इन्द्र निवास करता है वही स्वर्ग है, वही अमरावती है, वही नन्दनवन है। इसी अमरावती में देवताओं की सभा जुड़ती है और इन्द्र उस देवसभा की अध्यक्षता तथा संचालन करता है।

इन्द्रियां, देवता कैसे हैं, इसका स्पष्टीकरण ऐतरेय उपनिषद् में हुआ है। तद्यथा—

अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्, वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्, आदित्यश्चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत्, दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्, ओषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन्, चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्, मृत्युः अपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्, आपो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्। (ऐ० उ० १।२)

—"अग्नि देवता वाणी बनकर मुख में प्रविष्ट हुआ, वायु देवता प्राण बनकर नासिका में प्रविष्ट हुआ, सूर्य नेत्र बनकर आंख में प्रविष्ट हुआ, दिशाएं श्रोत्रेन्द्रिय बनकर कानों में प्रविष्ट हुईं, ओषधि-वनस्पतियां लोम बनकर त्वचा में प्रविष्ट हुईं, चन्द्रमा मन बनकर हृदय में प्रविष्ट

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हुआ, मृत्यु अपान बनकर नाभि में प्रविष्ट हुई और जल वीर्य बनकर शिश्न में प्रविष्ट हुआ।" इस प्रकार भिन्न-भिन्न देवता भिन्न-भिन्न भागों में आकर बसते हैं। फिर यह शरीर देवमन्दिर और अमरावती न हुआ तो क्या हुआ ?

इसी का स्पष्टीकरण अथर्ववेद में इस प्रकार हुआ है—

त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे सर्वे समाहिता:।
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवता अंगे गात्रा विभेजिरे ॥
तान् वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेतो ब्रह्मविदो विदु:।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥

तेंतीस देव शरीर के विभिन्न अवयवों तथा इन्द्रियों में आकर रहते हैं। शरीर की प्रत्येक इन्द्रियों में किसी न किसी देवता का वास है। इस शरीर में विभिन्न इन्द्रियों के रूप में देवता उसी प्रकार आकर निवास करते हैं जैसे गौएं गौशाला में आकर रहती हैं।

अब प्रश्न होगा कि वे तेंतीस देव कौन से हैं ? ऊपर ऐतरेय उपनिषद् के उद्धरण में यद्यपि उनका परिगणन हो गया है, किन्तु फिर भी विषय के स्पष्टीकरण के लिए उनका दुहरा देना आवश्यक है – पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच मुख्य प्राण (प्राण, अपान व्यान, समान, उदान) और पांच उपप्राण (नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय), मस्तिष्क, पृष्ठवंश, दो फुफ्फुस (फेफड़े), हृदय, यकृत, प्लीहा, दो मूत्राशय, पेट, मलाशय तथा मन और बुद्धि। शरीर के ये तेंतीस प्रान्त अथवा मुख्य अवयव हैं और इन सब प्रान्तों में किसी न किसी देवता का निवास-स्थान है। और इन सब देवताओं का अधिष्ठाता है इन्द्र, अथवा आत्मा। शरीर के इन सब अवयवों अथवा प्रान्तों में एक-एक देवता अधिकारी के रूप में विद्यमान है किन्तु उसके अधिकारों का मूल स्रोत इन्द्र के हाथ है। इन्द्र ने ही उन सब देवताओं को प्रान्तपति बनाकर उन-उन प्रान्तों में भेजा है। केन्द्र का आदेश पालन करना इन प्रान्तपतियों का कर्तव्य है। स्वेच्छाचार करना या स्वयं निरंकुश शासक बन बैठना उनके कर्तव्य की अवहेलना होगी और तब इस शरीर रूपी देवसभा में अव्यवस्था, उत्पात और अशान्ति पैदा हो जाएगी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'मैं कौन हूं'—इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मैं इन्द्र हूं, आत्मा हूं, पुरुषोत्तम हूं, शक्ति का पुंज हूं। किन्तु जैसे विना राज्य के राजा शब्द व्यर्थ है और बिना राजकर्मचारियों के वह राजा राज्य का संचालन नहीं कर सकता, इसी प्रकार बिना शरीर के आत्मा कहां टिकेगा ? और शरीर भी यदि केवल मांस का लोथड़ा मात्र हो तो शरीर की जीवन-यात्रा कैसे चलेगी ? इसलिए आत्मा के साथ शरीर और इन्द्रियां भी अपने-आप जुड़ती चली आती हैं। शरीर, इन्द्रिय और आत्मा से संयुक्त 'मैं' का जो चित्र सामने आता है, उसे ही पूर्ण कहा जा सकता है। बिना शरीर के आत्मा निष्क्रिय है और बिना आत्मा के शरीर निष्क्रिय है। इसी को यों कहा जा सकता है कि शव के साथ जब शक्ति का योग होता है, तभी वह शिव बनता है, बिना शक्ति के शिव भी सिवाय शव के और कुछ नहीं है।

कठोपनिषद् में बड़ी सुन्दर उपमा देकर विषय का विशदीकरण किया गया है :

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

—आत्मा रथी अर्थात् रथ का स्वामी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है, और मन लगाम है। इन्द्रियां घोड़े हैं जो विषयों में संचार करते हैं। आत्मा इन्द्रिय-मन मिलकर भोक्ता कहलाता है।

यहां शरीर को रथ की और इन्द्रियों को घोड़े की उपमा देकर संयम कैसे करना चाहिए, इसका उपदेश दिया है। जिस तरह रथ के घोड़े सारथी के आधीन ही रहने चाहिएं, सारथी के हाथ में लगाम रहनी चाहिए और सारथी को अच्छे मार्ग से रथ को इष्ट स्थान तक पहुंचाना चाहिए, और स्वयं सारथी को रथ के स्वामी का वशंवद होना चाहिए, इसी तरह सब इन्द्रियां, सब अंग और सब अवयव अपने अधीन रहने चाहिए। इनमें से किसी एक का भी स्वेच्छाचार होगा तो विनाश अवश्यसम्भावी है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रथ में जोते गए घोड़े सुशिक्षित और सधे हुए होने चाहिएं। यदि घोड़े सधे हुए न हों, मुँहजोर हों, तो वे सारथी के अधीन नहीं रहेंगे और रथ को किसी खड्ड में गिरा देंगे। सारथी यदि अश्व-चालन में कुशल न हो तो वह अच्छे सुशिक्षित घोड़ों को भी ठीक ढंग से चला नहीं सकेगा और रथ को इधर-उधर गिरा देगा। रथ यदि सुदृढ़ न हो तो मार्ग में ही उसके टूट जाने का खतरा रहेगा और रथ का स्वामी गन्तव्य स्थान तक पहुंच नहीं पाएगा। घोड़ों की लगामें अच्छी न हों तो अच्छे घोड़े भी ठीक ढंग से चलाए नहीं जा सकेंगे और लगाम बीच में ही धोखा दे जाएगी। इसके अलावा मार्ग भी सीधा और सरल होना चाहिए, यदि गड्ढों वाला और ऊंचा नीचा होगा तो रथ, घोड़े और सारथी सभी के गिरने की सम्भावना बनी रहेगी।

जीवात्मा (इन्द्र) को अपने मन, बुद्धि, और इन्द्रियों को किस प्रकार संयम में रख कर शरीररूपी रथ से गन्तव्य स्थान तक पहुंचना चाहिए, इसका जैसा सुन्दर वर्णन इस उपमा के द्वारा किया गया है, वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

इस प्रकार 'मैं' कौन हूं, इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर होगा—आत्म-इद्रिय-मन से युक्त जो भोक्ता है, वही 'मैं' है।

बाह्य संसार के पदार्थों के सम्बन्ध में अपनी प्रयोगशालाओं में परीक्षण करते-करते आधुनिक वैज्ञानिक 'मैं' की खोज शरीर से अथवा तृतीय पुरुष से प्रारम्भ करते हैं, जब कि भारतीय चिन्तक उत्तम पुरुष से प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि मैं का सम्बन्ध है ही उत्तम पुरुष से। परन्तु पाश्चात्य वैज्ञानिक भी खोज करते-करते शरीर से परे इन्द्रियों, इन्द्रियों से परे मन और मन से भी परे बुद्धितत्व तक पहुंच गए। इनका अस्थिविज्ञान (Anatomy) शरीर से, शरीरशास्त्र (Physiology) इन्द्रियों की क्रियाओं से, उनका मनोविज्ञान (Psychology) मन से और उनका दर्शनशास्त्र (Philosophy) बुद्धि से सम्बद्ध है। इस बुद्धि से भी परे जहां आत्मा का क्षेत्र आता है वहां आधुनिक वैज्ञानिक उसे अतीन्द्रिय ज्ञान या अध्यात्मविद्या का क्षेत्र कहकर छुटी पा लेते हैं और ऐसा भाव प्रदर्शित करते हैं जैसे कि उनके जैसे बुद्धिवादी लोगों के लिए यह क्षेत्र वर्जित है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

या केवल अबुद्धिवादी लोग ही इस क्षेत्र में पदार्पण के अधिकारी हैं। परन्तु उन्हें कौन समझाए कि बुद्धि तो केवल सारथी है, रथ का वास्तविक स्वामी नहीं। रथ का स्वामी जो 'मैं' है वह तो बुद्धि से भिन्न है, वह तो आत्मा है।

परन्तु इसे अभी विज्ञान का अन्तिम उत्तर नहीं मानना चाहिए। जिस प्रकार विज्ञान की प्रत्येक शाखा अन्त में मात्र गणित में परिवर्तित हो जाती है, उसी प्रकार, यह नितान्त सम्भव है कि आज का समस्त विज्ञान भी किसी दिन अध्यात्म चिन्ता में या Metaphysics में परिणत हो जाए। जब से इस पृथ्वी के विज्ञान ने हाथ बढ़ाकर अन्य ग्रहों के स्पर्श का भी अनुभव प्राप्त कर लिया है, तब से यह सम्भावना और अधिक बढ़ गई है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक स्वयं विज्ञान के पण्डित हैं और 'मैं' कौन हूं' की खोज में विज्ञान हमें कहाँ तक ले जा सकता है, इसका उन्होंने सोपपत्तिक वर्णन किया है। जिन प्रश्नों का उत्तर अभी विज्ञान ने नहीं दिया उन्हें स्वीकार करने में उन्होंने संकोच नहीं किया और अपनी दृष्टि लगातार वैदिक विचारधारा की पुष्टि की ओर रखी है। पाठक पुस्तक को पढ़ेंगे तो लेखक की सफलता का स्वयं अनुमान लगा लेंगे। हम तो यह बौद्धिक भोजन पाठकों को परोस भर रहे हैं। जब भोजन सामने आ जावे तब इधर-उधर की बातों में समय लगाना अच्छा नहीं जंचता। अब यह पुस्तक आपके सामने है, आप इसे पढ़िए, मानसिक और बौद्धिक तृप्ति-लाभ कीजिए और बीच के काल-वाहक इस पुरस्कर्ता को मन से निकाल भी दें तो कोई हर्ज नहीं है।

लीजिए, अंक उपस्थित है।

—क्षितीश वेदालंकार
सह-संपादक
दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली

१-१०-६८

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लेखक की ओर से !

'मैं कौन हूं ?' के उत्तर की खोज का आरम्भ इस पुस्तक से नहीं, अपितु यह एक बहुत पुरानी कथा है। भारत का दार्शनिक साहित्य इसकी गवेषणा के संकलन का नाम है। उपनिषद् भी ऋषियों की आत्म-निरीक्षण की पिपासा के ही तो परिणाम हैं।

ऐसे साहित्य के पठन-पाठन से ज्ञात होता है कि भारतीय विद्वानों ने जीवन के दोनों पहलुओं को समझा था। जीव को जीव-गृह में प्रवेश करने पर ही इसको 'मैं' का रूप माना। परन्तु इन दोनों की तुलना में शरीर को क्षण भंगुर समझ कर मनुष्य का उद्देश्य केवल आत्म-तत्त्व की ओर ध्यान देना ही जरूरी समझा। इसलिए हमारे कुछ विद्वानों ने 'धर्म', 'अर्थ', और 'काम' की अपेक्षा मुक्ति अथवा निर्वाण के सिद्धान्तों को ही जनता के सामने रखा, जिससे देश का भौतिक वैभव जाता रहा। व्यक्तित्व तो कुछ उभरा, परन्तु समाज पूर्णतः नष्ट हो गया। इससे एक और परिणाम जो निकला वह यह था, कि देश में प्रचलित ऐसे ज्ञान या अज्ञान के कारण किसी अनजाने स्वर्ग की आशा में रहने वालों ने देश को नरक बना दिया।

लगभग एक शताब्दी बीत चुकी है, जबकि ऋषि दयानन्द ने इस त्रुटि को देखा, और बताया कि वेद के अनुसार, "इस संसार में जो सांसारिक सुख है, वही सामान्य स्वर्ग ·· कहलाता है"। इस वैदिक सच्चाई के फिर प्रकट होने से हमारे विचार में तो कुछ परिवर्तन हुआ, मगर हमारे स्वाध्याय की क्रिया में कोई अन्तर नहीं हो पाया। अर्थात रट को ही स्वाध्याय समझा, जिससे कि हमारे हृदय के अन्दर मौलिक चिन्तन का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अभाव हो गया। चिन्तन जीवन का सार है, और जीवन को समझने के लिए अत्यावश्यक है। इसलिए ऐसा स्वाध्याय जो बिना चिन्तन के होता है अस्तित्व रहित होने के कारण बेकार है। क्या इस पुस्तक से ऐसे मौलिक चिन्तनों का उद्भव हो सकेगा ? लेखक की आशा तो है, परन्तु इसका उत्तर तो पाठक ही दे सकेंगे।

पश्चिमी विद्वानों ने भी 'मैं' की खोज की, और कर भी रहे हैं। 'Who am I?' के शीर्षक से एक-आध पुस्तक का प्रकाशन हो भी चुका है। इनके सिद्धान्त अनुसार 'मैं' का आत्मभाव केवल शरीर के गुण और स्वभाव ही होते हैं, जो कर्मज और जन्मज दोनों ही हो सकते हैं। और इनका कारण उत्पत्ति के बीज कणों में मानते हैं, जिनका पर्याय आदि पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आ रहा है। इन सिद्धान्तों को समझने के लिए कुछ जीव-शास्त्र की जानकारी की आवश्यकता है, जिसका कुछ संक्षिप्त वर्णन आपको इस पुस्तक में मिलेगा। और जिससे यह भी स्पष्ट हो जायगा, कि यह सिद्धान्त हमारे सनातन सिद्धान्तों के कोई विपरीत नहीं, बल्कि उनकी एक उच्चकोटि की व्याख्या हैं, अथवा अतीत काल का दर्शन एक अच्छे शुद्ध दर्पण से है। ऐसे नए और पुरानों में अगर कोई प्रतिकूलता दृष्टिगोचर होती है, तो वह केवल हमारे समझने में हो सकती है। इसके अतिरिक्त 'आत्म-जिज्ञासा' के लिए आत्मानात्म विवेक भी जरूरी है, क्योंकि सेंद्रिय जगत में जीवन सर्वव्यापक है। व्यक्ति और समष्टि का एक गूढ़ा गठजोड़ है। इन तत्त्वों की स्पष्टता के लिए कुछ उद्विकासी सृष्टि का वर्णन भी जरूरी समझा गया है। शरीरों के रूप में आत्म-भाव के दृष्टार्थ जीवन वृक्ष की व्याख्या भी नए और पुराने ढंग से की गई है। कई प्रकार के जीवों से परिचय कराकर इनकी नौ श्रेणियों को विकासी वृक्ष की शाखाओं का रूप दिया गया है, जिससे जीवन की सामान्यता स्पष्ट हो जाती है।

पुस्तक का आरम्भ एक जिज्ञासु से है, जो हर जड़-जंगम के अन्दर व्यक्तित्व को अनुभव करता है। परन्तु सुख के लिए जो प्राणियों की एक बड़ी आकांक्षा है, बंधन को जरूरी समझने लग गया है। योग शास्त्र में वर्णित अष्टांग योग के पहले दो अंगों का स्वाध्याय करता है। 'मैं' की खोज

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करने वाले कुछ महापुरुषों के जीवन से और उनके दार्शनिक विचारों से अपने-आपको रंग लेता है। दूसरे और तीसरे भाग में 'मैं' के समष्टि और व्यक्ति रूपों को समझने के लिए जीव-शास्त्र, नृवंश विज्ञान (Anthropology) आदि की जानकारी में संलग्न हो जाता है। अंतरिक्ष की भी देख-भाल करता है। अन्त में जीवन को सर्वव्यापक और एक सार अथवा अविरल पाकर अपने वास्तविक रूप को समझता है, जिससे उसके अन्दर सुन्दरता, सुशीलता अथवा नम्रता का प्रवेश हो जाता है। अभिमान रूपी पखेरू, हृदयरूपी वन से उड़ान भर जाता है।

अपने आपको जानने के लिए आप भी इसका अध्ययन करिये, जिससे आप भी उन्नतिशील अथवा प्रगतिशील हो सकें। आरम्भ में हो सकता है कि इसके स्वाध्याय में कुछ कठिनाइयां महसूस हों, क्योंकि इसमें कुछ ऐसे पारिभाषिक शब्द भी हैं, जिनसे आपका परिचय न हो। ऐसे शब्द पाठ की सरलता में कंकर से प्रतीत हुआ करते हैं। परन्तु विषय की विशेषता के कारण इनका प्रयोग आवश्यक हो गया। आशा है, कि ऐसी कठिनाइयों के होते हुए भी पाठक अपने-आपको जानने की प्रेरणा हृदय में अनुभव कर पाएंगे।

४५।५२ रामजस रोड
नई दिल्ली-५

—संतराम "आनन्द"

नित्य चैतन्यरूप "आत्मा" न उत्पन्न होता है न मरता है। न यह किसी से हुआ है और न इससे कोई हुआ है—अर्थात् इसका कारण या कार्य नहीं है, यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत और अनादि है। शरीर के मारे जाने पर भी यह मरता नहीं है।

—कठोपनिषद्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विषय-प्रवेश २

संसार की समस्त वस्तुओं एवं प्राणियों का वर्गीकरण दो विभागों में किया जा सकता है। स्थावर या जड़ जगत्, जंगम या चेतन जगत्। दोनों ही प्रकार के इस जगत् में "परमात्मा" नामक एक परमशक्ति तो व्याप्त है ही, एक और भी शक्ति ऐसी उनमें होनी चाहिए जिसके कारण चेतन में तो निरुक्तोक्त छः भाव-विकार "जायते अस्ति" आदि होते ही हैं जड़ों में भी बहुत-सी वस्तुओं में (जैसे वृक्ष आदि) ये छः भाव-विकार होते हैं। आत्मवान् एवं अनात्म पदार्थों में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि आत्मवान् पदार्थों का विकास आन्तरिक रूप में होता है। चट्टान अन्दर से विकसित होकर के इतनी बड़ी चट्टान नहीं बन जाती। अपितु मिट्टी आदि जम-जमकर बाह्यरूप में उसकी आकारवृद्धि होती है। वृक्ष आदि जड़ हैं अवश्य, परन्तु इनमें आन्तरिक विकास और वृद्धि दृष्टिगोचर होती है। अतः स्पष्ट है कि जड़ पदार्थों में बहुत-से ऐसे हैं जिनमें कोई अन्तर्विकासिनी शक्ति होनी चाहिए।

क्या यह शक्ति परमात्म शक्ति नहीं है ?

परमात्म शक्ति अन्तर्विकास अवश्य कर सकती है—इसीके कारण सुप्त प्रकृति में सभी क्रियाएं उत्पन्न हुईं और प्रकृति विकृति रूप में आई— इससे कौन इन्कार कर सकता है। पर इस अन्तर्विकासिनी शक्ति के साथ कुछ बातें और भी हैं। इसके साथ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख ये भी लगे हुए हैं। परमात्मा पूर्ण तृप्त है। इच्छा तो अभाव का परिणाम है न। परमात्मा सर्वशक्तिमान्, सर्वत्र और सर्वव्यापक है उसके लिए किसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चीज़ के अभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। जहां अभाव ही नहीं है, वहां इच्छा का अस्तित्व कहां है ? इच्छा नहीं तो द्वेष भी नहीं, प्रयत्न भी नहीं। सुख और दुःख का तो परमात्मा के साथ क्षणिक सम्बन्ध भी नहीं है। पर इस अन्तर्विकासिनी शक्ति के साथ, चाहे वे पेड़ हों या प्राणी, इन सभी बातों का सर्वदा सम्बन्ध है। अतः निश्चित है कि यह अन्तर्विकासिनी शक्ति परमात्मा तो नहीं है, उससे भिन्न है।

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि यह शक्ति एक ऊर्जा का रूप है। जिस प्रकार कुछ तत्त्वों के मिलने से या किन्हीं अन्य प्रक्रियाओं से ऊर्जा की उत्पत्ति होती है ऐसे ही इन जड़ों और चेतन प्राणियों के शरीर में कुछ ऐसी प्रक्रियाएं होती रहती हैं जिनसे यह ऊर्जा बनती रहती है और यही अन्तर्विकासिनी शक्ति बनकर काम करती रहती है। यह भी ठीक नहीं—

१. प्रथम तो ऊर्जा जड़ है। चेतन नहीं है और चेतन न होने पर इच्छा, सुख, दुःख आदि का अनुभव वह नहीं कर सकती।

२. दूसरे, ऊर्जा तो प्रक्रिया जन्य तीसरा परिणाम है। प्रक्रिया-ऊष्मा-ऊर्जा। प्रश्न तो इसके भी मूल में जाता है कि ये प्रक्रियाएं किसने उत्पन्न कीं। यह अन्तर्विकासिनी शक्ति तो उन प्रक्रियाओं का भी मूल है। अतः ऊर्जा को भी हम अन्तर्विकासिनी शक्ति नहीं मान सकते।

परमात्म शक्ति से भिन्न, वैज्ञानिक ऊर्जा से भिन्न यह चेतन शक्ति अनेक हैं। हर मनुष्य में हर प्राणी में अलग-अलग हैं। अनुरूप है और यह चेतन शक्ति सूक्ष्म शरीर तथा स्थूल शरीर से काम लेती हुई अपना काम करती चलती है। सभी प्राणी सूक्ष्म एवं स्थूल शरीर तथा इस शक्ति के एक मिश्रित पिण्ड हैं। इसी मिश्रण ने संसार में एक बहुत बड़ी भ्रान्ति उत्पन्न कर दी है।

सामान्य प्राणियों (पशु, पक्षी आदि) में इस बात को लेकर कोई कौतूहल या कोई जिज्ञासा पैदा नहीं होती। क्योंकि वे केवल भोग-योनि हैं, कर्म-योनि नहीं। कर्म-योनि केवल मनुष्य योनि है। "कर्म" के साथ ही उत्तरदायित्व भी आ जाता है। मनुष्य किसी भी कर्म के लिए उत्तरदायी है क्योंकि वह मस्तिष्क प्रधान है। इस "मस्तिष्क" प्रधान मनुष्य-योनि में भी बहुत-से मनुष्य ऐसे हैं जो इस ओर से सर्वथा निश्चिन्त हैं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ग्रौर जैसा भी है अपने वर्तमान को सजाने में लगे हुए हैं; इसका एक-मात्र कारण यही है कि उन्होंने इस कर्म-योनि में आकर भी उत्तरदायित्व को नहीं समझा। जो इस उत्तरदायित्व को समझते हैं उनके मन में बार-बार यही प्रश्न उठता है कि :

"मैं वास्तव में हूं कौन ?"

सामान्य व्यक्ति सूक्ष्म शरीर तथा स्थूल शरीर इन दोनों ही शरीरों के विभिन्न अंगों के साथ "अहं" और "मम" को जोड़कर उन्हीं को "मैं" मानकर चला करते हैं। इस "मैं" को मोटा और तन्दुरुस्त बनाकर रखने के लिए मांस और अण्डे खाते हैं। इस "मैं" को सजाकर रखने के लिए नानाविध मूल्यवान् वेशभूषा को साधन बनाते हैं। इसी "मैं" की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए संसार में सब तरह का उचित-अनुचित व्यवहार करते हैं। परन्तु उत्तरदायी मनुष्य इन दोनों शरीरों से अपनी "मैं" को अलग करके देखता है। उसे लगता है कि "इन दोनों शरीरों की स्वतंत्रता इस "मैं" को बंधन में डाल देती है। बार-बार इस मैं को जन्म-मरण के चक्कर में आना-जाना पड़ता रहता है और वे इस मैं को बंधन से बचाने के लिए उसे पूर्ण स्वतन्त्र कर देते हैं। जब "मैं" स्वतंत्र होती है तो दोनों शरीर बंधन में आ जाते हैं। वे बजाए "मैं" को बंधन में डालने के अपने दोनों शरीरों को दसों यमनियमों के बंधनों में डालना अधिक उचित समझते हैं। इससे वे अनुभव करते हैं कि वर्तमान में कष्ट तो अवश्य होगा पर भविष्य में सुख प्राप्ति होगी। वैदिक ऋषियों और मुनियों ने ब्राह्मण-ग्रन्थों, आरण्यकों और उपनिषदों में इसी जिज्ञासा को लेकर तर्क-वितर्क और विचार किया है। इसी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए शास्त्रीय, वैज्ञानिक तथा अन्य अनेकानेक नवीनतम रीतियों से इस विषय को इसमें प्रस्तुत किया गया है। जिस दिन 'मैं" अपनी "मैं" को समझ जाऊंगा उस दिन मेरी "मैं" स्वतंत्र हो जाएगी। स्वनिष्ठ हो जाएगी।

"तदा द्रष्टु स्वरूपे ऽवस्थानम्"

—योग दर्शन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"द्रष्टा" अर्थात् "मैं" अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाएगा। प्रकृति के बन्धन से मुक्त यह 'मैं' जब अपने वास्तविक उन्नति के मार्ग पर बढ़ती है और अपने वास्तविक लक्ष्य को समझ जाती है उसका झुकाव परमात्मा की ओर होता चला जाता है और एक निष्ठ होकर जब वह सविकल्प से निर्विकल्प में, सम्प्रज्ञात से असम्प्रज्ञात में आ जाती है, ऋतंभरा प्रज्ञा का उदय हो जाता है तो—

"तदा द्रष्टुः स्वरूपे ऽवस्थानम्"

उस "मैं" की "मैं" भी समाप्त हो जाती है और उसे सिवाय परमात्मा के स्वरूप के कुछ नहीं दिखाई देता। उसका अवस्थान "द्रष्टा" सर्वद्रष्टा परमात्मा के स्वरूप में हो जाता है ये दोनों ही अवस्थान "मैं" के हैं। प्रथम अवस्थान में "मैं" प्रकृति से मुक्त हो जाती है दूसरे अवस्थान में वह "मैं" से ही मुक्त हो जाती है। इन दोनों ही अवस्थानों को प्राप्त किया जा सकता है केवल "योग" से। इसीलिए महर्षि पतंजलि ने योग के फल के रूप में इस सूत्र को उपस्थित किया। मस्तिष्क प्रधान मनुष्य की यही पराकाष्ठा है।

"सैषा पराकाष्ठा"

जिसे वेद ने कहा—

"अहं धा स्यास्त्वम्, त्वं धा स्यामहम्"

यह "मैं"
अपनी "मैं" छोड़कर
ऐसी हो जाए कि
"मैं" "तू" हो जाए
और "तू" "मैं"।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अन्वेषण ३

हम अपने-आपको चारों ओर कई वस्तुओं से घिरा हुआ पाते हैं, जिनका ज्ञान हमें अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है। इन सबकी उत्पत्ति हमें एक ही पदार्थ से जान पड़ती है, क्योंकि इन सब में कुछ गुण समान हैं, जैसे भार का होना अथवा जगह का घेरना। कोई वस्तु उस स्थान पर नहीं रखी जाती, जहां पर पहले कोई और चीज पड़ी हो। इससे मालूम होता है कि हर वस्तु को अपने होने अर्थात् 'मैं हूं' का पूर्ण आभास है। क्या आप ने कभी नहीं देखा कि जब सुराही में पानी भरते हैं, तो उसके अन्दर की वायु पानी को अन्दर जाने से रोकती है और जब तक कि वायु बाहर नहीं आ जाती पानी अन्दर नहीं जा सकता। इससे स्पष्ट है कि हर वस्तु को अपने स्थान का अभिमान है। और यह अहंकार वास्तव में द्रव्य (matter) का गुण है। द्रव्य प्रकृति का सत् रूप है, कारण रूप प्रकृति अव्यक्त या असत् रूप है जो इन्द्रियों से जानी नहीं जाती जैसा कि तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है।

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत्

सृष्टि की उत्पति से पहले असत् अर्थात् कारण रूप प्रकृति थी, वह ही सत् रूप अर्थात् इन्द्रियों के जानने के योग्य हो गई। अर्थात् प्रकृति को असत् रूप से सत् रूप में आने से पूर्व महत्तत्व और अहंकार की अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है, ऐसा शास्त्रज्ञों का विचार है। अहंकार (अथवा अहं-आकार) का तात्पर्य यही है कि हर वस्तु के अन्दर जो प्रकृति से बनी है, अपने होने का भाव है। ऐसा भाव जड़ वस्तुओं में है या नहीं, कह नहीं सकते परन्तु इनका ज्ञाता देहधारी जीव जरूर है, जो अपने दुःख

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुख को जानकर दुःख से बचने और सुख से रहने के लिए सदा प्रयत्न करता रहता है।

पौधों और वृक्षों में भी ऐसा भाव प्रतीत होता है। इनकी शक्ल-सूरत में बचपन, जवानी और बुढ़ापे के अनुसार अन्तर आना इस बात का प्रमाण है कि यह अपने अस्तित्व को कुछ सीमा तक समझते हैं। कुछ झाड़ीदार पौधे ऐसे भी हैं, जो **मांसाहारी**[1] हैं, जब इनके फूलों की सुन्दरता और सुगन्धि से खिंचे हुए कीड़े और पतंगे आकर फूल के अन्दर घुसते हैं, तो फूल की पंखुडियां बन्द हो जाती हैं और इसमें से एक रस निकलकर फंसे हुए जीव का घोल बना देता है और फिर यही पौधा इसका भोग लगाकर अपने आप में आनन्द पाकर अपनी 'मैं' का विचार हमारे सामने प्रकट कर देता है।

बड़े और छोटे सभी प्रकार के वृक्ष अपनी आवश्यकता के अनुसार मिट्टी से खास-खास पदार्थों को कैसे खींच लेते हैं? यह शक्ति इनको कहां से मिलती है? और इसका ठीक-ठीक प्रयोग करने की सामर्थ्य यह कैसे रखते हैं? यह सब प्रश्न बुद्धि को आश्चर्य में डालने वाले हैं। और फिर इनका जीना और मरना मनुष्यों की भांति दिखाई पड़ता है। जैसे कठोपनिषद् में कहा गया है।

सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः

मनुष्य और अनाज (खेती) का जीवन एक जैसा है। खेती मनुष्य की भांति मरणधर्मा है, अर्थात् जवानी से जराजीर्ण अवस्था को पाकर मृत्यु को प्राप्त होती है और फिर पहले की भांति उत्पन्न होकर खेत को हरा-भराकर देती है। बीज उगते हुए पौधे का कारण है और यह पौधा वैसे ही बीज का, और यह नया बीज आने वाले खेत का। इस प्रकार खेती का पुनः जन्म और मरण होता रहता है। यह पौधों की कथा कैसी आश्चर्यजनक है? बीज का कारण बीज और फिर वही पहला बीज आज के बीज व वृक्ष का कारण हो रहा है।

---

१. ड्रोऐश, पिंगीकुल—इनके ग्रंथियुक्त बाल होते हैं जो कीट पतंगों को पकड़कर इनका कचूमर निकाल देते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पौधों की भांति कुछ ऐसे समुद्रीजीव हैं, जो मुंह, हाथ, टांगें होते हुए भी स्थानीय हैं। छोटी-छोटी झाड़ियों की तरह समुद्र की गहरी तह पर यह जमे रहते हैं। सूर्य का प्रकाश, और वायु जीवन के लिए अत्यावश्यक वस्तुएं हैं। वह उन्हें कैसी मिलती होगी ? हां ! मिलती जरूर है, मगर थोड़ी मात्रा में। सूर्य की रोशनी तो कुछ पानी में छनकर चली जाती है, और वायु का कुछ अंश पानी में घुलकर उन जन्तुओं तक पहुंच जाता है, जिससे कि ऐसे जीवों का समुद्र की गहराई में भी निर्वाह हो सकता है। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है, कि प्रकृति के नियम कैसे अटल हैं, और वह शक्ति जो इन नियमों का ज्ञान रखती होगी, जीवन का संचार कैसे करती जा रही है ? किन्तु यह आश्चर्यजनक विचार केवल ज्ञानियों का ही भाग है।

उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह है, कि 'मैं हूं' का भाव सब स्थावर जंगम सृष्टि में है। और इसके साथ यह भी ज्ञात हो जाता है कि यह सब प्राणी अपनी थोड़ी बहुत शक्तियों का ज्ञान भी रखते हैं, जिससे यह अपना पालन-पोषण कर सकते हैं। जानवर हमेशा अपनी शक्ति का अंदाजा कुछ हद तक ठीक-ठीक लगा सकते हैं, किन्तु मनुष्य नहीं। आप ने कई बार देखा होगा, कि एक कौवा किसी वस्तु को उठा ले जाने के लिए जब मुंडेर पर बैठा हुआ दांव को देख रहा होता है और आप पत्थर उठाने के लिए झुकते हैं तो वह आपके सीधा होने से पहले ही उड़ जाता है। कौवा जानता है कि अगर आप ने पत्थर को फेंका और उसे लग गया, तो उसके जीवन का अन्त हो जाएगा। शेर भी अपने शिकार को देखकर जान लेता है कि इससे सामना करना मेरे बस का है या नहीं। कई बार ऐसा सुना गया है, कि शेर शिकारी की बन्दूक को देखकर उससे दूर भागना ही अच्छा समझता है। परन्तु मनुष्य ही एक ऐसा देहधारी है, कि अपनी शक्ति का अनुमान बहुत बढ़कर करता है। छोटे से बच्चे को ही लीजिए जब वह कुछ चलना सीखता है, तो उसका प्रयत्न यही हुआ करता है कि मैं किसी की सहायता के बिना ही चलूं। उसका हाथ पकड़ने से वह छुड़ाने की कोशिश करता है, और वह सोचता है कि मैं अपने लिए इतना ही बड़ा हूं जितना यह लोग अपने लिए। चांद को देख करके उसे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पकड़ना अपने लिए कोई कठिन बात नहीं समझता। और न मिलने पर रोता और चिल्लाता है। हां ! यह ठीक है कि उसको दर्पण के अन्दर देखकर वह समझ लेता है कि मैंने चांद पकड़ लिया है और इससे वह सन्तुष्ट भी हो जाता है। यह केवल बच्चों की ही बात नहीं, बड़े-बड़े बुद्धिमान विद्वान् भी इसी भूल में पड़ जाते हैं। कई बार साधारण मनुष्य तो इतने अभिमान में आ जाते हैं कि अपने आपको ही भूल जाते हैं। प्रायः आपने देखा होगा कि जब दो आदमी आपस में झगड़ रहे हों, तो उनमें एक कह उठता है कि तू जानता है कि 'मैं कौन हूं।' अभी बता दूं। ऐसी बातों से स्पष्ट है कि आदमी अपनी अंतर शक्ति का कहीं बहुत बढ़-चढ़कर अनुमान लगाता है और ऐसा विचार उसके दुःख का कारण भी हो सकता है। युवावस्था में जब मनुष्य प्रथम बार व्यावहारिक जीवन के क्षेत्र में प्रवेश करता है, तो उसके सामने बड़े सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं, जिससे कि वह आनन्द भोगने के स्वप्नों में उड़ता रहता है। नाना प्रकार के भोग पदार्थों को पाना अपने लिए एक मामूली-सी बात समझता है। किन्तु जब ऐसा नहीं होता या दुनिया के अन्दर उलटे व्यवहार से वास्ता पड़ता है तो कुछ सुबुद्धि का प्रकाश हो उठता है। सोचता है कि जिस समय मैंने अपनी शक्ति का अनुमान लगाया था, वह मेरी पहुंच से बहुत दूर है। मेरा गलत विचार मेरे दुःख का ही कारण हो गया है, अब इस दुःख को कैसे दूर किया जावे ? तब उसके कान में गीता के श्लोक की एक ऐसी आवाज पड़ती है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

—गीता अध्याय ६

दुःख से बचने के लिए मैं भोगों को एक नियम पूर्वक ही भोग सकता हूं। और सांसारिक व्यवहार भी मुझे ऐसे ही बन्धन से करने होंगे। हर काम के लिए मैंने योग्यता प्राप्त करनी है, और अपनी सामर्थ्य की जांच भी करनी है, यहां तक कि मेरा सोना और जागना भी एक बन्धन के अन्दर बंधा होना चाहिए।

क्या यह जीवन बन्धन है ? तो इसकी स्वतन्त्रता कहां है ? मैंने तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समझा था, कि यह शरीर और उसमें कई प्रकार की शक्तियां ही 'मैं' हूं। इनको स्वतन्त्रता पूर्वक प्रयोग में ला सकता हूं। और मनमाने भोगों को भोग सकता हूं। हां ऐसा ही किया, किन्तु परिणाम निकला क्या ? निराशा ही निराशा। शारीरिक रोग पारिवारिक, मानसिक तथा आर्थिक कष्टों का समूह भयानक सूरत बनाए सामने आकर उपस्थित हो गए हैं। मैंने समझा, कि 'मैं' (शरीर) अपने भोगों को भोग रहा हूं। यह मेरी अपनी ही शक्तियां हैं, और इनका अपने जीवन में प्रयोग मेरी अपनी इच्छा पर है। पर परिणाम क्या हुआ ? दुःख। ऐसा प्रतीत होता है, कि मैंने भोगों को नहीं भोगा, किन्तु भोगों ने मुझे भोग लिया है।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः

हां, यह बिलकुल सत्य है, कि जब कोई मनुष्य स्वेच्छा से भोगों में लिप्त हो जाता है, तो भोग उसको खा जाते हैं। परन्तु बुद्धिमान् लोग युक्ति अथवा बन्धन से भोगों को ग्रहण करके आनन्द का पात्र हुआ करते हैं। इससे स्पष्ट है कि बन्धन ही जीवन का सार है।

मैं कौन हूं ? इस प्रश्न का उत्तर क्या है ? अगर यह प्रश्न किसी साधारण आदमी से पूछा जावे तो वह तत्काल अपना नामादि बता देगा, कि मैं रामदास हूं, मेरे पिता का नाम कृपाराम है, मैं मंडी का रहनेवाला हूं और तार घर में नौकर हूं। बस इसी को वह इसका उत्तर समझता है। इसके अनुसार शरीर ही 'मैं' का स्वरूप हो जाता है। इसी शरीर को अगर हम वैज्ञानिक ढंग से सोचें तो यह एक मशीन की भांति जान पड़ता है। जिसकी आयु कोई सौ वर्ष या इससे कुछ अधिक अथवा न्यून भी हो सकती है। बड़ी सुन्दर और आश्चर्य जनक वस्तु प्रतीत होती है। आदमी की बनाई हुई मशीन का जब कोई पुरजा घिस जाता है, तो उस को बदल कर दूसरा लगाना पड़ता है। परन्तु जब इस शरीर का कोई भाग काम करने से घिस जावे, तो यह अपने आप युक्त आहार विहार से अपनी ठीक अवस्था पर लाया जा सकता है। क्या इससे ऐसा नहीं जान पड़ता है कि इसका कारीगर अभी अन्दर बैठा अपने कार्य को भली-भांति चला रहा है, परन्तु इस शरीर के कुछ नियम हैं, जिनको जान कर और फिर उन्हीं के अनुसार इस यन्त्र को चलाने से सुख मिलता है नहीं तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महा दुःख का सामना करना पड़ता है। इन नियमों की जानकारी के लिए बड़े-बड़े महात्माओं ने तप किए, जिज्ञासुओं ने इनकी तलाश की और विद्वानों ने धर्म पुस्तकों को छान डाला। महात्मा बुद्ध के अनुसार शारीरिक दुःख ही मनुष्य मात्र का दुःख है। इस दुःख को दूर करने के लिए उन्होंने बड़ा भारी तप करके ज्ञान को प्राप्त किया, और इस परिणाम पर पहुंचे कि शरीर को दुखों से छुड़ाने के लिए आठ सिद्धान्तों का आचरण करना चाहिए, जो इस प्रकार हैं—

(१) सम्यक् संकल्प-ठीक व शुभ निश्चय, (२) सम्यक् वचन-सच्चे मीठे वचन (३) सम्यक् आचरण-सदाचार (४) सम्यक् प्रयत्न-जीवन के निर्वाह के लिए शुभ यत्न अर्थात् धर्म युक्त कोशिश (५) सम्यक् कर्म-परमार्थ कर्म (६) सम्यक् विचार या शुभ विचार (७) सम्यक् ध्यान-पवित्र और शुभ कार्यों में ध्यान लगाना (८) सम्यक् दृष्टि-अपवित्र दृश्यों को न देखना। यह 'अष्ट मार्ग' जैसा कि कहे जाते हैं, महात्मा बुद्ध के उपदेशों का निचोड़ है। उनके विचार के अनुसार सच्चाई और सदाचार ही जीवन का उद्देश्य है। और यही अष्ट मार्ग दुखों से छुटकारा दिलाने वाला माना जाता है।

अब प्रश्न यह है, कि किसका दुखों से छुटकारा कराना है ? शरीर का या शरीर से किसी अलग अलग अंग का। महात्मा बुद्ध के अनुसार, शरीर से अलग कोई ऐसा जीव नहीं जो दुःख का भागी हो। क्योंकि उन्होंने शरीर से अलग "आत्मा" को नहीं माना, किन्तु इच्छाओं को ही दुःख का मूल कारण माना और इसलिए इनका ही भली भांति त्याग करने से जीवन का निर्वाण अर्थात अन्त माना है। उनके अनुसार यही जीवन का 'बोध' है।

परन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मनुष्य की शान्ति और स्वतन्त्रता के लिए समाज को व्यवस्था में रखना जरूरी है, बिना इसके एक व्यक्ति कितना ही भला क्यों न हो, सुख से नहीं रह सकता। व्यक्ति एक समष्टि का ही तो भाग है। शरीर के एक अंग के बिगड़ने से जैसे सारी शारीरिक दशा बिगड़ जाती है, ऐसे ही समाज के अन्दर एक व्यक्ति की खराबी से व्यवस्था के कारण कई धर्मशील मनुष्यों को दुःख हुआ करता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है। दरिद्र पड़ोसी के कई रोग धनवान पड़ोसी तक पहुंच सकते हैं और इसलिए साफ-सुथरे वातावरण में रहने वालों को भी रोगों का शिकार बनना पड़ता है। कहते हैं कि कुछ महात्मा लोग एक नाव में बैठे थे, यह सबके सब मनुष्य मात्र की सेवा करना अपना कर्तव्य समझते थे, परन्तु इनमें एक ऐसा भी था, जिसको दुनिया के अन्दर लोगों को दुखी देखकर बड़ी प्रसन्नता होती थी। इसने चुपके से नाव के नीचे एक सूराख करना आरम्भ कर दिया। नाव ठीक मंझधार में पहुंची तो वह पानी भर जाने से डूबने लगी, और किश्ती में बैठे यात्री नदी की भयानक लहरों की लपेटों में आकर बह गये। एक मनुष्य का अज्ञान और मूर्खता कई भद्र पुरुषों के दुःख का कारण हुआ करती है। इसलिए समाज के सब व्यक्तियों का अज्ञान तथा मूर्खता का दूर करना ही हर एक के लिए अनिवार्य हुआ करता है। यही सच्ची लोक सेवा है, सदाचार का यही आरम्भ है और सुख का द्वार है।

किन्तु सच्ची लोक सेवा क्या है ? यदि इस पर विचार किया जावे, तो पता चलेगा कि सेवा का भाव तो ठीक है, परन्तु 'यह कैसे की जावे' के उत्तर में यह स्पष्ट जान पड़ेगा कि यह समय और देश के वातावरण पर निर्भर है। जब किसी देश में गरीब, अमीरों से सताए जाते हैं तो वहां पर गरीबों की ही सहायता करना लोक सेवा है, और जहाँ पर ऊंच और नीच जातियों की भरमार होती है और ऊंच जाति वाले निम्न जातियों पर अत्याचार करते हैं, तो वहां पर इस भेद का मिटाना ही कर्तव्य हो जाता है। कई बार ऐसा भी हुआ करता है, कि एक देश पर किसी विदेशी का अधिकार हो जाने पर राज अधिकारी देश वासियों के अन्दर झूठे विद्रोह के बीज बोकर उनको खूब सताना शुरू कर देते हैं। परिणाम क्या निकलता है, देश वासियों की गिरावट या उनका पतन। ऐसी अवस्था में देश की सेवा केवल देश की स्वतन्त्रता में सहायता देना है। इससे स्पष्ट है, कि लोक सेवा का भाव समय के अनुसार होता है। इसकी सिद्धि नीचे लिखे दो उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है।

बौद्धमत के अनुसार निर्वाण के पश्चात कोई वस्तु शेष नहीं रहती, इसलिए उन अनुयायियों के लिए न नरक है और न स्वर्ग केवल हर तरह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की इच्छाओं का त्याग ही इनके लिए लोक सेवा है। इनके प्रचारित धर्मानुसार, जब मनुष्य में कोई इच्छा रह जाती है, तो वह किसी शरीर में प्रवेश कर लेती है और यही इसका पुनर्जन्म माना जाता है। ऐसे ही अगर कोई इच्छा बाकी न रहे तो जीवन मुक्त या निर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

बुद्ध का जन्म हुए कोई २५०० साल हो गये हैं, उस वक्त इस देश में समाज की स्थिति बहुत कुछ बिगड़ी हुई थी लोग समष्टि जीवन से बे-खबर व्यक्ति जीवन में पड़े हुए मरने के पश्चात् मुक्ति को ही अपने जीवन का उद्देश्य मानते थे, और इसके लिए धर्म के बाहरी आडम्बर और रीति रिवाज पर अधिक जोर देते थे, इसलिए उस समय के धर्म के ठेकेदारों (पंडितों) ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए बहुत बुरे और निकृष्ट रीति-रिवाजों को धर्म के नाम पर चला रखा था। महात्मा बुद्ध ने इन सब बाहरी आडम्बरों को छोड़ना और सदाचार ही को जीवन में अपनाना हरएक का धर्म ठहराया। वास्तव में सदाचार को ही सब महापुरुषों ने जीवन का परम धर्म माना है। सदाचार क्या है? इसका साधारण अर्थ है, जीवन की अच्छी क्रिया, जिससे समाज या देश की व्यवस्था अच्छी तरह बनी रहे, और हर व्यक्ति परम सुख का भागी बन सके। ऐसे वातावरण के लिए महर्षि पतंजलि ने पांच यमों का व्यवहार अनिवार्य ठहराया। जो इस प्रकार हैं—

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह

(१) अहिंसा

का अर्थ ऋषि दयानन्द ने किया है, वैर त्याग—"किसी से वैर न रखे, सर्वदा सबसे प्रीति करे"। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार अपने मन में किसी से द्वेष भाव का होना या यह समझना कि कोई मेरे से द्वेष करता है, मनुष्य की उन्नति में रुकावट हो जाने से उसके लिए एक बड़े दु:ख का मूल कारण हो सकता है। ऐसी अवस्था में एक ज्ञानवान् मनुष्य को चाहिए कि ऐसे भ्रामक विचारों को अपने मन में से

**"यो अस्मान् द्वेष्टियम् वयं
द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्म:।"**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निकाल दे।

अब इस बात पर विचार करना है, कि इसको दैनिक व्यवहार में कैसे लाया जाए ? यह बड़ी कठिन समस्या है, क्योंकि ऐसी प्रवृत्ति का उत्पन्न करना साधारण मनुष्य की सामर्थ्य से परे है। जिसके कारण कोई आदमी यह नहीं समझ सकता, कि वह उस व्यक्ति से मित्रता का व्यवहार कैसे कर सकता है, जो उसके साथ वैर-भाव रखता हो, या उसकी जान लेने के लिए उतारू हो ? यह एक जटिल प्रश्न है। आम जनता के लिए ऐसे सिद्धान्तों का प्रयोग में लाना एक असम्भव-सी बात प्रतीत होती है। वास्तव में धर्म के ऐसे सूक्ष्म मर्म का समझना या साधारण ज्ञान द्वारा इसका निर्णय करना अति कठिन है। यह कठिनाई ठीक ऐसी है, जैसे प्रकाश के देखने की। क्या आपने कभी नहीं देखा कि जब सूरज की किरण किसी अंधेरे कमरे में से गुजर रही हो और अगर कमरे के वायुमण्डल में धुएं आदि के कोई कण न भी हों, तो किरण का मार्ग देखा नहीं जा सकता, इसका प्रत्यक्ष-ज्ञान तभी होता है, जब वह दीवार आदि पर पड़कर विक्षिप्त हो जाती है। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश की तरंगें आकाश से गुजरती हुई देखी नहीं जा सकतीं, जब तक कि यह किसी वस्तु पर पड़कर इधर-उधर बिखरकर आंख में प्रवेश नहीं करतीं ठीक उसी तरह धर्म का यह सूक्ष्म अंश भी नहीं जाना जा सकता, जब तक कि इसका प्रतिबिम्बन किसी महापुरुष के जीवन से नहीं होता। आम आदमियों के लिए सूक्ष्म विषयों का समर्थन ऐसे ही हो सकता है। ऐसी उलझनों को सुलझाने के लिए हमारे सामने दो आधुनिक महापुरुष हैं, एक ऋषि दयानन्द और दूसरे महात्मा गांधी। इन दोनों के जीवन से यह अहिंसा का स्वरूप आसानी से समझा जा सकता है। महात्मा गांधी का जीवन तो यह भी प्रकट करता है कि इस 'परम धर्म' का ठीक उपयोग, देश के बाह्य और आंतरिक झगड़ों में कैसे किया जा सकता है। इनके चरित्र को देखिये एक तरफ अपने देश को स्वतंत्र कराने की हर प्रकार से तैयारी है, विदेशी कानून के साथ एक बड़ा संग्राम जारी है। जीवन के भारी कष्ट से सामना है, किन्तु इनका मन है, साफ और सरल, जिसमें किसी विदेशी के लिए द्वेष का भाव तक नहीं। महान् हैं वह,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिनका हृदय ऐसा निर्मल होता है। गुरु गोविन्दसिंह के जीवन में भी एक ऐसी घटना का वर्णन है। मुसलमान राज्य के अधिकारियों की सेना के साथ घमासान लड़ाई हो रही है। दोनों तरफ के जवानों की मार-काट जारी है किन्तु लड़ाई के बन्द होने पर इस महापुरुष के हृदय में शत्रु के घायलों का उतना ही ध्यान है, जितना अपने व्यक्तियों का। धन्य हैं ऐसी महान आत्माएं। अब प्रश्न है, कि क्या हरएक ऐसा कर सकता है। इसका उत्तर शायद 'नहीं' में हो, परन्तु इस अहिंसा नियम के पालने वाले को जहां तक हो सके प्रयत्न करना ही होगा।

वैसे तो यह सिद्धान्त हर देश के नेताओं ने अपने अनुयायियों के आगे रखा है, किन्तु जितना महत्त्व भारतवासियों ने इसे दिया, इतना कहीं और नहीं पाया जाता। भारत में इसका विकास केवल मनुष्यों तक ही नहीं रहा, परन्तु यह विकसित होते हुए हर जीव-जन्तु तक पहुंचा, जिससे कि अध्यात्मवाद के अन्दर सब प्राणियों का स्थान एक-सा ही माना गया। इसलिए कहा गया है कि—"**आत्मवत् सर्वभूतेषु**" अर्थात् हर मनुष्य हर जीव को अपने जैसा जाने। वास्तव में यह अहिंसा का पूर्ण विस्तार है। परन्तु इसमें क्षति यह आ गई है, कि ऐसा भाव केवल मूक प्राणियों के लिए ही रह गया है, कीड़े-मकोड़ों और ज़हरीले प्राणियों की पूजा करनी या पालन करना अहिंसा का पूर्ण अंग बना दिया है। आजकल भी सैकड़ों की संख्या में लोग कीड़ों को आटा, तिल, चावल अथवा शक्कर डालते देखे जाते हैं। रात को सोते हुए यदि खटमल मर जावे तो बड़ा पाप-कर्म मानते हैं। परन्तु मनुष्य-मनुष्य का परस्पर व्यवहार केवल स्वार्थ पर ही टिका हुआ है, जिससे कि समाज में मानवता के भाव उड़ गए हैं। स्वामी दयानन्द ने जिनके अहिंसा के अर्थ पहले दिये गये हैं, यह बात स्पष्ट कर दी, कि हानिकारक जीवों का मारना (जैसे शेर सांप इत्यादि) पाप नहीं अपितु अहिंसा नियम के अनुकूल है और दूसरे जानवरों को न मारना पाप इसलिए बतलाया, कि वह मनुष्यमात्र की सेवा करते हैं, और बड़े लाभदायक हैं। उन्होंने लिखा है कि जैसे एक गाय के शरीर से दूध, बैल व गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर सहस्र और छः सौ मनुष्यों को सुख पहुंचता है ऐसे पशुओं को मारें और न मारने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दें। इसी तरह बकरी के दूध से २५६२० आदमियों का पालन होता है। एक बैल जन्मभर में १००० (एक सहस्र) मन अन्न कम से कम उत्पन्न कर सकता है। ऐसे ही बकरा, हाथी, घोड़ा, ऊंट, भेड़ व गधा आदि जो वाहन अर्थात् बोझा ढोने वाले पशु हैं बड़े उपकार वाले होते हैं" कहने का तात्पर्य यह है, कि अहिंसा धर्म को, प्रथम मनुष्यों को आपस के व्यवहार में लाना चाहिए और अपनी शुभ भावना अनुसार लाभदायक पशुओं तक ले जाना चाहिए। विपरीत व्यवहार से दुःख और समाज में अशांति हुआ करती है।

महात्मा गांधी ने एक दुःखी बछड़े का अंत करके अहिंसा धर्म पर रोशनी डाली, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है, कि अहिंसा धर्म हरएक के दुःख को दूर करने वाला है और वैर-भाव को दूर करके प्रेम का उत्पादक है।

२—सत्य

सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। कौन ऐसा महापुरुष है, जिसने इस तथ्य से इंकार किया हो, या इसको हर व्यक्ति के लिए अनिवार्य न ठहराया हो। जिस देश के अन्दर सत्य का पालन किया जाता है, उस देश के रहने वाले बड़े सुख का जीवन व्यतीत करते हैं। और जहां यह नहीं, दुःख ही दुःख हुआ करता है। कभी सत्य वक्ता होने के कारण भारतवासियों का स्थान संसार की उन्नत जातियों में सबसे ऊंचा था। भारत में जब अंग्रेजों का राज्य था, और अंग्रेज युवक जब राज्य अधिकारी बनकर किसी पदवी को सम्भालने के लिए यहां आते थे, तो इंगलैंड से चलने से पहले मैक्समूलर आदि के कुछ उपदेश उनके लिए अनिवार्य थे। मैक्समूलर उनको बताते थे, कि भारतवासी जिनमें अधिकतर हिन्दू हैं असभ्य नहीं जैसा यहां पर आपको बतलाया जाता है। वह वेदों के ज्ञाता हैं। वेदों में सत्य की बड़ी महिमा है, जिसके वह पूर्णतया अनुयायी हैं। सच्चाई के लिए वह अपने जीवन पर भी खेल जाते हैं। इसके अतिरिक्त उनको इस बात का गर्व भी है। इसलिए उनके साथ व्यवहार करते समय आपको उन्हें ठीक समझने का और फिर अपने प्रभाव में लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हम प्रायः देखते हैं, कि जिस बच्चे को झूठ बोलने की आदत हो, वह माता-पिता के लिए दुःख का कारण हुआ करता है, और जिस विद्यार्थी का ऐसा स्वभाव बन जावे वह भी आचार्य के लिए एक मुसीबत बन जाता है। व्यापार भी जहां सत्य पर स्थिर नहीं होता, दुःख का ही कारण हुआ करता है। वास्तव में जहां सत्य है, वहां सुख और जहां असत्य है वहां दुःख ही दुःख है। पाण्डव पुत्र युधिष्ठिर को जुए का व्यसन होने पर भी धर्मपुत्र माना गया है, क्योंकि उनका जीवन सत्य से ओत-प्रोत था। जुए में हारने के पश्चात् जब पाण्डव जंगल में चले गए, तो एक दिन की बात है, कि चारों भाई (अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव) एक वृक्ष के नीचे सोए पड़े थे। युधिष्ठिर और द्रौपदी आपस में कुछ विचार-विमर्श कर रहे थे। द्रौपदी युधिष्ठिर से कह रही थी, कि महा-राज मैंने अपने मैके के पुरोहित से सुना था, कि सत्य धर्म से सुख होता है, इसलिए इस मार्ग पर चलने वाला दुःख रहित जीवन व्यतीत करता है। आप धर्मपुत्र हैं, और आपने सदा सत्य मार्ग का अनुसरण किया है, परन्तु इसका परिणाम क्या निकला? यही जो आपके सम्मुख है। आपके चारों भाई भीम, अर्जुनादि ज़मीन पर पड़े दुःख उठा रहे हैं। क्या यह सब इसी योग्य हैं? क्या आपके सत्यार्चन का यही फल है? मैं नहीं समझती कि आपको उन पर क्रोध क्यों नहीं आता, जिन्होंने आपके साथ इतना अन्याय किया और हम सबकी इतनी दुर्दशा की? युधिष्ठिर बोले, "द्रौपदी तू सत्य कह रही है, और इसमें कोई सन्देह भी नहीं, परन्तु मैंने सत्य के साथ कोई समझौता नहीं किया हुआ कि यदि सत्य के आचरण से मुझे सुख मिलेगा तो मैं उसे मानूंगा, अन्यथा अस्वीकार कर दूंगा। मैं सत्य को इसलिए मानकर चलता हूं कि यह मेरा कर्तव्य है। यह मानवता का अंग है। इसके साथ ही साथ वेद निहित धर्म है। यही मार्ग ऋषि-मुनियों द्वारा प्रतिपादित है।" इससे स्पष्ट है कि हमारे सामने हमारे पूर्वजों ने इस सत्य को कितना महत्त्व दिया है। किन्तु सत्य का व्यवहार करने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है।

उदाहरणार्थ सत्य संभाषण को अंगीकार करने से पूर्व हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि "सत्य" क्या है? हम अपनी आंखों से बाहर के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दृश्यों को देखते हैं, कानों से शब्दों को सुनते हैं, जिह्वा से खट्टे-मीठे रसों का आस्वादन करते हैं। इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान को सम्यक् रूप से जानकर वाणी द्वारा प्रकट करना ही सत्य सम्भाषण कहा गया है।

यन्मनसा ध्यायति, तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति
तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते ।

जिसका मन में ध्यान होता है वही वाणी से बोला जाता है, वैसा ही कर्म किया जाता है। जैसा कर्म होता है वैसा ही फल प्राप्त होता है और यही फल सुख-दुःख का कारण बनता है।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सत्य सम्भाषण के लिए यह बात आवश्यक है कि आंखें जिस घटना को देखती हैं वह सम्यक् रूप से मन के हवाले कर दें, और मन बिना किसी हेर-फेर के जिह्वा के द्वारा प्रकट करे, ताकि श्रोता का मन ठीक रूप से उसे ग्रहण कर सके, तभी सत्य की क्रिया पूर्ण होती है। कई अवस्थाओं में आंख जैसे किसी वस्तु को देखती है वैसे प्रकट नहीं कर पाती। यथा कुछ लोगों की दृष्टि रंगों का उचित रूप से वर्गीकरण नहीं कर सकती। पीले को नीला, लाल को हरा, हरे को लाल रूप में देखती है। इसी प्रकार हमारा मन भी ठीक स्थिति में न होने से इस प्रकार के भ्रान्त ज्ञान को मान लेता है जिससे सारा कुछ उल्टा हो जाता है। इसी कारण जिन लोगों को इन रंगों में काम करना होता है (जैसे कुछ रेलवे कर्मचारी) उनकी दृष्टि परीक्षा की जाती है। इसलिए यह स्पष्ट है, कि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान भ्रामक हो सकता है। इस सम्बन्ध में यह एक और उदाहरण है।

आपने अक्सर देखा होगा कि अगर किसी कमरे में सब वस्तुएं एक ही रंग की हों तो वह आंख को बड़ा और अगर रंग-बिरंगी वस्तुएं हों तो वह कमरा छोटा नज़र आता है। सूर्य भी उदय और अस्त के समय बड़ा और दोपहर को छोटा दिखाई देता है। वास्तव में कोई वस्तु वैसी नहीं, जैसी कि आंख से दिखाई देती है। इसलिए हर वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान ही सत्य नहीं होता। कार्लाइल एक प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार हुआ है। उसने एक स्थान पर लिखा है कि इतिहासकारों को भूतकाल में हुई घटनाओं का सत्य ज्ञान कठिन हुआ करता है क्योंकि प्रतिदिन जो घटनाएं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हम देखते हैं वह भी प्रत्येक की दृष्टि में एक जैसी नहीं जान पड़तीं। इस सम्बन्ध में एक घटना का वर्णन करते हुए वह लिखते हैं कि एक समय दो व्यक्ति ग्रापस में लड़ रहे थे ग्रौर उनके चारों तरफ खड़े बहुत-से व्यक्ति उस घटना को देख भी रहे थे उनमें से चार व्यक्तियों से जब उस घटना के विषय में पूछा गया तो चारों का वर्णन घटना के विषय में एक-दूसरे से भिन्न था। इससे स्पष्ट है कि जब ग्रांखों देखी घटना का एक समान ज्ञान नहीं हो सकता, तो भूतकाल के इतिहास का ज्ञान ठीक-ठीक किस प्रकार सम्भव है।

यह केवल ग्रांख की ही कमजोरी नहीं दूसरी इन्द्रियां भी साधारणतः बाह्य घटनाग्रों का ठीक-ठीक हाल मन को नहीं दे पातीं। हां! ग्रभ्यास ग्रौर प्रयत्न द्वारा सत्य की तह तक पहुंचने में ग्रवश्य ही सहायक होती हैं। हर क्षेत्र में ग्रभ्यास ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य किसी कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है। विज्ञान उपार्जन करने में ही हम देखते हैं कि शोध करने वाले विद्यार्थियों को पदार्थों के नाप-तोल की पूर्व जानकारी के लिए प्रयोगशालाग्रों में बड़ा ग्रभ्यास करना होता है, ताकि वह किसी पदार्थ को उसके वास्तविक रूप में जान सकें।

ग्राध्यात्मिक जगत् में यही ग्रभ्यास मन को सिद्धि करने में प्रस्तुत किया जाता है, ताकि वह इस योग्य हो जाय कि हर भाव को सत्य रूप में ग्रहण कर सके। क्योंकि बाहर के दृश्यों का भाव हमारे दृष्टिकोण पर निर्भर हुग्रा करता है। यथा परमात्मा के प्रति ग्रगर किसी मनुष्य का यह भाव हो कि वह ग्राकाश पर राज्य करता है, तो उसे ग्राकाश एक पर्दा-सा दिखाई देता है जिसके परे तीव्र प्रकाश है। तारे उस पर्दे में सुराख जान पड़ते हैं जिनमें हमें उस प्रकाश की एक झलक दिखाई देती है; ग्रौर तारों के जगमगाने का कारण यह समझते हैं, कि जो देवता इधर-उधर घूम रहे हैं वह जब किसी सूराख के सामने ग्रा जाते हैं तो प्रकाश रुक जाता है ग्रौर जब वह ग्रागे निकल जाते हैं तो फिर से वह स्थान प्रकाशित होने लगता है। इस कारण तारागण जगमगाते हैं। परन्तु जिनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक है वह इन सब स्थिर तारों को सूर्य के समान तपते गोले के रूप में देखते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वास्तव में हर मनुष्य अपने मत के अनुसार ही हर घटना को समझना चाहता है और उसी के अनुसार अपने मन के अन्दर उसे ग्रहण करके सुख या प्रसन्नता को अनुभव करता है। परन्तु सच्ची स्थिति को जानने के लिए मनुष्य को अपने दृष्टिकोण को विशाल बनाना चाहिए, ताकि सत्य का पूर्णतः ज्ञान हो सके। अब देखना यह है कि हमारा दृष्टिकोण किस प्रकार बनता है जिससे कि हम इसे विशाल बना सकें।

जब बच्चा कुछ मास का होता है तो उसमें ऐसी नैसर्गिक शक्ति का विकास होता है जिससे वह बाहर की घटनाओं को बीज रूप में ग्रहण कर सकता है। बाहरी वातावरण, माता-पिता भाई-बहिन आदि सबके व्यवहार का ज्ञान बीज रूप से शनैः शनैः उसके मन में अंकुरित होने लगता है। आपने देखा होगा जिस घर में छूत-छात का बहुत विचार होता है वहां अगर बड़ा भाई एक गिलास में पानी पीकर जूठा पानी अपने छोटे भाई को दे, तो वह बच्चा तीन-चार साल की आयु वाला होने पर भी उसके लेने से इन्कार कर देगा, यह कहते हुए कि यह जूठा है, मैं नहीं पीता। परन्तु जिन परिवारों में इस प्रकार का विचार नहीं होता वहां इस तरह की बातों पर कोई ध्यान नहीं देता। इसका कारण वातावरण से बना उनका दृष्टिकोण ही है। इसी प्रकार हम अपने शिक्षा काल में गुरुजनों और सहपाठियों के सम्पर्क में जो पाते हैं उससे भी अपने दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं। यही नहीं, प्रतिदिन पढ़ने वाली पुस्तकें, अथवा खेल-तमाशे भी अपना असर हम पर छोड़ जाते हैं। इस भेद को हम हिन्दू घर में उत्पन्न बालक और मुसलमान घर में पैदा हुए बच्चों के विकास में बड़ी खूबी से देख सकते हैं। दोनों ही अपने-अपने धर्म मार्ग पर चल कर सत्य को प्राप्त करते हैं। शतपथ में लिखा है—

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद

अर्थात जब माता-पिता-आचार्य तीनों ही उत्तम शिक्षक हों तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। जैसा-जैसा इनका धर्म और व्यवहार होता है वैसा-वैसा ग्रहण करता हुआ बालक उनका प्रतिरूप मनुष्य बनता जाता है।

साधारण मनुष्य इस बात पर भले ही ध्यान न दें परन्तु ठग डाकू लोग इस बात का विशेष ज्ञान रखते हैं। वह भली प्रकार जानते हैं कि अपने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बच्चों को अपने अनुरूप बनाने के लिए किस प्रकार के वातावरण में उन्हें रखना है उन्हें नृशंस और क्रूर बनाने के लिए किन उपायों का सहारा लेना है।

उदाहरणार्थ आप देखेंगे कि डाकू किसी भी मत के मानने वाले क्यों न हो भवानी की पूजा अवश्य करते हैं इसीलिए अपनी लूट-पाट के माल का अंश वे लोग देवी के मन्दिर आदि के निर्माण के निमित्त लगाते हैं। दशहरे के उत्सव पर सामूहिक रूप से रंगरलियां मनाने के हेतु मन्दिर में बलिदान देते हैं। सुरापान कर खूब नाचते गाते हैं। इनके यहां एक रीति है कि जिसके अनुसार स्त्री-पुरुष-बच्चे सब मन्दिर में इकट्ठे होकर, मन्दिर की दीवार के साथ बलि के लिए एक बकरा बांध देते हैं। और बीच में एक पर्दा लटका देते हैं। दूसरी तरफ सब लोग शराब पीकर नाच गाना आरम्भ कर देते हैं, और फिर उनका मुखिया हाथ में तलवार लेकर पहले खूब नाचता है फिर उसी तलवार की नोक से बकरों की आंखों को फोड़ देता है। जब बकरा पीड़ा से तड़पता है तो बच्चे उसको घेर कर खूब हंसते गाते और खुशियां मनाते हैं परन्तु कुछ बच्चे इस दृश्य को सहन नहीं कर सकते और अपनी आंखों पर हाथ रख लेते हैं, इससे दूसरे बच्चे उन्हें कायर कह कर तंग करते है। इसी बीच मुखिया बकरे और लोगों के मध्य में बंधे परदे को तलवार की नोक से फाड़ देता है जिसके बाद रीति के अनुसार इस पर उन लोगों के अन्दर का मानवाचार समाप्त हो जाता है और वे लोग हर कुकृत्य करना आरम्भ कर देते हैं। ऐसे वातावरण में पलने वाले बच्चे कालान्तर में समाजका पाप बन कर फूटते हैं। इससे स्पष्ट है कि हमारे दृष्टिकोण को बनाने वाला वातावरण ही होता है। इसीलिए कहा गया है ऐसी सन्तान बड़ी भाग्यशाली है जिसके माता-पिता धार्मिक और विद्वान होते हैं।

आजकल सबको शिकायत है कि बच्चे झूठ बोलते हैं। अगर ध्यान दिया जाय तो इसका कारण यह देख पड़ता है कि माता-पिता शिक्षक अपने बचपन के संस्कारों में ऐसे जकड़े हुए हैं, कि उनका इन संस्कारों को छोड़ना नितान्त कठिन हैं यही रोग सहज-भाव से इनके बच्चों में जड़ जमाता जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्य सम्भाषण के लिए दो बातों पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है एक तो सत्य किसी के हित अथवा न्याय के लिए हो। दूसरे किसी के सुख के लिए बड़े नम्र और शिष्ट रूप से हो।

"सच्चा हो सुखन लेकिन शीरीं दहन से निकले"

किसी को दुःख देने वाला या कड़वा लगने वाला वचन नहीं होना चाहिए, इसलिए अन्धे को अन्धा न कह कर सूरदास कहते हैं।

कई बार ऐसा देखा गया है कि हित के लिए भी बोला हुआ झूठ अथवा अशिष्ट ढंग से कही बात भीषण परिणाम पैदा कर देती है। कथानक आता है, कि रमणदास नाम का कुमार अपने पिता का इकलौता बेटा था। वह बहुत ही आज्ञाकारी-बुद्धिमान और अपने पिता के वचनों को पालन करने में तत्पर रहता था। परन्तु उसके पिता ने उसकी कभी प्रशंसा नहीं की, हमेशा किसी न किसी प्रकार की त्रुटि निकाल कर उसे फटकारा जाता था। लड़का पिता के इस व्यवहार से हमेशा उदास और परेशान रहता था। इस प्रकार के कटु व्यवहार से तंग आकर उसने अपने मन में निश्चय किया कि आज मैं अपने पिता का अन्त करके ही दम लूंगा। इस कार्य को पूरा करने के लिए वह हाथ में छुरा लेकर मकान में छुप कर बैठ गया। पिता ने आते ही पूछा, क्या रमणदास आ गया है? उसकी मां ने कहा, आपको यह कैसी आदत पड़ गई कि आप हमेशा उसकी बुराई ही करते रहते हैं। लगता है कि आप उसे देखना भी पसन्द नहीं करते। आपको उसके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। इस पर पिता ने उत्तर दिया, तुम्हारा इस प्रकार सोचना बड़ी भारी भूल है। मैं अपने पुत्र को अत्यधिक प्यार करता हूं। परन्तु मैं उसको आदर्श रूप में देखना चाहता हूं वह अपने सदाचार से उस तेज को प्राप्त करे जिससे सब लोग उसकी प्रशंसा करें, इसलिए मैं उसके मुंह पर उसकी प्रशंसा नहीं करता, ताकि उसको अभिमान न हो जाय और जिससे उसकी उसकी प्रगति रुक न जाय। छिपा हुआ बेटा, माता पिता की इस बात को सुन रहा था। उसे अपने पिता के विचारों को जान कर अपने से बड़ी ग्लानि हुई। वह सोचने लगा, 'मेरा पिता मुझ से कितनी बड़ी आशा रखता है, इसलिए यह मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने पिता से अपने हृदय की सच्ची 'बात

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहकर क्षमा याचना करूं ।' क्योंकि सच बोलने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है और आदमी क्षमा के योग्य बन जाता है किसी ने सत्य कहा है कि जब मनुष्य की वाणी में सत्यता और मिठास का संमिश्रण हो, तभी वह उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है ।

हां ! यह भी सत्य है कि कई बार बच्चों के सुधार के लिए या दुष्टों को दुराचार से हटाने के लिए, कठोरता आदि कटु वचनों का प्रयोग भी करना पड़ता है । परन्तु यह व्यवहार हितकारी होने से उचित ही समझा जाता है ।

मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि

"सत्यमेव जयते नानृतम्" ।

सत्य की विजय होती है । असत्य की नहीं, इस सूक्ति से पता चलता है कि सत्य बोलने वाले को सचाई को विजयी बनाना होता है । असत्य को दबाने या उस पर विजय प्राप्त करने की योग्यता उत्पन्न करनी पड़ती है । इसके लिए उचित कार्य भी करना पड़ता है । दो देशों के युद्ध में देखा गया है कि दोनों ही अपने को सत्य मार्ग पर चलने वाला कहते हैं और जो देश अपने सत्य को संसार के सामने प्रकट नहीं करता परन्तु इसी विश्वास पर तुला हुआ है, कि हमने सत्य मार्ग का अवलम्बन किया है इसलिए अन्त में हमारी विजय होगी, ऐसा देश सत्य की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध होता है । उसका सत्य असत्य बनकर रह जाता है इसलिए सत्य की रक्षा करने के लिए सम्पूर्ण संसार को अपनी सच्चाई से अवगत करना ही सत्य-रक्षा का एक मात्र मार्ग है । बया पक्षी अपना घोंसला तिनकों से बुनता है जो बड़ा सुन्दर और सुख-दायी होता है । उसके विपरीत बन्दर कभी अपना घर नहीं बनाता । ऐसी एक कथा नीतिशास्त्र में आती है कि एक बार वर्षा में एक वृक्ष पर भीगता हुआ बन्दर शीत से ठिठुर रहा था, जिसे देखकर उस वृक्ष पर रहने वाली बया ने उसकी इस दुर्दशा पर सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए बन्दर को उपदेश दिया कि हे बन्दर आपत् काल में अपनी रक्षा करने के लिए मेरी तरह तू भी कोई घर क्यों नहीं बना लिया करता । इसे सुनकर बन्दर क्रोधित हो गया और उसके घोंसले को छिन्न-भिन्न कर फेंक दिया । देखो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बया का सत्य कितना विद्रूप बनकर उसके विनाश कारण बना। इसलिये कहा है कि सत्य बोलने के अतिरिक्त उसको उचित सिद्ध करने में भी योग्यता का होना आवश्यक है। यही कारण है कि हम लोगों को असत्य का आश्रय लेना पड़ता है। इसी तरह देशों को भी अपने झगड़ों को निबटाने के लिये योग्यता से अपने सत्य को प्रतिपादित करना पड़ता है ताकि संसार के सामने उनका सत्य, सत्य सिद्ध हो सके। हमने पिछले दिनों भारत चीन के मध्य हो रहे युद्ध की खबरों को पढ़ा, दोनों देश जिस रूप में संसार के सामने खबरें रख रहे थे उनसे अमेरिका ब्रिटेन-फ्रांस आदि देश भारत को, रूस-पाकिस्तान आदि देश चीन को सत्यवादी समझ रहे थे। और कुछ ऐसे देश भी थे जो दोनों की बातों में सत्यासत्य का निर्णय करने में कठिनता अनुभव कर रहे थे। अन्त में वही सत्य सिद्ध होगा जो विजय पताका फहरायेगा। क्योंकि झूठ कभी विजयी नहीं होता, इसलिये सत्य मार्ग पर चलने के लिए वैयक्तिक रूप से या सामाजिक दृष्टि से आत्मिक बल की वृद्धि अनिवार्य है।

३—अस्तेय

चोरी न करना, भेद-भाव न रखना, मन और वाणी से एक-सी स्थिति में रहना, अस्तेय कहलाता है।

समाज की व्यवस्था को ठीक रखने के लिए यह तीसरा नियम है। जिस देश के नागरिक सब लोगों और वस्तुओं को समभाव से ग्रहण करते हैं, आपस में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं समझते, उस देश के वासी वास्तविक सुख का अनुभव करते हैं। उन्हें पुलिस और ताले की आवश्यकता नहीं रहती। हर व्यक्ति अपने अंतर में अनासक्ति की भावना से लोभ का संवरण करता है और किसी की वस्तु को अपना नहीं समझता। इसी प्रकरण में एक कथानक आता है, कि एक व्यक्ति ने अपनी जमीन किसी अन्य व्यक्ति को बेच दी। कुछ समय के बाद उसे जमीन में गड़ा हुआ धन उपलब्ध हुआ। जमीन को खरीदने वाला व्यक्ति पुराने मालिक के पास जाकर उस धन को वापिस करना चाहता है, यह कहते हुए कि जमीन खरीदते हुए मैंने इस सामान की कीमत नहीं दी थी। अतः इस पर मेरा कोई अधिकार नहीं, यह आपकी है। परन्तु पुराना मालिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह कहते हुए कि सारी भूमि बेचने के बाद उसमें निकली किसी वस्तु पर मेरा अधिकार नहीं, उस धन को लेने से इंकार कर देता है। ऐसे अनासक्त व्यक्ति धन्य हैं। ऐसे ही लोग वास्तव में अस्तेय नियम के पालक समझे जाते हैं।

अस्तेय का दूसरा भाव यह भी है कि मन में चोरी का भाव न लाना। किसी देश और समाज की उन्नति के मूल में इस भावना का होना अनिवार्य है, तभी वह समाज उन्नति कर सकता है। वेद में कहा है :—

समानं मनः सह चित्तमेषाम्।

अर्थात् सबके विचार समान हों और चित्त एक हो। यह सामाजिक उन्नति का वैदिक गुर है और यह तभी सम्भव है जब मन में अस्तेय का भाव हो।

४—ब्रह्मचर्य

यह जितेन्द्रिय और विद्यार्थी के अर्थ में आता है। जो विद्यार्थी अपना मन और तन केवल सत्य विद्या के अर्जन में लगा देता है वह ब्रह्मचारी कहलाता है। जो गृहस्थ भी सदाचार का जीवन अपनाता है वह भी ब्रह्मचारी कहलाता है।

जिस देश या जाति में अच्छे विद्वान् हों और गृहस्थ भी ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए जीवनयापन करते हों, वह देश और जाति सदा उन्नति करते हुए सुख पूर्वक जीवन बिताती है। जहां पर पुरुष और स्त्रियां विद्याहीनता में लम्पटों का जीवन बिताते हैं वह अंत में दुःख को प्राप्त होते हैं अपने देश और जाति को अवनति के गर्त में धकेलते हैं।

जिस समय बालक और बालिकायें बाल्यावस्था को पार कर यौवन में प्रविष्ट होते हैं तो जीवन में नैसर्गिक परिवर्तन आता है। सृष्टि के नियम के अनुसार हर जीवित प्राणी, वृक्ष, वनस्पति आदि भी अपनी जाति का विस्तार करते हैं। यही नियम मानव के लिए भी अनिवार्य है। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहां यह भावना पशुओं में एक नियत समय पर उत्पन्न होती है, वहां मनुष्यों को एक विशेष आयु की स्थिति में प्रवेश करने पर हमेशा बनी रहती है। यह शक्ति जीवनीय रसों का सार होती है। अगर इसका प्रयोग अपरिपक्व स्थिति में किया जाय तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शरीर का विकास रुक जाता है। बुद्धि और स्मरण शक्ति का ह्रास हो जाता है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य निर्बल और निकम्मा हो जाता है। फिर उसमें किसी कार्य को करने की क्षमता भी नहीं रहती जिससे अंततः वह देश और जाति के लिए अभिशाप बन जाता है।

प्रकृति ने कितने आश्चर्यजनक नियमों का निर्माण किया है। उत्पत्ति के बीज शरीर के बनने के साथ-साथ एक विशेष स्थान पर सुरक्षित रखे जाते हैं। प्रोटीन जो हमारी खुराक का विशेष भाग है और जो हमारे अंगों में शक्ति उत्पन्न करता है, इन बीजों को बढ़ाने में सहायक होता है। परन्तु जब हम इन बीजों को शरीर से बाहर फेंकना शुरू कर देते हैं, तो प्रोटीन की सारी शक्ति इनकी ओर लगनी शुरू हो जाती है इस-लिए शरीर के बाकी हिस्से इसके अभाव से शक्तिहीन होने लगते हैं। चिकित्सकों का ऐसा मत है कि प्रोटीन की कमी को पूरा करने के लिए भोजन में प्रोटीनवर्द्धक पदार्थों की वृद्धि कर लेनी चाहिए, ताकि इस क्षति को पूरा किया जा सके। यह प्रोटीन दूध, दाल आदि से ली जाती है। अतः भोजन में इसकी मात्रा बढ़ा देने से काम चल जाता है।

परन्तु जो लोग विलास प्रियता के कारण इस प्रकार की वृद्धि करने की बात सोचते हैं, वह भूल करते हैं, क्योंकि अवस्था के साथ-साथ शरीर की पाचन शक्ति ह्रासोन्मुख होती जाती है, जिससे दूध आदि का प्रयोग हाजमे की कमजोरी के कारण पूरा फल नहीं दे पाता, उधर ब्रह्मचर्य विहीनता का आचरण मनुष्य शरीर को दुर्बल बनाता जाता है।

युवावस्था में पुरुष और स्त्री की परस्पर शारीरिक भूख इतनी उग्र रूप में प्रकट होती है कि इसको रोकना उनके लिए कठिन हो जाता है। इसीलिए एकान्त में युवा लड़के लड़कियों का आपस में मिलना निषिद्ध कहा गया है। तभी तो हमारे देश में सह शिक्षा को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता था इसलिए यह मान्य था कि लड़के और लड़कियों के विद्यालय अलग-अलग स्थानों पर होने चाहिएं उनको ऐसे साहित्य और खेल-तमाशों से दूर रखना चाहिए, जो यौन प्रवृत्ति को जागरूक करने वाले हों। इसके विपरीत उनके मन को अध्ययन में लगाए रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

क्या युवा लड़के लड़कियों का आपस में न मिलना किसी प्राकृतिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नियम की अवहेलना करना है ? क्या इसे किसी बुरे परिणाम की आशा हो सकती है ? कुछ विद्वानों का मत है कि युवक स्त्री पुरुष का साधारण तौर से मिलना कोई दोष युक्त नहीं। क्या आपके घर में बहिन भाई मिलकर नहीं रहते ? इससे कौन-सी अनुचित स्थिति पैदा हो जाती है ? इसलिए दोनों प्रकार के विद्यार्थियों का इकट्ठा पढ़ना, मिलना-जुलना मित्रवत् रहना, घूमना, फिरना कोई बुरा नहीं है। अगर कोई एक आध अनुचित बात हो भी जाय तो उसे ऐसे समझना चाहिए जैसे कोई चोर देश के नियम के विरुद्ध चोरी करता है और पकड़े जाने पर दण्ड का भागी माना जाता है।

आजकल सन्तान उत्पत्ति को रोकने के लिए वैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग को भी बुरा नहीं माना जाता। स्त्री पुरुष का सामूहिक नाचना गाना तो सभ्यता का अंग माना जाने लगा है। समय के अनुसार परिस्थितियां बदलती हैं। मनुष्य उसमें बहता चला जाता है। पश्चिम की सभ्यता ने आज हमारे देश में इस प्रकार की एक लहर पैदा कर दी है, जिसमें युवक और युवती बहे जा रहे हैं। शायद कभी इसके दुष्परिणाम को दूर करने के लिए किसी महापुरुष का उदय हो, जो फिर से हमें भारतीय संस्कृति की तरफ खींचकर ले जाय :

५—अपरिग्रह

अपरिग्रह भोग साधनों अथवा पदार्थों के संग्रह के लोभ से मुक्त होने का नाम है। जिसके पास भोग के पदार्थों का आधिक्य हो जाता है, वह अभिमानी भी हो जाया करता है। गरीबों और निर्बलों पर अत्याचार करने वाले ऐसे पुरुष निन्दा के पात्र बनकर दुःख को भोगते हैं।

आधुनिक समाज की स्थिति के अनुसार धन ही सब प्रकार के भोगों का वास्तविक साधन है। जब किसी के पास आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह हो जाता है, तो वह धनवान या पूंजीपति कहलाता है।

धन का अत्यधिक संग्रह करने वाला मनुष्य यह नहीं सोचता कि इतने अधिक भोग के पदार्थों का संग्रह मेरे किस काम आएगा। भोग भोगने की भी एक सीमा है। उदाहरणार्थ आप अन्न संग्रह को लें—

मान लो कि एक व्यक्ति को कोई बीस मन अनाज की आवश्यकता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है, परन्तु वह अपने पास हजारों मन अन्न का संग्रह कर लेता है। दूसरी तरफ संसार में अन्न की उत्पत्ति तो प्रायः आबादी की मात्रा के हिसाब से एक समान ही रहती है। इससे आप जान सकते हैं, कि कितने आदमी उस एक व्यक्ति के अधिक संग्रह के कारण अनाज से वंचित हो जाते हैं। यही नियम दूसरे पदार्थों के विषय में भी लागू होता है। वास्तव में परिग्रह किसी भी समाज के लिए बड़ी हानिकारक है। इसलिए समाज की सुख समृद्धि के लिए अपरिग्रह आवश्यक है। जहां इस यम का उचित व्यवहार नहीं होता वहां गरीबों और निकम्मों की वृद्धि होती है जिसके कारण देश-दासता की ओर अग्रसर होना शुरू हो जाता है।

भारत के प्राचीन इतिहास से विदित होता है कि धनवान् व्यक्ति अपना धन चार-पांच वर्षों के बाद सुपात्रों को दान कर दिया करते थे। कठोपनिषद् के आरम्भ में ऐसी ही एक कथा आती है:—वाजश्रवा (अन्न का दान करने वाला) एक प्रसिद्ध घराना हुआ है, जो रिवाज के अनुसार हर पांच वर्ष बाद अपना सर्वस्व दान कर दिया करते थे। उस खानदान कें सुपुत्र उद्दालक ने अपनी परम्परा के अनुसार विश्वजित् नामक एक महान् यज्ञ किया जिसमें अपना सारा अन्न, पशु, धन आदि वितरित कर दिया।

महाभारत में भी कुछ आर्य राजाओं की कथा आती है, जो कि प्रजा से कर के रूप में लिया हुआ धन अपने कोष में जमा करने के स्थान पर प्रजा की उन्नति और सुख के लिए खर्च कर दिया करते थे। अपने लिए धन का संग्रह करने वाले राजाओं को असुर की संज्ञा दी जाती थी। किसी भी देश में इस प्रकार की व्यवस्था होने से न तो लोग इतने गरीब ही होते हैं और न इतने धनाढ्य। हां इसकी अवहेलना करने से देश और समाज उन्नति के स्थान पर अवनति की तरफ जाने लगते हैं।

मनु ने वर्ण व्यवस्था के नियम बनाते हुए मनुस्मृति में लिखा है, कि जब किसी जाति में शूद्रों की संख्या बढ़ जाती है तो वह जाति कई रोगों का शिकार होकर मृत्यु की ओर बढ़ती हुई दिखाई देती है। वेद की शिक्षा के अनुसार भी धन का संग्रह करना अच्छा नहीं समझा जाता। अथर्ववेद में आया है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शतहस्त समाहर सहस्त्र हस्त संकिर !

"सैकड़ों हाथों से संग्रह कर हज़ारों हाथों से बिखेर" अर्थात् अपनी शक्ति के अनुसार खूब कमा और उसे जन-कल्याण में खर्च कर। इसलिए धन का संग्रह तो पाप नहीं है। अपितु आवश्यकता से अधिक धन जमा करना लोभ है और पाप का कारण है। इतिहास इस बात का साक्षी है, कि जो जाति लोभ और स्वार्थ में फंस जाती है, उसकी हमेशा पराजय ही होती है। इसलिए कहा गया है कि हे मनुष्य! जितना तुझसे हो सकता है, उतना पुरुषार्थ कर। पुरुषार्थ से अर्जित धन में से उतना ही प्रयोग कर जितने की तुझे आवश्यकता है। लोभ से दूर रह। जैसाकि पहले कहा गया है। धन का संग्रह पाप नहीं, धर्म सिद्ध है। हां उसका अनुचित प्रयोग ही पाप है। परन्तु साधारण रूप में इससे धर्म विरुद्ध आचरण हो ही जाता है। जब तक कोई धनवान् युक्त आहार-विहार से रहता है, अपने कमाये धन को राष्ट्र की पूंजी समझता है, तब तक उस धन से किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं होती, अपितु धनवान् व्यक्ति के यश का कारण बनती है। यह स्थिति प्रायः उस एकत्रित जलाशय के समान दिखाई देती है, जिसके जल से बड़ी-बड़ी मशीनें चलाकर विद्युत का उत्पादन किया जा सकता है। नहरें बनवाकर खेतों को उपजाऊ बनाया जा सकता है। जैसा कि हम गोविन्दसागर या भाखड़ा बांध को देखकर जान सकते हैं। परन्तु यह तभी सम्भव है, जबकि हम इस जलधारा को भली प्रकार बांधकर उससे कार्य सम्पादन कर सकें। अगर हम इस जलधारा को सम्यक् प्रकार से बांध नहीं सकते तो वह पानी केवल निरर्थक ही सिद्ध नहीं होगा, अपितु बाढ़ का रूप धारण कर बर्बादी का कारण बन जायगा। इसी प्रकार के धन के प्रति भी हमें सजग रहना होगा ताकि किन्हीं स्वार्थी व्यक्तियों के हाथों में पड़ जाने पर यह देश की बर्बादी का कारण न बन जावे। इसीलिए आधुनिक विचारक पूंजीवाद के स्थान पर समाजवाद की स्थिति पैदा करने में लगे हुए हैं। यही बात वेद मन्त्र द्वारा कितनी स्पष्ट रूप में मुखरित हो उठी है—

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ।

अर्थात् पीने वाले जल का स्थान एक हो, सबके भोज्य पदार्थ भी एक समान हों। क्योंकि मैंने सम्पूर्ण संसार के प्राणियों को एक ही जोत में बांध रखा है। अपनी आत्मिक उन्नति के लिए प्रकाश अथवा ज्ञान की ओर ऐसे मिल-जुलकर चलो जैसे गाड़ी के पहिये के चलने पर इसके अरे नाभि की ओर मुंह किये एक साथ चलते हैं।

इस वेद मन्त्र से यह स्पष्ट है, कि हमारे प्राचीन समाजवाद ने भौतिकता के साथ-साथ आध्यात्मिक पक्ष को भी बहुत महत्त्व दिया हुआ है। देखिये जहां हमारे खान-पान, रहन-सहन की समानता पर बल दिया है, वहां हमारे आन्तरिक जीवन की उन्नति के भी एक ही मन्त्र और उसकी सिद्धि के लिए एक ही पथ का अनुकरण करने का आदेश दिया है।

उपरिलिखित बात से स्पष्ट हो गया होगा कि वैदिक साम्यवाद और आज के कम्यूनिज़्म में क्या अन्तर है ? वैदिक नियमों के अनुसार हर व्यक्ति के मन में उन भावनाओं का उद्बोध करना है, जो उसे स्वार्थ से परमार्थ की ओर ले जाएं। इसके अतिरिक्त उसमें आत्मिक उन्नति का भी विधान है। किन्तु आधुनिक कम्यूनिज्म में आध्यात्मिक उन्नति के लिए कोई स्थान नहीं। इसके विपरीत भौतिक उन्नति के लिए शासक के आदेश को, बिना सत्यासत्य का निर्णय किये, मानना अनिवार्य होता है। इससे मानव की मूलभूत स्वतन्त्रता का नाश होता है, जिससे जीवन एक यन्त्र के समान नीरस हो जाता है।

पूंजीवाद का कारण नव यन्त्रों का निर्माण, उनका आविष्कार तथा धातुओं को ही धन का मान समझना है। प्राचीन समय में प्रत्येक गांव प्रत्येक देश अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयमेव ही कर लेता था। हर गांव में खेती-बाड़ी करने वाले, कपड़े बुनने वाले, राज, बढ़ई, लोहार आदि होते थे, जिससे गांव वालों की हर आवश्यकता पूरी हो जाती थी। उस समय मशीनों का रिवाज नहीं था। इससे हर व्यक्ति को काम मिलता था। एक-दूसरे के साथ सहयोग का जीवन बीतता था। ऐसे काल में देशों के आन्तरिक जीवन में शान्ति और सामाजिक अथवा आध्यात्मिक जीवन में उन्नति हुआ करती थी। परन्तु आजकल के समाज-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वाद में ऊपर से लादी हुई समानता का परिणाम वैसा लाभप्रद और सुख-दायक नहीं होता। इसका एक कारण यह है कि ऐसे वातावरण में साधारण मनुष्य का आन्तरिक विकास नहीं हो सकता। अपितु बाहर के दबाव के नीचे आकर उसका व्यक्तित्व चकनाचूर हो जाता है।

व्यक्ति के जीवन के विकास के लिए स्वतन्त्रता अत्यावश्यक है। परन्तु समष्टि जीवन के लिए सामाजिक बन्धनों का होना भी जरूरी है। यह बन्धन रिवाज़ स्वभाव या अभ्यास बनकर मनुष्य का कल्याण करते हैं। परन्तु जब यही बातें किसी दबाव में आकर करनी पड़ें, तो आदमी का जीवन दुःखमय हो जाता है। अगर मनुष्य का आध्यात्मिक विकास न हो तो प्रायः मनुष्य में न्याय और प्रेम का अभाव हो जाता है जो व्यक्ति और समष्टि दोनों की उन्नति के आधार हैं।

इस पूंजीवाद का विकास किस प्रकार हुआ? इसके उत्तर में यह एक कथा है—सूरज पुर तीन सौ घरानों की एक बस्ती थी। वहां का हर व्यक्ति कुछ न कुछ काम करता था। उनमें कुछ बुनकर, कुछ खेतिहर तथा अन्य जो भी थे, आपस के सहयोग को बनाये रखने के लिए किसी न किसी काम में लगे रहते थे। और अपने जीवन की सब आवश्यक वस्तुओं को वहीं से प्राप्त कर लेते थे। इन लोगों का जीवन साधारणतः बड़ा सुख-सम्पन्न था। न कोई गरीब था, न कोई अमीर, सब सामाजिक एकता में बंधे बड़ी शान्ति से अपना जीवन यापन कर रहे थे।

इनमें से एक मनुष्य ने जो अधिक बुद्धिमान् था, कुछ धन संग्रह करके कपड़ा बुनने की एक आधुनिक मशीन खरीदकर अपने घर में लगा ली। और उसकी सहायता से वह कपड़े बुनने लगा। इस प्रकार दूसरे बुनकरों से उतने ही समय में दस गुणा अधिक कपड़ा बुनने लगा। इससे उसके धन की राशि भी बड़ी शीघ्रता से बढ़ने लगी और वह शीघ्र ही धनी हो गया। उसका रहन-सहन, खान-पान, पहिरावा यहां तक कि बात करने का तौर-तरीका भी दूसरों से भिन्न हो गया। इसके बाद उसने अधिक धन कमाने के लिए और मशीनें मंगाकर गांव वालों को अच्छे वेतन पर उन मशीनों पर काम करने के लिए नौकर रख लिया। उनके काम का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समय निर्धारित कर दिया, जिससे लोगों को काम और आराम दोनों की सुविधा हो गई और वह लोग उसी के काम में संलग्न हो गए।

कारखाना दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया इससे काम करने वालों के दर्जे भी बदलने शुरू हो गये। कोई पचास, कोई सौ कारीगरों के काम देखने के लिए नियुक्त कर दिए गए। उनके वेतन में अन्तर आया। इस प्रकार अमीर-गरीब की श्रेणियां बननी आरम्भ हो गईं। उनके आपस के विचारों की एकता में भी अन्तर उत्पन्न होना शुरू हो गया जिससे कि उन्होंने एक-दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ में उचित-अनुचित सब प्रकार के काम करने शुरू कर दिये। उनके इस परिवर्तन को जिन लोगों ने लक्ष्य न करके किसी उलटी भावना को कायम रखने का प्रयत्न किया, उन्हें सुरक्षा के नियमों की आड़ बनाकर बड़ी बेदर्दी से कुचल दिया गया, और कुछ कारखाने के चालकों ने धन के ज़ोर से सत्ता को अपने हाथों में करके कारीगरों को चूसना शुरू कर दिया। इस प्रकार पूंजीवाद के सब दुष्परिणाम स्पष्ट होने लगे। ऐसे वातारण को देखकर एक जर्मन दार्शनिक कार्ल मार्क्स ने एक पुस्तक लिखी, जिसमें पूंजीवाद को एक घृणित विनाशकारी बताकर लोगों को ऐसी विकट परिस्थिति से पृथक् रखने के लिए उत्तेजित किया। काम करने वालों को एकत्रित करके अपने अधिकारों की रक्षा के लिए उभारा। बहुत-से लोग जो समाज की बनी हुई स्थिति को ईश्वरीय इच्छा या कर्मों का फल समझकर चलते थे, स्वार्थी और राजनीति के विरोधी बताये गये। समाज के अन्दर आधिभौतिक समानता को लाने के लिए आत्मा-परमात्मा के भाव को मिटाना आवश्यक समझा गया। वास्तव में आध्यात्मिक जीवन भौतिक जीवन से कोई पृथक् नहीं है। परन्तु मार्क्स ने अपने विचारों में इसका पूर्णरूप से विरोध किया जिसके कारण मार्क्सवाद भौतिकवाद बनकर पश्चिमी 'मैटिरियलज़्म' के नाम से प्रसिद्ध हो गया, जिसके अनुसार भौतिक सुख-सुविधायें परम आवश्यक मानी गईं। यह सत्य है कि भौतिक सुविधायें बहुत अंशों में जाति और समाज को बनाने वाली होती हैं।

उदाहरण के लिए आप आर्य जाति के वर्णाश्रम को लीजिये। वेद के अनुसार समाज का विभाजन मनुष्यों के गुण, कर्म, स्वभाव को देखकर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किया गया था। परन्तु आज वह दृष्टिकोण समाप्त हो गया है। उसके स्थान पर जन्म से ही वर्णाश्रम की व्यवस्था को मान लिया गया, जिससे हिन्दू जाति अवनति के गर्त में जा गिरी। आज हम लोगों की इतनी हीन अवस्था हो गई है, कि मनुष्य-मनुष्य से घृणा करते हैं। कइयों को अछूत अथवा भ्रष्ट कहकर उनके साये से भी बचना चाहते हैं। तभी आज हमारी जाति संसार की उन्नत जातियों से पिछड़ गई है। शूद्रों के कार्य को देख-कर हमने उन्हें गंदा मान लिया। अगर इस बात को सत्य भी मान लिया जाय तो, इस विभिन्नता को दूर करने का एक ही उपाय है, कि इनको भी द्विज की श्रेणी में ला खड़ा किया जाय। महात्मा गांधी ने इनको हरिजन नाम इसी अभिप्राय से दिया था। परन्तु इस समय इस नाम का भी दुरुपयोग हो रहा है।

हम मार्क्स की नियमावली पर विचार कर रहे थे। इसको वास्त-विक रूप देने वाले "लेनिन" हुए हैं, जिन्होंने इस मार्क्सवाद को पहले-पहल रूस का राजधर्म बनाया। परन्तु दुःख इसी बात का है, कि उन्होंने इसके प्रचार के लिए तलवार का आश्रय लिया। इससे सारे संसार में अशान्ति फैली हुई है। सुख के स्थान पर दुःख की धारा बह रही है। वैदिक साम्यवाद को देखिये, जैसा कि पहले कहा जा चुका है यह केवल भौतिक ही न होकर आध्यात्मिक भी है। और इसकी सबसे बड़ी विशे-षता यह है, कि यह तलवार के बल से प्रचारित नहीं है, अपितु ज्ञान द्वारा मनुष्य की वृत्तियों में परिवर्तन लाने का यह प्रयत्न करता है।

इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है, कि हमारे शरीर में जो "मैं" है वह ही हमारे समाज और जाति का एक अंग है। इसके ठीक विकास के लिए समाज की व्यवस्था को ठीक रखना आवश्यक है।

अब आपको स्पष्ट हो गया होगा कि उपर्युक्त जिन पांच नियमों का उल्लेख किया गया है, उनका पालन कितना ज़रूरी है। अगर ऐसा न किया गया, तो सारी जाति रोग-ग्रसित हो जायगी जिससे "मैं" का विकास नहीं हो सकेगा और जीवन दुःखमय हो जायेगा।

समाज की व्यवस्था को ठीक करने के पश्चात् "मैं" की उन्नति के लिए कुछ नियमों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। महर्षि पतंजलि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ने योग-शास्त्र में पांच नियमों का उल्लेख किया—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान।

१. शौच—शरीर की सफाई

जो भोजन हम करते हैं, शरीर उसमें से रसादि को निकालकर अपने अंगों की वृद्धि के लिए रख लेता है, बाकी जो भाग निकम्मा रह जाता है, उसे मल-मूत्र के रूप में बाहर निकाल देता है। अगर यह मल-मूत्र शरीर से बाहर न निकाला जाए तो यह रोग का कारण बन जाता है। इसके अतिरिक्त जिन सजीव कोष्ठकों से हमारे शरीर का निर्माण हुआ है, वह भी प्रतिक्षण लाखों की संख्या में मरते रहते हैं और नए बनते भी रहते हैं। उन मरे कोष्ठकों को भी अगर शरीर से बाहर न निकाला जाय, तो वह भी शरीर में दुर्गन्ध पैदा करके उसे रोगी बना देते हैं। परन्तु यह अन्दर ठहरते नहीं। प्रायः यह मांस-पेशियों के फैलने, और सुकड़ने के समय पसीने के साथ बाहर निकाल दिये जाते हैं। जो लोग परिश्रम का काम करते हैं, उनके पसीने में इस प्रकार के "सेलों" को अणुवीक्षण यंत्र (माईक्रोस्कोप) की सहायता से देखा जा सकता है। इस तरह यह मल का अंश शरीर में से निकलता रहता है, जिससे स्वास्थ्य में किसी प्रकार की हानि नहीं होती। परन्तु उन लोगों को जो परिश्रम कम करते हैं या कुर्सियों पर बैठे ही काम-काज करते रहते हैं, इस प्रकार के मल के निकालने के लिए कोई पांच मील की सैर करनी ज़रूरी है। स्त्रियों के सम्बन्ध में अनुमान लगाया गया है, कि अगर वह घर का काम करती रहें, तो उनका व्यायाम इस पांच मील के भ्रमण के बराबर हो जाता है। परन्तु जो लोग इस प्रकार समय की कमी के कारण सैर करने में असमर्थ हैं, उनको पर्याप्त व्यायाम करना चाहिए। क्योंकि जो लोग कुछ भी नहीं कर पाते, उनके शरीर से इन मृत कोष्ठकों की दुर्गन्ध निकलती रहती है। रुग्णावस्था में भी यह दुर्गन्ध आया करती है। इससे स्पष्ट है, कि अपने शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिए हमें थोड़ा-बहुत शारीरिक परिश्रम अवश्य करना चाहिए। ऐसा न करने से शरीर रुग्ण और गंदा हो जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्यायाम आदि के पश्चात् मृत कोष्ठकों को शरीर पर से दूर करने के लिए जल से स्नान करना भी आवश्यक है। बहते पानी से स्नान को इसीलिए अधिक महत्त्व दिया गया है। साबुन शरीर के इस प्रकार का मल दूर करने में सहायक है। परन्तु इसका अधिक प्रयोग शरीर की त्वचा को हानि भी पहुंचाता है। शरीर अपनी रक्षा के लिए अपने अन्दर से कुछ स्निग्ध पदार्थ बाहर निकालकर त्वचा को चिकना बना देता है। इससे विषैले कीटाणुओं के विष का असर कम हो जाता है। परन्तु साबुन आदि के अधिक प्रयोग से शरीर की स्निग्धता कम हो जाती है, जिससे हमारे शरीर पर इन विषैले कीटाणुओं का शीघ्र प्रभाव हो सकता है।

संतुलित आहार—शरीर की पवित्रता के लिए जहां व्यायाम और स्नान की आवश्यकता है, वहां शुद्ध-आहार भी होना चाहिए। अगर भोजनादि सम्यक् न हो तो शरीर ठीक मल रहित नहीं होता। भोजन ऐसा होना चाहिए जो सुपाच्य हो, यथा : दूध, दही, हर प्रकार के अनाज, दालें, चावल और फल, सब्जियां आदि।

इन चीजों से बना भोजन परिमित मात्रा में खाना चाहिए न तो अधिक हो, न कम। कुछ भाग आग पर पका हुआ होना चाहिए और कुछ कच्चा जैसे फल, सलाद आदि

शरीर भी एक यंत्र के समान है, जिसकी अनेक प्रकार की क्रियायें हैं। इस यंत्र को भली-भांति काम करने के लिए शक्ति की आवश्यकता हुआ करती है। यह शक्ति शरीर को इसके कोष्ठकों से मिलती है, जो कार्य करते समय अंगों में मरे समान हो जाते हैं। जैसा पहले वर्णन किया गया है यह मृत-वत् कण मल-मूत्र द्वारा बाहर फैंक दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अवयव भी घिसे समान हो जाते हैं, जिसके कारण अंगों में शिथिलता भी आ जाती है। जिस प्रकार एक मशीन के पुर्जे काम करते-करते जब घिस जाते हैं, तो उन्हें बदलना पड़ता है, वैसे ही शरीर के सम्बन्ध में भी होना चाहिए। परन्तु इसके साथ ऐसा नहीं किया जा सकता। इसकी तो प्रकृति स्वयमेव रक्षा करती है। जैसा आप जानते हैं, कि अगर कहीं शरीर में चोट आदि से घाव हो जाय तो प्रकृति स्वयमेव उस जख्म को भर देती है। क्या यह एक तरह से शरीर की मरम्मत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं ? परन्तु ऐसा तभी हो सकता है, जब शरीर को ठीक-ठीक आहार मिले।

आधुनिक चिकित्सा के अनुसार ऐसे भोजन को "सन्तुलित भोजन" कहते हैं, इसमें निम्न पदार्थों का होना आवश्यक है।

(१) श्वेत सार (स्टार्च)
(२) वसा (घी मक्खन आदि)
(३) प्रोटीन
(४) खाद्यौज (विटामिन्स)
(५) लवण
(६) शुद्ध वायु और शुद्ध पानी

इन सबकी सही मात्रा के मिश्रण से बना भोजन सन्तुलित भोजन कहलाता है।

स्टार्च—गेहूं या किसी अनाज के आटे को एक दो दिन पानी में रखकर कपड़े से छान लेने पर जो भाग कपड़े से निकल जाता है, वह सूख जाने पर बारीक-सा आटा हो जाता है। इसको स्टार्च या निशास्ता कहते हैं। जब इसकी रोटी को हम चबाते हैं तो यह हमारे शरीर में जाकर शर्करा (ग्लूकोज़) में बदल जाता है और शरीर में शक्ति उत्पन्न करता है। खाण्ड या शर्करा को सीधा भी खाया जा सकता है। इसके अधिक प्रयोग से यह मूत्र के रास्ते निकल जाता है, फोड़े-फुंसियों के रूप में फूट पड़ता है। रक्त में शर्करा की निश्चित मात्रा होती है। साधारण मनुष्य को २४ घण्टे में लगभग डेढ़ या दो पाव स्टार्च की आवश्यकता हुआ करती है। अगर शक्कर भी साथ हो तो इसकी मात्रा कम होनी चाहिए।

वसा—स्टार्च की तरह यह भी कार्बोहाइड्रेट है। और उसीके समान भोजन में अत्यावश्यक है। यह भी शरीर को शक्ति देता है। इसके थोड़े से प्रयोग से ही शरीर में काफी गर्मी आ जाती है। घी या तेल में पकाए पदार्थों को हजम करना कठिन होता है। इसलिए इनका अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए। कई बार इसका सत्व जिसे "केरेटीन" कहते हैं, रक्त की नालियों की दीवारों के साथ-साथ जमना आरम्भ हो जाता है, जिससे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नालियों का मार्ग छोटा हो जाने से रक्त संचरण में बाधा पड़ जाती है। जिससे रक्त का दबाव भी बढ़ जाता है। इस रोग का नाम रक्तचाप या 'ब्लड प्रेशर' है। फिर भी शरीर के लिए घी का होना अत्यावश्यक है। यह जहां शरीर को शक्ति देता है वहां बहुत-से रोगों से इसकी रक्षा भी करता है। एक युवक के लिए एक दिन में इसकी मात्रा एक छटांक तक होनी चाहिए।

प्रोटीन—उपरिलिखित स्टार्च को आटे में से निकल जाने के पश्चात् जो थोड़ा-सा भाग कपड़े में रह जाता है उसमें बहुत-सी मात्रा प्रोटीन की होती है। दूध और दूध से बने पदार्थों में, दालों और सोयाबीन आदि में यह पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। भोजन में इसका भी बहुत महत्त्व है। यन्त्र और शरीर की पहले समानता बताई जा चुकी है। जब कोई यन्त्र बहुत समय तक कार्य करता है तो उसके कुछ पुर्जे घिस जाते हैं जिसके कारण उनको निकालकर दूसरे नए लगाये जाते हैं। परन्तु शरीर के साथ ऐसा व्यवहार हर समय नहीं किया जा सकता, इसके अंग शिथिल हो जाने पर प्रोटीन ही उनकी मरम्मत करके शरीर को फिर अपनी पूर्व स्थिति के अनुरूप कर देती है। सबसे बढ़िया प्रोटीन दूध में होती है। यह सुपाच्य होने के कारण शीघ्र ही अंगों में जाकर उनकी क्षति की पूर्ति करने में सहायक होती है। दूध का प्रयोग इसलिए भी अधिक अत्युत्तम है, कि यह मल-मूत्रादि को निकालने में सहायता देता है। दालों में भी प्रोटीन होती है, परन्तु ऐसी नहीं जैसे दूध की।

हर व्यक्ति को प्रतिदिन भोजन में दो छटांक प्रोटीन की आवश्यकता होती है। एक सेर दूध से इतनी प्रोटीन आसानी से मिल जाती है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन एक सेर दूध की आवश्यकता है। परन्तु इतना दूध उपलब्ध होना नितान्त कठिन है, क्योंकि भारत में हर व्यक्ति के हिस्से में औसतन २॥ छटांक दूध आता है। अगली पंचवर्षीय योजना में बड़ी मुश्किल से यह मात्रा ३ छटांक तक पहुंच पायेगी। इसके अतिरिक्त साधारण आदमी के लिए दूध की इतनी मात्रा पचाना भी आसान नहीं। ऐसी स्थिति को ध्यान में रखते हुए आहार विशेषज्ञों का कहना है, कि सुपाच्य प्रोटीन के लिए कम से कम डेढ़ पाव दूध ज़रूर होना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बाकी की आवश्यकता दाल, आटे मूंगफली आदि से पूरी करनी चाहिए। मांसाहारी लोग इसकी कमी को मांस से पूरी करते हैं। परन्तु मांस तामसिक तथा गरिष्ठ (दुष्पाच्य) होने से आन्तरिक सफाई में बाधक है। अतः मनुष्य को मांस का प्रयोग किसी भी स्थिति में नहीं करना चाहिए।

खाद्योज (विटामिन)—मकान बनाते समय ईंटों को जोड़ने के लिए जिस प्रकार सीमेन्ट की आवश्यकता होती है, वैसे ही प्रोटीन के कणों को शरीर में अंगों के साथ जोड़ने के लिए विटामिन की आवश्यकता हुआ करती है। **उदाहरणार्थ** आप जानते हैं, कि जो बच्चा केवल उबले हुए दूध पर ही अवलम्बित रहता है, उसके शरीर का विकास समुचित रूप से नहीं हो पाता। उसकी हड्डियों में टेढ़ापन आ जाता हैं। दूध के अतिरिक्त बच्चे को अगर फलों का रस भी देते रहें, तो बच्चा खूब फलता-फूलता है। इसका विशेष कारण यह है कि बहुत देर तक दूध को औटाने में उसके विटामिन नष्ट हो जाते हैं। और यह भी ध्यान देने के योग्य है, कि जिन पशुओं का दूध हम बच्चों को पिलाते हैं, अगर उनको हरी घास या हरा चारा आदि न मिले, तो उनके दूध में भी विटामिन की कमी रह जाती है। उन्हीं गायों का दूध अमृत समान होता है, जो हरी-हरी घास चरती हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने इन खाद्योजों या विटामिनों को इनके गुणों के अनुसार ए. बी. सी. डी. ई. आदि नामों से कई भागों में विभक्त किया हुआ है।

विटामिन 'ए'—शरीर में इसकी कमी से शरीर की बढ़ती रुक जाती है। रोगों को रोकने की क्षमता भी कम हो जाती है। सन्तानोत्पत्ति की शक्ति का ह्रास हो जाता है। रात्रि को कम दिखाई देता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस विटामिन की आवश्यकता ६७५०. इकाई तक होती है। इसकी मात्रा कुछ वस्तुओं के १०० ग्राम या १.७ छटांक में इस प्रकार है—

दूध	१४०-७००	इकाई तक
मक्खन	८५०-७५००	"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पनीर	५५००	,,
मटर लोबिया	३६७-७००	,,
आलू	२५	,,
साग	२५००-४०००	,,
टमाटर	३००	,,
गाजर	१६००	,,
करमकल्ला	६००	,,
नारंगी रस	३००	,,
सेव	४०	,,
केला	०	,,

किसी पदार्थ में विटामिन का ज्ञान कैसे होता है ? इसको समझाने के लिए यह एक प्रयोग है—

दूध चार पदार्थों का यौगिक है, जिनके नाम हैं—

केसीनोजन, स्टार्च, शकर और लवण।

इनको रासायनिक क्रिया द्वारा अलग-अलग करके कुछ चूहों को यह सब-के-सब पदार्थ भोजनार्थ खिलाये गए, और कुछ चूहों को केवल दूध ही पिलाया गया। कुछ दिनों के बाद देखा गया कि दूध पीने वाले चूहों का विकास ठीक हुआ, परन्तु जिनको दूध के अलग-अलग हुए भाग ही खिलाए गये, उनकी बढ़ती बन्द हो गई। इससे पता चला कि दूध में उपर्युक्त भागों के अतिरिक्त कोई अन्य जुज़ भी है, जिसके अभाव से शरीर का विकास रुक जाता है। इसी अज्ञात जुज़ का नाम विटामिन 'ए' है।

विटामिन 'बी'— यह विटामिन शरीर की मांसपेशियों और नसों को शक्ति देता है। पक्षाघात या परेलाइसिस की औषधि है। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में इस विटामिन की मात्रा ७५० इकाई तक होनी चाहिए। निम्न पदार्थों में यह इस प्रकार है—

१॥	छटांक	दूध में	२३	इकाई
,,	,,	बिन छने गेहूं के आटे की रोटी में	७५-१३०	,,
,,	,,	गाजर	६०	,,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

,,	,,	केला	३०-६०	,,
,,	,,	टमाटर	४०	,,
,,	,,	करमकल्ला (बन्दगोभी)	२५-५०	,,

अनाजों में विटामिन 'बी' के उत्पन्न करने की विधि—जौ-चना या किसी अन्य अनाज के दाने को थोड़े पानी में भिगो दें। जब उनमें अंकुर फूट आए तो पानी निकालकर गर्म करें, ताकि उनका उगना बन्द हो जाय। तब इन अनाज के दानों को भूनकर आटा बना लें। इस आटे की रोटी में पर्याप्त मात्रा में विटामिन बी होने के कारण यह बड़ी लाभदायक होती है। इस विधि से बनाए जौ के आटे को "माल्ट" कहते हैं। इसमें हर प्रकार के विटामिन 'बी' के अतिरिक्त विटामिन 'ई' भी होता है। गाय के दूध के साथ इसके प्रयोग को वेद में **'यवाशिर'** के नाम से सूचित किया गया है। यह अत्यधिक लाभकारी है।

विटामिन 'सी'—शरीर में विटामिन 'सी' की कमी से त्वचा के रोग अथवा प्रतिश्याय (जुकाम) आदि हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिदिन २०-३० मिलीग्राम (१/५ रत्ती) तक इसकी आवश्यकता होती है। निम्न पदार्थों में इसकी मात्रा इस प्रकार है--

१॥	छटांक	दूध में	६	मिलीग्राम
,,	,,	टमाटर	७५०	,,
,,	,,	केला	३००	,,
,,	,,	बन्दगोभी	२२०-२०००	,,
,,	,,	आलू	४००-७२०	,,
,,	,,	लोबिया	४४८-६८०	,,

सूखे आवलों में विटामिन 'सी' की मात्रा अधिक होती है। नीम्बू, सलाद और खट्टे फलों के रस में भी यह काफी मात्रा में पाई जाती है। परन्तु इनमें बहुत-से ऐसे फल हैं, जिनके अधिक प्रयोग से शरीर रुग्ण हो जाता है। अतः इन फलों के प्रयोग से पूर्व यह जान लेना चाहिए, कि यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शरीर की अवस्था के अनुकूल हैं या नहीं ! साग-सब्जियों में जो विटामिन 'सी' होती है, वह पकाते समय नष्ट हो जाती है। इसलिए पके भोजन में यह विटामिन नहीं पाया जाता। दूध का विटामिन 'ए' भी उबालने के पश्चात नष्ट हो जाता है। परन्तु अगर दूध को किसी बोतल में बन्द कर, ८० डिगरी (सैं०) के ताप वाले गर्म पानी में आध घण्टे तक रखें, तो उसमें से विटामिन नष्ट नहीं होते और ऐसा दूध निष्कीटित होने के कारण रोग रहित भी हो जाता है।

दूध को गर्म करते समय वायु के सम्पर्क में नहीं आने देना चाहिए, अन्यथा उसमें विटामिन शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इसलिए भी उपर्युक्त प्रक्रिया अति उत्तम है।

विटामिन 'डी'––इस विटामिन के अभाव से शरीर की हड्डियों और दांतों में खराबी पैदा हो जाती है। दांतों पर हर समय मैल-सी जमी रहती है। हड्डियें नर्म होकर टेढ़ी भी हो जाती है। इस रोग का नाम रिकेट है।

साधारणत: यह विटामिन उन पदार्थों में पाया जाता है जिनमें विटामिन 'ए' हुआ करता है। बहुधा यह दोनों हरे चारे में पाए जाते हैं। वहां से दूध और मक्खन में पहुंचते हैं। वायु के सम्पर्क में आने से धीमे-धीमे, परन्तु ताप के प्रभाव से विटामिन 'ए' शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। लेकिन 'डी' ठीक अवस्था में रहता है। तेलों में विटामिन 'डी' न्यून मात्रा में पाये जाते हैं। शरीर पर तेल लगाकर थोड़ी देर धूप खाने से शरीर में ऐसे विटामिन उत्पन्न हो सकते हैं।

विटामिन 'ई'—यह विटामिन जैसा कि पहले लिख आये हैं। अंकुर फूटे अनाजों में और विशेष कर जौ में अधिक मात्रा में पाया जाता है। बीजों में से निकले तेलों में भी हुआ करता है। इसकी कमी से अकसर व्यक्ति सन्तानोत्पादन के अयोग्य हो जाते हैं। भ्रूण का पालन भी सम्भव नहीं होता।

आपकी जानकारी के लिए निम्न तालिका में यह दिखाया गया है कि हमारे नित्य प्रति भोजन के अनाजों में किस-किस भाग का कितना-कितना अंश प्रतिशत पाया जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

	गेहूं	जौ	चावल	मटर	आलू
जल	१३.९	१३.८	१३.१	१४.८	७५.५
प्रोटीन	१२.४	११.१	७.९	२३.७	२.०
वसा चिकनाई	१.४	२.२	०.९	१.६	०.२
स्टार्च	६८.०	६४.९	७६.५	४९.३	२०.६
श्वेतसार	२.६	५.३	०.६	७.५	०.७
छिलका	१.७	२.७	१.०	३.१	१.१
लवण	१००.००	१००.०	१००.०	१००.०	१००.०

शरीर का ताप :—शरीर के लिए ऊष्मा अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु यह भी हमें भोजन से ही मिलती है। अनाज और साग सब्जियों में जो स्टार्च, विटामिन आदि पाए जाते हैं, वह वायु-मण्डल और पृथ्वी से एकत्रित अणुओं, धातुओं, लवण आदि के संयोग से बनते हैं। परन्तु इस रासायनिक क्रिया के लिए आवश्यक शक्ति सूर्य की किरणों से ही प्राप्त होती है। भोजन जब पचने लगता है, तब यही सूर्य से आई शक्ति ऊष्मा में परिवर्तन होकर शरीर के ताप को प्रकट करती हैं। शरीर का ताप एक प्रकार के ताप-मापक यन्त्र से जिसे थर्मामीटर कहते हैं, जाना जाता है। स्वस्थ मनुष्य का ताप ९८.४ डि० होता है जो सेंटीग्रेड के अनुसार ३७ डिग्री माना जाता है।

उष्णता :—ऊष्मा की ईकाई को 'कैलोरी' कहते हैं। एक कैलोरी की वह मात्रा है जो एक ग्राम जल के ताप को एक सेंटीग्रेड डिग्री बढ़ा देती है।

एक व्यक्ति के लिए प्रायः ३३८६. 'कैलोरीज' की आवश्यकता होती है। यह मात्रा भोजन से ही उपलब्ध हो सकती है। अनुमान लगाया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गया है कि इतनी ऊष्मा के लिए मनुष्य का दैनिक भोजन निम्न स्तर का होना चाहिए।

वसा (घी)	७०	ग्राम	लगभग एक छटांक
प्रोटीन	१००	"	पोने दो छटांक
कार्बोहाइड्रट (आटा आदि)	५००	"	लगभग नौ छटांक

मनुष्य का शरीर एक ही ताप पर रहने वाला यन्त्र है। जब भोजन आदि से इसमें ऊष्मा बढ़ जाती है, तो इसका ताप भी बढ़ जाता है, किन्तु पसीना आने से यह फिर अपनी स्थिति में पहुंच जाता है। इसलिए पसीना जहां हमारे अन्दर के दूषित मल को बाहर फेंकता है, वहां शरीर के तापक्रम को भी ठीक रखता है।

उपर्युक्त प्रकरण से अब आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि शरीर की सफ़ाई अथवा शौच के लिए व्यायाम-स्नान और सन्तुलित आहार का होना कितना आवश्यक है।

सन्तोष—साधारण लोग सन्तोष के अर्थ को "लोभ रहित" होना समझते हैं। जो कुछ रूखी-सूखी मिल जाय उसी में अपनी गुजर बसर करके प्रसन्न रहने वाला सन्तोषी जन माना जाता है।

रुखी सूखी खाय के ठण्डा पानी पी,
न देख पराइयां चोपड़ियां न तरसावीं जी।

बिना चुपड़ी रोटी पर ही जीवन व्यतीत करना, या सन्तुलित भोजन के लिए उत्सुक न होना, एक ऐसा भाव है जो मनुष्य को निकम्मा बना देता है, जिससे कि वह आलसी अथवा प्रमादी बन जाता है। इसलिए सन्तोष का ऐसा भाव नहीं हो सकता क्योंकि जीवन के जितने नियम हैं, वह मनुष्य को प्रगति की ओर ले जाते हैं। ऋषि दयानन्द ने इसके भाव को ऐसे स्पष्ट किया है—सन्तोषी "धर्म से पुरुषार्थ करने से लाभ में न प्रसन्नता और हानि में न अप्रसन्नता करे। अपितु प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ करे।" वास्तव में यही इसका ठीक अर्थ है। सन्तोष पुरुषार्थ के छोड़ने का नाम नहीं अपितु पर्याप्त पुरुषार्थ ही सन्तोष है।

जो लोग पुरुषार्थ हीन होते हैं, उनके लिए सात्विक भोजन जो आयु को बढ़ाने वाला, शरीर को स्वस्थ और नीरोग रखने वाला तथा बल और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बुद्धि वर्धक है, की प्राप्ति न होने से जीवन का पतन होता है। इससे जातियां अधीन होकर नष्ट हो जाती हैं। देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा जाता है। हां, ऐसा हो सकता है, कि जो काम हमने अपने सामने रखा हो, उसको पूर्ण करने की हममें योग्यता न हो, इस कारण हमें दुख और निराशा का जीवन बिताना पड़े। ऐसे काम में लगे रहना ही असन्तोष है। अपने कार्यों को अपनी योग्यता के अनुसार छांटना और करना ही सन्तोष कहलाता है। गीता में लिखा भी है।

युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

अर्थात् अपने नियत कर्मों में अपनी चेष्टायें यथायोग्य हों अतः बल और पराक्रम युक्त होकर ही अपने कार्य में लगना चाहिए। और जब तक आप में किसी विशेष कार्य को करने की सामर्थ्य न हो जाए, उस कार्य को न करें।

अगर कोई व्यक्ति यह समझकर कि मेरे पास अपनी आजीविका के लिये काफी धन है, या दूसरे व्यक्तियों द्वारा मेरे भोजन आदि का प्रबन्ध हो सकता है, इसलिए मुझे काम करने की क्या आवश्यकता हैं, और फिर ऐसा सोच कर निकम्मा होकर बैठ जाए, जैसा कि आजकल साधु संन्यासी लोगों ने क्रम बना रखा है, तो ऐसे सन्तोषी लोग देश और जाति के लिए हानिकारक होते हैं। सत्कर्म और लाभदायक कार्य जो धर्मानुकूल हों, मनुष्य को कभी नहीं त्यागने चाहिए। सन्तोष इसी में है कि अपने धन व कर्म को व्यर्थ में न लगायें, जिससे पतन की ओर जाया जाए। मनुष्य का कर्तव्यपरायण होकर सदा प्रगति के पथ पर अग्रसर होना ही वास्तविक सन्तोष है। गीता में ऐसा कहा गया है :—

शनैः शनैरूपरमेर्बुद्ध्या धृतिगृहीतया

अर्थात् धीरे-धीरे अभ्यास में स्थिर बुद्धि अथवा धैर्य से युक्त हुआ मानव, जीवन के प्रगति-पथ पर बढ़ता जाय। अधैर्य असन्तोषियों का कर्म है। हमें सन्तोष से शनैः शनैः ऊपर उठना है।

हां! सन्तोष होना चाहिए भोगों के भोगने में। आप जानते हैं कि खाने-पीने, तथा देखने-सुनने आदि में, एक प्रकार का आनन्द अनुभव होता है, परन्तु ऐसे आनन्द की कोई निश्चित सीमा हुआ करती है। जब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कोई व्यक्ति इन भोगों के क्षणिक आनन्द को सत्य मानकर सीमा का उल्लंघन करता है, तो उसका फल दुःख होता है। प्रायः देखा गया है कि जब मनुष्य अपनी जिह्वा के स्वाद के कारण अधिक भोजन कर लेता है, तो अजीर्ण आदि रोगों से व्यथित हो जाता है। यह नितान्त सत्य है कि अगर विषयों का मर्यादा से बाहर भोग किया जाय, तो यह अवसाद का कारण बनते हैं। यह याद रखें कि विष तो मनुष्य को मार देता है परन्तु विषय तो सजीव शरीर को जला देते हैं।

शरीर को आराम की भी आवश्यकता होती है। हर एक व्यक्ति को कम से कम छः घण्टे अवश्य आराम मिलना चाहिए। प्रातः ब्राह्म मुहुर्त्त में उठकर नित्यकर्म से निवृत्त होकर कर्तव्यरत हो जाना चाहिए। जो व्यक्ति आलस्यवश शय्यागत रहते हैं, तन्द्रावस्था में उनके मन में अनेक विकार उत्पन्न होते रहते हैं, जिसके कारण अनेक प्रकार की व्याधियां उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए ब्रह्मचारी के लिए देर तक शय्या पर रहना वर्जित है।

तप—ऋषि दयानन्द ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—तपस्वी "दुःख सुखों का सहन करके धर्म का ही अनुष्ठान करे अधर्म का नहीं।" जो व्यक्ति दुःख-सुख को सहन करके धर्मपरायण रहता है, दृढ़ता से अपने कर्तव्य में लगा रहता है, वही तपस्वी कहलाता है।

सृष्टि की उत्पत्ति परमात्मा के तप का परिणाम कही गई है। और प्रत्येक प्रकार के आविष्कार मनुष्य के तप का परिणाम बताए जाते हैं।

ईश्वर का प्रकृति के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान, और उसके सामर्थ्य की सफलता, सृष्टि की उत्पत्ति से ही दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार मनुष्य के तप की सफलता हमारे दैनिक व्यवहार में आने वाले वैज्ञानिक यन्त्रों के आविष्कार से जानी जाती है—आकाश में हवाई जहाजों से उड़ना, समुद्र पोतो (पानी के जहाज) से पार करना, परमाणु शक्ति से प्रकृति के ऊपर नियन्त्रण की भूमिका, ग्रह, नक्षत्रों तक की उड़ान, चांद तारों की परिक्रमायें—यह सब मनुष्य की सामरिकता का ही परिणाम है। तप से मनुष्य क्या से क्या बन सकता है। दानव से मानव, मानव से देवत्व देवत्व से इन्द्र पद की प्राप्ति। आखिर मनुष्य और ईश्वर में अन्तर ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्या है ? यही कि ईश्वर ग्रसीम है। परन्तु मानव सीमाओं से परे नहीं जा पाता। एक सर्वज्ञ है, तो दूसरा अल्पज्ञ। यह तो एक खुला भेद है, कि मनुष्य अपने प्रयत्न और ज्ञान रूपी तप में बहुत कुछ कर सकता है। तप के द्वारा मनुष्य उस सीमा पर अतिक्रमण कर सकता है। जो देखने-सुनने में असम्भव-सा प्रतीत होता हो।

क्या आप जानते हैं कि तपस्वी कौन होते हैं ? एक तो वह जो प्रकृति से रात-दिन लड़कर उसके रहस्य को जानकर संसार का पथ-प्रदर्शन करते हैं, और उसे सुख का रास्ता दिखाते हैं। दूसरे जो मृत्यु के पश्चात् मुक्ति या स्वर्ग की राह बताते हैं। वास्तव में यह दोनों प्रकार के ही तपस्वी हो सकते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि राम और अर्जुन ने बड़े तप के बाद शास्त्रों को ही नहीं अपितु शस्त्र-विद्या को भी सीखा था ताकि संसार से दुष्टों का विनाश किया जाय जिससे जन-साधारण शांति का जीवन व्यतीत करें। वास्तव में जो अपने सुख का ध्यान न कर जनता-जनार्दन की सेवा निष्काम भाव से करता है, उसकी सुख-शांति के लिए अपने जीवन को लगा देता है, वही तपस्वी होता है।

महापुरुषों के जीवन-चरित्र से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने हर प्रकार के अपमान, निन्दा और विरोध के होते हुए भी जनता के कल्याण के लिए अपने जीवन का प्रत्येक क्षण समर्पित किया। इसके विपरीत केवल अपना ही कल्याण करने वाले, मोक्ष की प्राप्ति की अभिलाषा में जनता के प्रति उदास रहने वाले लोगों की भी इतिहास में कमी नहीं। ऐसे धर्मियों की भी कमी नहीं जो शरीर को कष्ट देने में ही आत्मा की शुद्धि और मुक्ति मार्ग को खोजते रहते हैं।

ऐसे निरर्थक तप से कुछ व्यक्ति भोली जनता को लूटने के लिए ऐसे पाखण्ड रचते हैं कि लोग उनके शारीरिक कष्टों को देखकर वास्तविक तपस्वी समझ लेवें और फिर अपनी अर्चना से उन्हें प्रसन्न करें। धूर्त लोग जो इसे अपनी आजीविका का साधन बनाकर अपने स्वार्थ में रत रहते हैं, शास्त्र में निन्द्य माने गए हैं।

उपर्युक्त कथन के समर्थन में गीता में जो तीन प्रकार के तप का उल्लेख मिलता है, उनमें से एक शरीर का तप है, दूसरा वाणी का, तीसरा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मन का।

शारीरिक तप :—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।

देव, द्विज, गुरु, प्राज्ञ की सेवा, शुद्धता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा का धारण करना शारीरिक तप कहे गए हैं।

देव, माता, पिता आचार्य होते हैं। इन तीनों के यत्न से हर व्यक्ति मनुष्य होने का साहस करता है। इनके परिश्रम से ही मनुष्य देवता बनने के योग्य हुआ करते हैं। लोग कहते हैं कि बालक पिता से आदेश, माता से संदेश, और आचार्य से ज्ञान पाकर ही जीवन के मार्ग को देखता है।

"द्विज" वह है जो ज्ञान से युक्त होकर देश हित के लिए अपने ज्ञान का विस्तार करता ही रहता है। जनता को विनाशकारी घृणास्पद परिस्थितियों से निकालकर मानवता के मार्ग पर ले जाता है। ऐसे द्विजों का सम्मान करना आवश्यक है।

जो आयु, विद्या, ज्ञान से बड़े हों ऐसे गुरु और जो अपनी बुद्धिमत्ता के लिए विख्यात हों ऐसे प्राज्ञ का भी आदर व सत्कार करना कर्तव्य होने से तप के अन्तर्गत ही आ जाता है। तात्पर्य यह है, कि उन सबका सम्मान करना जिनमें दैवी गुण विद्यमान हों, शरीर को शुद्ध रखना, व्यवहार में सरल होना, ब्रह्मचर्य अर्थात् इन्द्रियों के विषयों का संयम रखना और किसी निर्दोष प्राणी को बिना कारण पीड़ा न देना, अथवा हानि न पहुंचाना, शरीर के "तप" हैं।

गीता में वाणी के तप का वर्णन इस प्रकार है :—

अनुद्वेगकरम् वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

वाणी ऐसी होनी चाहिए जिससे किसी के मन में किसी प्रकार का उद्वेग न उठे। अर्थात् वचन कटु, कठोर कष्टकर नहीं होने चाहिएं। अपना समय अध्ययन में लगाना, सत्य शास्त्रों का मनन करना वाणी का तप कहा गया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक किंवदंती है, कि बच्चे की टांगें, जवान की छाती और बूढ़े की वाणी कभी निठल्ली (शांत) नहीं रहती। बुढ़ापे में अगर वाणी का संयम न हो, तो बड़े दुःख का कारण बनता है। मनुष्य जैसे-जैसे बूढ़ा होता जाता है, उसके जीवनगत-संस्कार उसके अंतःकरण में जमते जाते हैं, जो वृद्ध अवस्था में मनुष्य को उद्वेलित करते रहते हैं। परन्तु उसके अद्भुत विचार नए वातावरण के बीच ठीक न बैठने के कारण घर वालों या अन्य लोगों को अच्छे नहीं लगते, जिससे कि बूढ़े आदमी को बड़बड़ाने वाला या बूढ़ा-पोंगा कहा जाता है। परन्तु जो सत्साहित्य का अध्ययन करते रहते हैं, और अपनी बात वहीं कहते हैं, जहां उसकी आवश्यकता होती है, तो वह बुढ़ापे में भी आदरणीय होते हैं। वास्तव में यही वाणी का तप है। एक नीतिशास्त्र का वाक्य है—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणाम् निद्रया कलहेन वा ।।

बुद्धिमान् व्यक्ति अपना समय शास्त्रचर्चा और अध्ययन में व्यतीत करते हैं, जबकि मूर्ख मनुष्य अपना समय निद्रा, आलस्य और लड़ाई-झगड़े में बिताते हैं। परन्तु यह बात ध्यान देने के योग्य है, कि जो लोग अपने अध्ययन का विषय प्रेम तथा शृंगार जनित साहित्य चुनते हैं, उनका मन ठीक नहीं रहता। इसलिए ऐसी पुस्तकों के अध्ययन को स्वाध्याय नहीं कहते।

स्वाध्याय अपनी त्रुटियों और कमजोरियों का अवलोकन भी है। मनुष्य सदा इस बात का ध्यान रखे कि वह किधर जा रहा है। जैसे जब कोई राजा जो अपने देश की देखभाल नहीं करता, और पड़ोसी राजा के आक्रमण का मुकाबला करने के लिए तैयार नहीं रहता तो वह अपनी स्वतन्त्रता को खो बैठता है। ऐसे ही जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों के विषयों के आक्रमण के लिए तैयार नहीं रहता और उनका दृढ़तापूर्वक मुकाबला नहीं करता वह मूर्ख अपने मन की शान्ति को खोकर दुःख को प्राप्त होता है। याद रखें **"स्वाध्याय वाणी का बड़ा तप है।"**

मन का तप :—मन का तप अति कठिन है। मन बड़ा चंचल होने के कारण कठिनता से वश में आने वाला है। इसकी दौड़ दिन-रात हर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समय लगी रहती है, इसलिए इसको वश में करना वायु को हाथों में पकड़ने के समान कठिन माना गया है।

वेद का कथन है :—

> यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदु सुप्तस्य तथैवैति।
> दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

यह मन जैसा जागृत अवस्था में वैसा ही सुप्तावस्था में भी चला जाता हुआ ज्ञात होता है। यह मन जो इन्द्रियों का प्रकाश स्तम्भ है शिव संकल्प अर्थात् सब प्राणियों के कल्याण की इच्छा करने वाला हो।

मन की मौज प्रसिद्ध है। इसकी भाग-दौड़ हर समय हर तरफ लगी रहती है। इसको वश में करना अत्यन्त कठिन है। परन्तु इसकी उड़ान को एक दिशा में लगाया जा सकता है। हां इसके लिए उत्तम कल्याण-कारी इच्छाओं का होना आवश्यक है।

परन्तु यह कार्य भी वही व्यक्ति कर सकता है जो स्वार्थ रहित, ईर्ष्या द्वेष मे मुक्त हो तथा प्राणी मात्र के हितचिंतन में लगा हुआ हो। गीता के अनुसार भी मन को प्रसन्न, शीतल अथवा शक्तिमय बनाए रखना शुद्ध संकल्पों अथवा शुद्ध भावों से युक्त करना ही "मन का तप" कहलाता है। तात्पर्य यह कि एक तपस्वी, अपने जीवन के सुख-दुःखों को समान भाव से ग्रहण करता हुआ सदा प्रसन्न रहता है। हमेशा उदास रहने वाले व्यक्ति की प्रतिदिन के कामों में लगी प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है, जिससे वह कर्तव्यपरायणता से विमुख हो जाता है। और अपना समय और जीवन व्यर्थ में गंवा देता है। हमें चाहिए कि जीवन की सफलताओं और असफलताओं पर दृष्टिपात करें और सत्यासत्य का निर्णय करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने जीवन को दूसरों के कल्याण में लगाते जाए। कभी भी अपने स्वार्थ के लिए मन को दूषित न करें। मन को छल, कपट, दम्भ और कुटिलता आदि दुष्ट भावों से दूर रखने के लिए हर व्यक्ति सदा प्रयत्न रूपी तप करता रहे। बस यही मन का तप है।

स्वाध्याय—इसके सम्बन्ध में पहले वाणी के प्रकरण में कुछ लिखा जा चुका है। अब केवल यह बताना है कि यह एक आवश्यक दैनिक कर्म है जिसका अनुकरण करना इतना ही आवश्यक है जितना भोजन आदि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का। जैसे भोजन के बिना शारीरिक शक्तियों का क्षय होना आरम्भ हो जाता है, ऐसे ही स्वाध्याय के बिना बुद्धि कुंठित हो जाती है, विचार-धारा भी बन्द हो जाती है। धर्मयुक्त जीवन के मार्ग पर चलते हुए भी कई बार ऐसी कठिनाइयां आ जाती हैं कि मनुष्य आसानी से अपने पथ को नहीं समझ पाता। परन्तु स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान सदा ही उसका पथ-प्रदर्शक हो सकता है।

स्वाध्याय के लिए विज्ञान, धर्म शास्त्र महापुरुषों की जीवनियां आदि विषय चुनने चाहिएं, जिनके अध्ययन से मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है। आधुनिक साहित्य में कामोद्दीपक तथा अश्लील साहित्य को छोड़कर बाकी साहित्य का अध्ययन भी उत्तम है। अश्लील साहित्य आज के युवकों को पतन की ओर ले जा रहा है। इसलिए उपर्युक्त बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक ही धर्म पुस्तक को बार-बार पढ़ना लाभप्रद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इससे मनुष्य की बुद्धि का विकास रुक जाता है। जिस प्रकार अगर किसी पौधे को प्रतिदिन सूर्य प्रकाश न मिले तो वह अविकसित ही रह जाता है, इसी प्रकार प्रतिदिन के स्वाध्याय के बिना मनुष्य के मन का विकास भी रुक जाता है।

ईश्वर-प्राणिधान—अपने समस्त कर्मों के फल को प्रभु समर्पित करना प्रणिधान कहलाता है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष प्रतिदिन अपने सम्मुख एक सुन्दर मनोहारी दृश्य का अभिलाषी होता है। अपने ऊपर पूर्ण विश्वास करता हुआ अपने प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त करने का इच्छुक होता है। परन्तु हमेशा उसकी अभिलाषा पूर्ण नहीं होती। इससे दुःख व्याप्त हो जाता है, जो आकार में परिवर्तित होकर उसके चेहरे की कान्ति को मलिन कर देता है। ग्रसित चन्द्रमा के समान उसके मुखकमल पर उदासी की छाया दिखाई देने लगती है। प्रकृति का सारा सौन्दर्य जैसे कलकल झरने, खिलते फूल, टिमटिमाते तारे उसके हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न नहीं कर पाते। अपितु वह सारे संसार से विद्रोह कर उठता है। उसकी आत्मा सारे संसार में, व्यापक परमपिता परमात्मा के प्रति अनासक्त हो उठती है। उसका ज्ञान अज्ञानता के घने अंधकार में डूब जाता है। यह सत्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है कि कई ऐसे पुरुष हैं जो बिना किसी स्वार्थ-साधन के कर्तव्य का पालन कर सकते हैं, और बड़ी से बड़ी विरोधी परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर भी दृढ़ता से अपने निश्चित मार्ग पर स्थिर रहकर संसार में सुख और शांति की स्थापना करने में सफलता प्राप्त करते हैं। परन्तु संसार में प्रायः ऐसे लोगों की ही अधिकता है जो पेट, पूजा, प्रशंसा अथवा किसी मनोवांछित कामना की पूर्ति के लिए ही किसी सच्ची जीवन पद्धति पर स्थिर रह सकते हैं अथवा समाज जाति या राज्यभय से सदाचार का पालन कर सकते हैं। बड़े-बड़े ज्ञानी जो किसी समाज या जाति की सेवा में लगे हुए दिखाई देते हैं उचित प्रतिष्ठा, सम्मान या पद न पा सकने के कारण अपने कर्तव्य से च्युत हो जाते हैं। देखो चोर उसी समय चोरी करता है, जब वह अपने को दूसरों से ओझल हुआ-हुआ देखता है। उसके अन्दर यही भावना काम कर रही होती है, कि उसके इस निंदनीय कर्म का न कोई देखने वाला है, न कोई साक्षी है। जब यह बात स्पष्ट हो जाय कि अच्छे कर्मों का फल अच्छा होता है, बुरे कर्मों का बुरा, तो हर व्यक्ति अपने जीवन को अच्छे और यशस्वी पथ पर ही लगायेगा।

ऊपर की बात से स्पष्ट है कि अगर किसी व्यक्ति को यह पूर्ण विश्वास हो जाय कि मेरे हृदय के अन्दर मेरे कर्मों के सत्यासत्य का साक्षी और उसका समुचित फल देने वाला प्रत्यक्ष विराजमान है, अर्थात् अगर "**कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः**" का पूरा ज्ञान प्राणी को हो जाय, तो वह अपने धर्म पथ से कभी स्खलित नहीं हो सकता। और न ही विपरीत परिस्थितियों से घबराकर अपने कर्तव्य-पथ से दूर जा सकता है। इसके अतिरिक्त वह अपने अंतर में दिव्य-ज्योति का प्रकाश देखेगा, जो उसे सत्यपथ पर ले जाने में सहायक होगा। इसी **अन्तर्ज्योति** का ज्ञान-पूर्वक श्रद्धा से अनुकरण करना ईश्वर-प्रणिधान कहलाता है।

उस मनुष्य का जीवन, जिसने एक नदी को पार करना है परन्तु "**कर भरोषा सांईदा रहा किनारे बैठ**" ईश्वर-परायण नहीं हो सकता और न ही यह **ईश्वर-प्राणिधान** है। मनुष्य के हृदय में तो एक महत् शक्ति की ज्योति का प्रकाश विद्यमान है, जिसे "**बुद्धि**" कहते हैं, जो यह बतलाती है कि हे मनुष्य! तुझमें तैरने की शक्ति है, इसका उपार्जन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कर और अगर नदी अधिक चौड़ी है तो नाव का बनाना सीख, जिससे तू अवश्य ही नदी को पार कर सकेगा। केनोपनिषद् में कहा गया है—

आत्मना विन्दते वीर्यं, विद्यया विन्दतेऽमृतम् ।

अन्तर्यामी परमात्मा से ज्ञान आदि शक्तियां प्राप्त होती हैं फिर ज्ञान से ही पवित्र इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है।

इस अन्तर्ज्योति बुद्धि का ठीक-ठीक विकास करना फिर उसके प्रकाश से अपने नियमित कर्म में जुट जाना ही ईश्वर-प्रणिधान है। हमें सब वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान न होने से असफलता प्राप्त हो सकती है। परन्तु जैसे ज्ञान बढ़ता है, सफलता निकट आती जाती है।

यह जीवन एक नदी समान है जो काल की सरिता में बहता जाता है। कहां इसका स्रोत है और कहां इसका अवसान, यह जानना प्रत्येक के बस की बात नहीं, कुछ विरले तत्वज्ञानी ही इसका ज्ञान प्राप्त कर पाते हैं। वास्तव में इसके दोनों छोर अन्धकार से आवृत हैं। इस नदी में भंवर और चक्कर हैं, तूफान आते हैं, और बड़ी-बड़ी भयानक लहरें उठती हैं। प्रत्येक व्यक्ति "मैं" के रूप में इस नदी का एक बिन्दु है जो लहरों के थपेड़ों से ऊपर और नीचे होता हुआ कभी इस भंवर में और कभी उस भंवर में घूमता हुआ किसी अनजाने स्थान की ओर बढ़ता चला जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसे दुःख हैं जो अज्ञान से उत्पन्न होते हैं, जिनसे मुक्ति पाने के लिए उपरिवर्णित यम और नियम ही हो सकते हैं आइए इनको समझने के लिए ही इनको अपने जीवन में घटाएं।

●

१. आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयो यस्य बहून् रोगान् मरणं वा प्रयच्छति॥
भोजन का अंतिम परिणाम शुक्र है, उसकी रक्षा करो। इसकी क्षति से केवल स्वास्थ्य-हानि ही नहीं मृत्यु भी हो जाती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'मैं कौन हूं' के अन्वेषक—४

"मैं कौन हूं" की गवेषणा आदि काल से ही चली आ रही है। कोई देश ऐसा नहीं, जिसमें समय-समय पर विद्वानों ने इसकी खोज न की हो। हां! यह ठीक है कि यूरोप के देशों ने केवल इसके भौतिक रूप को ही देखा। परन्तु भारत के दार्शनिकों को इस भौतिक शरीर के अतिरिक्त किसी सूक्ष्म सत्य की भी प्रतीति हुई। इस सत्य की खोज ही हमारे देश की विशेषता है। वैसे तो भारत का सारा धार्मिक साहित्य इस सत्य की अन्वेषणा का परिणाम है, परन्तु आपको यह स्पष्ट करने के लिए कि यह विषय कितना दुर्गम और वैयक्तिक है, सत् साहित्य और इतिहास में इसके कुछ प्रमाण जो उपलब्ध हैं, नीचे दिए जा रहे हैं :—

सबसे प्रथम हम आप का ध्यान उस घटना की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं, जो बहुत प्राचीन नहीं, केवल एक शताब्दी पूर्व की बात है। अगर काल को हम पीछे हटा सकें तो हम देखेंगे कि सन् १८६० में मथुरा नगरी के बाहर एक कुटिया के सामने एक सुन्दर बलिष्ठ शरीर वाला युवक खड़ा है। जिसको आयु पैंतीस वर्ष के लगभग है। परन्तु संन्यासियों का बाना पहिन रखा है, और वह उस कुटिया के द्वार को खटखटा रहा है।

किवाड़ को दो-तीन बार खटखटाने पर कोठरी के अन्दर से आवाज आई, "कौन है ?" यह आवाज प्रज्ञा-चक्षु श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती की है। बाल्यावस्था में ही जब यह कोई छः वर्ष के थे, तो चेचक के कारण इनके दोनों चक्षु जाते रहे थे। परन्तु ऐसी हालत में भी इन्होंने हरिद्वार, कनखल और बनारस जैसे स्थानों पर जाकर धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिससे वह वैदिक साहित्य विशेषकर व्याकरण के प्रख्यात पण्डित हो गए। अठारह साल की आयु में संन्यास का लेना इतिहास में एक अपूर्व उदाहरण है। उन्होंने पिछले ३० वर्ष से इसी मकान में एक वैदिक विद्यालय खोल रखा है। यद्यपि आपकी आयु इस समय ८० वर्ष की है। फिर भी आप अपने जीवन का ध्येय समूचे तौर पर 'शास्त्राचरण' और शास्त्रोच्चारण ही बनाया हुआ है। अर्थात् आपका जीवन ही शास्त्र धर्म है, और आपका काम वेदानुकूल शास्त्रों का प्रचार है। इसके अतिरिक्त आप एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी भी हैं, जिसके कारण आपकी प्रख्याति दूर-दूर फैली हुई है। आपकी ऐसी प्रसिद्धि को सुनकर ही किसी अलभ्य वस्तु की खोज में इस ३५ वर्ष के युवक संन्यासी ने इस कोठरी के द्वार को खटखटाया है। परन्तु सोच रहा है कि मैंने तो उत्तर देना है प्रश्न का, कि 'मैं कौन हूं ?', क्या कहूं और क्या बताऊं ? मैं दयानन्द हूं, संन्यासी हूं, या यों बोलूं, कि मैं दयाराम था, माता पिता मुझे प्यार से, मूल अथवा मूलशंकर के नाम से पुकारते थे, और मैंने चौदह वर्ष की आयु तक यजुर्वेद को कण्ठस्थ कर लिया था। शब्द-रूपावली को भी अच्छी तरह समझ लिया था। फिर छः वर्ष अपने ग्राम के प्रसिद्ध पण्डितों से निरुक्त, मीमांसा और दूसरे कई धर्म-शास्त्रों का अध्ययन भी किया था। शुद्धचैतन्य नाम रखकर ब्रह्मचारी के वेश में साधारण ज्ञान का भी उपार्जन कर रखा है और अब पिछले ग्यारह वर्ष से मैंने संन्यासी के रूप में प्रसिद्ध संन्यासियों और योगियों के सम्पर्क में आकर जो कुछ इनसे प्राप्त हो सकता था, कर लिया है।

पर मैंने अभी तो उत्तर देना है कि 'मैं कौन हूं ?' यह सारी कथा तो पीछे चलेगी। यदि मैं अपना नाम बताता हूं, तो वह क्या समझेंगे ? मेरा तो उनसे परिचय नहीं, और फिर 'मैं कौन हूं ?' इसको भी मैं क्या जानता हूं ? सहस्रों विद्वानों से मिला, उनसे बहुत कुछ सीखा, परन्तु इस प्रश्न का उत्तर तो नहीं मिला। इसलिए मैं इसका उत्तर भी क्या दे सकता हूं ? केवल यही कि मैं नहीं जानता कि 'मैं कौन हूं ?' मैं जानना चाहता हूं, और इसी कारण आपके द्वार पर खड़ा किवाड़ को खटखटा रहा हूं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसपर द्वार खुल गया, युवक संन्यासी ने अन्दर प्रवेश किया। दोनों में बातचीत हुई। गुरु शिष्य के नाते का निर्णय हो गया। गुरु ने इस नये शिष्य पर तीन वर्ष में वैदिक ज्ञान का वह रंग चढ़ा दिया, जिससे कि यह संन्यासी भी दुनिया में एक अपूर्व पण्डित हो गया। पुराने गुप्त गूढ़ ज्ञान को प्रदान कर सहस्रों वर्ष पुराने भारत के चित्र को फिर से इस युवक के सामने प्रत्यक्ष कर दिया।

अन्ततः सन् १८६४ के आरम्भ में विद्या समाप्त हो गई। गुरु-गृह से विदाई का समय आ गया। शिष्य ने परम्परा के अनुसार कुछ पैसे इकट्ठे किए और सेर भर लौंग खरीद कर गुरु दक्षिणा के रूप में गुरु को भेंट किए, यह कहते हुए कि दक्षिणा-काल के समय परम्परा के अनुसार मांग कर कुछ लौंग आपको भेंट कर अपनी श्रद्धा अथवा अपनी प्रेम और भक्तियुक्त पूज्य भावना को मूर्तिमान कर रहा हूं। परन्तु उस परम प्रख्यात दृष्टिमान शिक्षक ने अपनी मांग को स्पष्ट करते हुए कहा, कि मैंने तुझको उस गुप्त गहन वेद-विद्या का प्रदान इस तुच्छ दक्षिणा के लिए नहीं किया। इस पर दयानन्द बोले, कि हे महाराज इसके अतिरिक्त मेरे पास है ही क्या ? इस पर श्री विरजानन्द अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कड़ी आवाज से बोले, कि क्या मैं तुझसे वह चीज मांग रहा हूं, जो तेरे पास नहीं ? ऐसा हरगिज नहीं। फिर उत्तर देते हुए उस नव-स्नात विद्यार्थी ने कहा, कि यदि मेरे पास कोई ऐसी वस्तु है, तो मैं उसको आपके भेंट करने को तैयार हूं, परन्तु मैं ऐसी किसी वस्तु को नहीं जानता। प्रत्युत्तर में विरजानन्द ने कहा—यह ठीक है, तूने अपने आपको नहीं जाना। केवल पुस्तक ज्ञान से इसे जाना भी नहीं जाता। इसका जानना ज्ञान के पश्चात् जीवन की संग्राम-भूमि में होता है, न कि जंगल के किसी एकान्त स्थान में। परन्तु मैं जान गया हूं, कि 'तू कौन है ? और तेरे पास क्या है ?'

देख, यह संसार एक यज्ञ है, जो मनुष्य की उत्कृष्टता के भाव से रचा गया है। इस समय भारतवासी इस ज्ञान को भूल कर केवल अपने आप को ही नहीं, अपितु अपने कर्तव्य से भी विमुख हो गए हैं। तू कौन है ? तू उस यज्ञ रूपी महाशक्ति का सहयोग है। अपने रूप को जान, जो कि उस यज्ञ रूप शक्ति से भिन्न होता हुआ भी उसका साथी है। अल्पज्ञ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

होता हुआ भी सर्वज्ञता को साक्षात् कर सकता है। तू बीज को पैदा नहीं कर सकता, परन्तु हर बीज के अंकुर को हरा भरा करने में सहायक हो सकता है, बेशक मूल-ज्ञान तेरे अन्दर न हो, किन्तु तू ज्ञान से भरपूर हो सकता है, और संसार में इसका तू भली-भांति प्रकाश कर सकता है।

बौद्ध मत के प्रवर्तक गौतम बुद्ध ने भी इसी प्रश्न के उत्तर के लिए घोर तपस्या की। अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए बड़े-बड़े कष्टों का सामना किया। बड़े-बड़े विद्वानों की संगति में रहकर उनके गुण दोषों का अवलोकन किया। वेदों के नाम पर वेद-विरुद्ध कर्मों को करने वाले लम्पटों को देखकर इन पर से इनकी श्रद्धा उठ गई। इससे बुद्ध को सनातन ज्ञान के स्रोत पर पहुंचने की इच्छा भी न रही। यही कारण है कि इनको "मैं कौन हूं" का जो उत्तर मिला वह सनातन विचारों से कुछ भिन्न था। इनके धर्मानुयायी जब इसका उत्तर जानने के इच्छुक होते थे, तो इनके पूछने पर यही उत्तर दिया जाता कि जीवन की सिद्धि के लिए इसके तत्त्व को जानने की कोई आवश्यकता नहीं।

आप कौन हैं? जो आपका स्वभाव है। यदि आप अच्छे स्वभाव और अच्छे कर्म करने वाले हैं, एवं पूर्णतया सभ्य हैं, तो आप एक उत्तम पुरुष हैं। इसके विपरीत कर्म करने वाले आप दुर्जन हैं। दुर्जन मत बनो! अपने-आपको मत गिराओ। अपितु जीवन में उत्तम स्थान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते जाओ। जीवन सिद्धि के लिए महात्मा बुद्ध का यही आदेश था और वह कहा करते थे कि उपर्युक्त लक्ष्य को सामने रखते हुए ही आप अपनी जीवन यात्रा के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे। बात तो ठीक-सी ही है, परन्तु इस उत्तर से विद्वानों को सन्तोष नहीं होता और साधारण व्यक्ति को इस मार्ग पर चलने में कोई आकर्षण और उत्साह भी दृष्टिगोचर नहीं होता। जीवन में ऊपर उठना कोई सरल काम नहीं है। एक बड़ी भारी समस्या को सुलझाना है। इसके लिए समर्थता, क्षमता और योग्यता की आवश्यकता है, परन्तु इतने प्रयत्न से साधारण मनुष्य को दुःख प्रतीत होता है और स्वभावतः प्रत्येक दुःख से बचना चाहता है। इसलिए सामान्य व्यक्ति के लिए इस सिद्धान्त में कुछ भी आकर्षण नहीं। मनुष्य दुःख के सहन करने के लिए अपने-आप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तैयार नहीं। हां! वह दुःख के साथ समझौता कर सकता है। शीघ्र ही मिलने वाले सुख के लिए दुःख उठा सकता है, यदि उसे सुख मिलने की आशा प्राप्त हो, परन्तु इसके साथ श्रद्धा और विश्वास का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में हर व्यक्ति किसी अप्राप्त सुख का अन्वेषक है। ऐसे आदि काल से होता चला आया है और अनन्त काल तक होता भी रहेगा। कारण यह कि किसी निश्चित सुख के प्राप्त हो जाने पर वह सुख नहीं रहता। वह तो आगे भागता हुआ दिखाई देता है, मनुष्य भी उसके पीछे दौड़ लगाता है। वास्तव में यही जीवन जान पड़ता है। ऐसी दौड़-धूप में लगा हुआ जो भी व्यक्ति अपने पीछे की ओर ध्यान देता है, राजों-महाराजों के इतिहास को पढ़ता है, और सोचता है कि वह अब कहां है? तो ऐसा सोचने वाला व्यक्ति अपने अन्तिम दिवस के जानने वाला हो जाता है और फिर आप पूछता है आपसे कि अंततः "मैं कौन हूं"?

कठोपनिषद् की आरम्भिक कथा है जिसमें एक वैदिक प्रजा की चर्चा की गई है और जिससे यह जान पड़ता है कि वैदिक काल में साम्यवाद की बड़ी प्रशंसा थी और इसको व्यवहार में रखने के लिए कुछ यज्ञ भी किये जाते थे। इनमें एक सर्ववेदसम यज्ञ था, जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति अधिक काल तक खाद्य पदार्थों को अपने निजी प्रयोग के लिए नहीं रख सकता था। गौओं को भी योग्य व्यक्तियों में बांट दिया जाता था। ऐसे ही एक यज्ञ का प्रतिपादन एक वाजश्रवस ऋषि ने किया था। परन्तु दक्षिणा में जिन गौओं को दिया वह सब बेकार हो चुकी थीं। उसके पुत्र नचिकेता ने जो अभी बाल्यावस्था में ही था इसको देखा और सोचा कि ऐसे दान से सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। मेरे पिता ने अच्छा नहीं किया। यह ठीक है कि बच्चे कई बार ऐसी बात कर देते हैं कि बड़े-बूढ़े आश्चर्यचकित होकर सोचते ही रह जाते हैं। कइयों का विचार है कि बच्चों में ऐसा होना किसी पिछले जन्म के संस्कारों का परिणाम है। यह सिद्धान्त कहां तक ठीक है कुछ कह नहीं सकते परन्तु यह अवश्य है कि बच्चों का हृदय शुद्ध, पवित्र तथा सरल होता है। स्वार्थ के रंग में वह अभी ऐसा रंगा नहीं होता जैसा बुढ़ापे में। इसीलिए मानसिक पाप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अथवा मानसिक कष्ट से भी दूर रहता है। ऐसी स्थिति में मन से आया हुआ विचार और मुख से निकली हुई बात में अन्तर नहीं हुआ करता इसलिए बाल्यावस्था में कही हुई बात प्रायः सत्य ही की ओर संकेत करती है। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है, प्रकृति का सुन्दर चमकदार आवरण कोमल हृदय पर पड़ता जाता है। परन्तु एक अच्छे और पवित्र वातावरण में पला हुआ बच्चा बड़े होने पर भी अपने अस्तित्व को सम्भाले रखता है। उपर्युक्त कारणों से नचिकेता का विचार कोई आश्चर्यजनक तो नहीं, हां मनोरंजक अवश्य है। पुत्र के ऐसे विचारों को सुनकर पिता को कुछ क्षति का आभास हुआ और पुत्र के फिर यह कहने पर कि अपनी सबसे प्रिय वस्तु अर्थात् अपने पुत्र (नचिकेता) को किसे दान में दोगे, क्योंकि सबसे उत्तम दान अपनी प्रिय वस्तु का ही दान है, पिता चुप हो गया। परन्तु चेहरे पर हीन मनोभाव के चिह्न प्रत्यक्ष हो गए। नचिकेता के इस प्रश्न को दो-तीन बार दोहराने पर पिता का क्रोध बहुत बढ़ गया। और क्रोधित होकर बोला, कि तुझे मौत के लिए दूंगा। परन्तु आवेश से निकले इन शब्दों पर, क्रोध के उतरते ही उसे महान् पश्चात्ताप हुआ। पुत्र पिता को इस तरह दुःख में ग्रस्त देखकर बोला, "घबराने की क्या बात है ?" प्रत्येक को अपना कर्तव्य करना आवश्यक है।" कर्तव्यविमूढ़ जो घबराहट के कारण अपने कर्तव्य का निश्चय न कर सकें, उनको नचिकेता के इन शब्दों पर ध्यान देना चाहिए—

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथा परे।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः

अर्थात् अपने पूर्वजों की जीवनी देखो। आधुनिक धर्मात्मा लोगों को ध्यान में लाओ, और जैसे वह प्रतिज्ञा का पालन करते रहे या कर रहे हैं, ऐसा आप भी करो। क्योंकि आखिर मर्त्यः अर्थात् मरणधर्मा पुरुष का जीवन ही क्या है ? खेती के समान बढ़ता है। युवावस्था से गुज़र कर वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ परिपक्व होकर समाप्त हो जाता है और पुनः हरी खेती की तरह शरीर क्षेत्र में आ समाता है। इसलिए नचिकेता ने कहा, "पिताजी शोक नहीं करना चाहिए और अपने कर्तव्य से भी नहीं चूकना चाहिए। जीवन अपने व्यक्ति रूप में अवश्य ही अपने अन्त को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पहुंच जाता है। परन्तु फिर खेती की तरह हरा-भरा हो जाता है। यह एक चक्र है जिसका न कोई आदि है और न कोई अंत।" अंततः नचिकेता यम के पास पहुंच जाता है, और पूछता है "हे मृत्यु तू क्या है ? कृपया उत्तर से कृतार्थ कीजिए, ताकि मैं जान लूं कि "मैं क्या हूं" अर्थात् क्या 'मैं' यह शरीर ही हूं, या इससे भिन्न मेरा कोई अस्तित्व है ? क्या जीवन एक प्राण वायु और रक्त के मेल का ही नाम है जिसके रुक जाने से यह शरीर भस्म होकर जलाने योग्य हो जाता है?"

यम नचिकेता के इस प्रश्न को सुनकर बहुत हैरान हुआ, और कहने लगा कि हे बालक ! तू क्या पूछ रहा है ? यह भी कोई जानने योग्य बात है। सब लोग जानते हैं कि जीवन एक सुख की दौड़ है, जिसमें सब साधारण लोग पराजय को प्राप्त हुए भी इस दौड़ को नहीं छोड़ते। इस-लिए तू मुझसे संसार के सुख की प्राप्ति के लिए पूछ, सुख, चैन, भोग विलास के लिए कुछ मांग। दुनिया ऐश, आराम व इशरत का स्थान मानी जाती है, इसलिए तू सुख की प्राप्ति के उपायों को मुझसे सीख और अपने प्रश्न के उत्तर का ध्यान छोड़, क्योंकि यह कठिन, गम्भीर, और व्यर्थ का विषय हैं। व्यर्थ इसलिए कि सामान्य जीवन पर इसका कोई प्रभाव नहीं। जीवन की सुख-सम्पत्ति को पाने का यह कोई हल नहीं। दूसरे यह भी बात है कि जिस दुनिया में हम रहते हैं उसमें व्यक्तित्व कुछ भी नहीं अगर कुछ है तो वह समाज है। प्रकृति भी व्यक्ति जीवन से विमुख है। इसके सामने अगर कोई विचार है तो समष्टि जीवन का। क्या आप देखते नहीं कि व्यक्ति तो आते रहते हैं, इनका आवागमन होता रहता है, परन्तु समष्टि तौर पर जीवन नदी के प्रवाह के समान बहता चला जा रहा है।

यह जीवन नदी कहां से आई है और कहां जा रही है इसे कोई नहीं जानता। हां जिस क्षेत्र में यह नदी बहती जा रही है उसको हम देख रहे हैं। यही कारण है कि जीवन के इस भेद को पाने के लिए कठोपनिषद् के कर्ता ने नचिकेता को यम या मृत्यु के पास भेजा, क्योंकि इसका भेद वही जान सकता है। परन्तु मृत्यु के पास भी किस को बताए, क्योंकि जब मृत्यु है तो "मैं" नहीं और जब "मैं" है तो मृत्यु नहीं। कठोपनिषद्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में नचिकेता और यम का एक विस्मयजनक मेल है । इसमें नचिकेता से "मैं' को हटाकर मौत के सम्मुख खड़ा कर दिया है । किसी ने सच कहा है 'आप' को पाते हैं वह जो 'आप' को भूल जाते हैं । इस उपनिषद् के निर्माता ने नचिकेता को ऐसे ही दिखाया है । बड़े-बड़े प्रलोभन देने पर भी उसने अपने विचार को नहीं छोड़ा । पृथ्वी का राज्य, बड़ी आयु और स्वर्ग के सब-के-सब सुख और आराम जब उसके समक्ष रखे गए और इनका मिलना भी कोई आश्चर्यजनक बात नहीं जान पड़ती थी, तो भी इस बालक के मन में जो प्रश्न उठा वह यह था कि यह सब भोग किसके लिए? अन्दर से उत्तर आया, अपने (मैं) लिए । फिर प्रत्युत्तर हुआ कि 'मैं कौन हूं' । यही तो मैं नहीं जानता और इसके जाने बिना इन भोगों को कैसे मान लूं । मैं भली-भांति जानता हूं कि यदि किसी अस्वस्थ पुरुष के सामने कई प्रकार के पकवान अथवा स्वादिष्ट मिठाइयां रखी हों और वह अपनी ऐसी स्थिति से बेखबरी के कारण इनको खा ले तो इसका परिणाम दुःख ही हो सकता है । बीमार के लिए अपनी अवस्था का ज्ञान और चिकित्सक के परामर्श का होना अत्यन्त आवश्यक है ।

जिस प्रकार किसी रोगी को अपने खान-पान के सम्बन्ध में अपने स्वास्थ्य का ज्ञान आवश्यक है ऐसे ही एक हृष्ट पुष्ट पुरुष को संसार के भोगों में लिप्त होने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि 'मैं कौन हूं ?' ऐसी ही धारणा के कारण नचिकेता ने संसार के भोगों और उनसे उत्पन्न हुए, सुखों की अपेक्षा अपने प्रश्न के उत्तर को ही आवश्यक समझा और यम से इसी प्रश्न के ही उत्तर पाने के लिए हठधर्मी होकर प्रार्थना करता है । अन्ततः उसकी प्रार्थना स्वीकार हुई और मृत्यु ने अपने आपके भेद जानने की क्रिया को स्पष्ट करके उसे सन्तुष्ट किया ।

क्या आप भी इस भेद को जानने के इच्छुक हैं ? तो आपको नचि-केता का ठीक-ठीक रूप धारना होगा । मृत्यु को जीवन का मुख्य अंग मानकर इसके पढ़ाए हुए पाठ की प्रक्रिया करनी होगी ।

मृत्यु के संदेश को सुनने के लिए मनोयोग चाहिए क्योंकि आप किसी दूसरे की मृत्यु को देख सकते हैं, अपनी मौत को आप नहीं जान सकते । इसी कारण जैसे पहले कहा गया है कि मृत्यु और इसके जानने वाली "मैं"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक समय एकत्रित नहीं हो सकते। इस सम्बन्ध में हम आपको एक सत्य घटना सुनाते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व की बात है, कि एक शोध संस्थान के जीव शास्त्र के विद्यार्थी को अपनी मृत्यु के वैयक्तिक परीक्षण की इच्छा हुई। इसके लिए वह अपने बिस्तर पर बैठ गया और पास रखी मेज पर एक घड़ी, पेन, कागज और विष की पुड़िया रख ली। घड़ी देखकर समय को लिखा उसी समय विष खा लिया। खाने के पांच सेकिंड के बाद लिखा कि घबराहट हो रही है, फिर अगले पांच सेकिंड के बाद इस घबराहट को बढ़ता हुआ अनुभव किया। इस प्रकार वह कोई ३० सेकिंड तक जी सका। इसके पश्चात् दूसरे दिन उसके हाथ में पेन और सिर मेज पर पड़ा हुआ पाया गया। मौत के आने पर वह अपने अनुभवों को न लिख सका और शायद उस समय किसी प्रकार के अनुभव भी उसके अन्दर न रहे हों। इससे स्पष्ट है कि जीवन और मौत का आमना-सामना होना असम्भव है। ऐसा दृश्य तो लेखक की लेखनी में ही हो सकता है या मनोविज्ञान के अनुसार मनोयोग से व्यक्ति अपने अन्तःकरण की गहराई में डुबकी लगाकर उसमें अपने संचित अथवा गुप्त ज्ञान के अनमोल रत्नों को पाकर जीवन अथवा मृत्यु के अस्तित्व का प्रदर्शक बन सकता है। परन्तु किसी जन की ऐसी स्थिति के उत्पन्न करने के लिए यम ने जिस पथ का प्रदर्शन कराया वह इस प्रकार है :—

इस संसार की यात्रा करते हुए यात्री हर समय अपने सामने दो रास्तों को देखता है। एक वह जिसको 'प्रेय' कहते हैं दूसरा वह वह जो 'श्रेय' कहलाता है। प्रेय देखने में सुन्दर सरल और क्षणिक सुख देने वाला है परंतु श्रेय ऐसा सुन्दर और सरल न होता हुआ भी बड़ा कल्याणकारी होता है। इन दोनों में पहिचान आसान नहीं। गूढ़ ज्ञान अथवा सत्य विद्या की आवश्यकता है। विषयों पर काबू पाना है। मन और इन्द्रियों को अपने अधीन करना पड़ता है। चित्त की वृत्तियों की भी कांटा-छांटी करनी पड़ती है तभी तो प्रेय और श्रेय के अन्तर की जानकारी हो सकती है। परन्तु इतनी कठिनाई कौन उठाये और इतने कष्ट कौन सहे। प्रायः सामान्य पुरुष 'प्रेय' के रास्ते पर ही चलते देखे जाते हैं। उदाहरणतः आप देखते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं कि जब कोई विद्यार्थी परीक्षा निकट आने पर अपनी पुस्तकों के अध्ययन में थोड़े से कष्ट को अनुभव करके 'श्रेय' पथ को छोड़ 'प्रेय' रास्ते पर चलना ही अच्छा समझे और फिर अपने समय को सिनेमा आदि व्यर्थ और निरुपयोगी निष्फल व्यसनों में खो दे, तो समझो कि वह विलासी होकर अपने सारे जीवन को दुःख में ही काटने का प्रबन्ध कर रहा है। इसके विपरीत जो विद्यार्थी परीक्षा के लिए अपने कर्तव्य में जुट जाता है वह परीक्षा में उत्तीर्ण होकर एक सच्चे सुख के आनन्द को अनुभव कर सकता है। इसी प्रकार संसार में अपने सब व्यवहारों में एक परीक्षा ही हुआ करती है। किसी परिणाम तक पहुंचना होता है। इसके लिए प्रत्येक को सही दो पथ दृष्टिगोचर होते हैं। यही दो गाड़ियां यात्रा के लिए तैयार रहती हैं। इनको कौन पहिचान सकता है? जो अपने-आपको जान कर अपने कर्तव्य या धर्म को जानने वाला होता है। 'प्रेय' की राह पर चलने वाला अपने अधिकारों के लिए ही प्रायः लड़ता है विपरीत इसके 'श्रेय' का पाथिक अपने कर्तव्य के पालन करने वाला हुआ करता है और जो अनुवर्ती होता हुआ केवल कर्तव्य के लिए ही लड़ता है। उसके लिए अपने अधिकार कुछ नहीं होते। "मैं कौन हूं" के न जानने वाला अविवेकी पुरुष अपने मनमाने अधिकारों के लिए अपना जीवन खो देता है जिससे न तो इसका अपना कुछ संवरता है और न समाज का कोई उद्धार होता है। 'श्रेय' और 'प्रेय' की तुलना अगर संक्षेप से की जावे तो श्रेय को ही परमार्थ का रास्ता कह सकते हैं और प्रेय को स्वार्थ का। स्वार्थ में 'मैं' का रूप व्यक्तिगत होता है और परमार्थ में वह समष्टि का वाचक है। प्रेय में अपने आप की सन्तुष्टि ही मुख्योद्देश है, इसकी प्राप्ति का साधन कैसा ही हो, इसकी चिन्ता नहीं। परन्तु श्रेय में ऐसी कोई बात नहीं, केवल समष्टि और व्यष्टि दोनों के लिए उत्कृष्टता का रास्ता सोचा जाता है।

उपर्युक्त कथन इस तथ्य की स्पष्टता करता है कि प्राणी जीवन एक सामूहिक जीवन है और यही समष्टि है। परन्तु व्यष्टि अथवा व्यक्ति इस समष्टि का एक स्वतन्त्र अंश या इकाई है। इसी इकाई का नाम 'मैं' है। इसलिए 'मैं कौन हूं' का उत्तर हो सकता है, कि मैं प्राणि जगत की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक स्वतन्त्र टुकड़ी हूं। जैसे एक रेखा बिन्दुओं के समूह से बनती है और इसकी आकृति इन बिन्दुओं के क्रम पर निर्भर है, ऐसे ही समष्टि जीवन व्यक्तियों के समूह का नाम है और यह सामूहिक जीवन कितनी उत्कृष्टता को प्राप्त हुआ है, यह व्यक्ति के कर्म पर आश्रित है। इसीलिए नचिकेता की कथा में यम ने 'मैं कौन हूं' के प्रश्न के उत्तर को समझाने के लिए श्रेय पथ पर ही चलने का आदेश किया।

समष्टि और व्यष्टि के अन्तर को थोड़ा अधिक अस्पष्ट समझने के लिए आप अनुमान करें कि कुछ व्यक्ति आपस में झगड़ रहे हैं और उनके पारस्परिक कोलाहल से अशान्ति और समाज की अव्यवस्था को रोकने के लिए सरकार की ओर से भेजा हुआ एक व्यक्ति दस या बारह आदमियों को पकड़ कर ले जा सकता है। शायद आप पूछें इसमें इतनी शक्ति कहां से आई, तो उसके उत्तर में हम कहेंगे, कि समष्टि से। इस समय वह अपने आपको पूर्णतः सरकार (समष्टि) का अंग समझता है और यह है भी ठीक। परन्तु यही व्यक्ति यदि सरकारी नौकरी छोड़कर किसी ऐसे ही झगड़े में हस्तक्षेप करता, तो उल्टे मुंह की खाता। क्या आप सोच रहे हैं, कि इसकी शक्ति को अब क्या हो गया? इसका उत्तर स्पष्ट है कि वह सामूहिक जीवन से सम्बन्ध तोड़ कर मूल्यहीन हो गया है। जैसे पौधा अपने मूल से अलग होकर सूख जाता है, ऐसे व्यक्ति भी अपने मूल स्थान समष्टि को छोड़कर शक्तिहीन तथा निकम्मा हो जाता है। प्रायः ऐसा देखा गया है, कि जब कोई व्यक्ति अपने जीवन के मूल कारणों को भूल जाता है और अपने-आप 'पूर्ण' या स्वतन्त्र समझ कर वन या किसी एकांत स्थान में अपने जीवन के दिन काटे जा रहा है तो वास्तव में वह अपने स्वरूप को न जानता हुआ और इसीलिए अपने कर्तव्य को न समझता हुआ अपने जीवन रूपी अनमोल रत्न को पास पड़े पत्थर के टुकड़े के समान मूल्य रहित कर रहा है।

पहाड़ों की गुफाओं में पड़े हुए और शून्य स्थिति की प्राप्ति के लिए यत्न करने वाले व्यक्तियों को कोई-कोई योगी अथवा सिद्ध बाबा के नाम से पुकारते हैं। ऐसे लोग इनसे अपनी मनोवांछित कामनाओं की पूर्ती के इच्छुक रहते हैं। परन्तु ऐसे विचार केवल मन के लड्डू फोड़ने वाले ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं। क्योंकि इनका आधार श्रद्धा है, जिसका मूल कारण अज्ञान है। वास्तव में किसी ऐसे योगी या सिद्ध का दिल और दिमाग पत्थर हो जाया करता है और जैसा पहले कहा गया है कि वह पास पड़े पत्थरों से कुछ अधिक मूल्यवान नहीं होता। विपरीत इसके एक दर्शक जो एक चौराहे पर खड़ा होकर विदेशी पथिक का पथ प्रदर्शन करे इन योगियों की अपेक्षा हजार गुणा अच्छा है।

क्या आपको यह बात कुछ आश्चर्यजनक लगी है ? हां। हो सकता कि आपको ऐसा भास हुआ हो, क्योंकि किसी मनुष्य को ऐसे विचार जिनके अंदर उसके जीवन का विकास हुआ हो अच्छे हों या बुरे, सृष्टि नियम अनुकूल हों या प्रतिकूल, ठीक ही मालूम होते हैं, और कोई नया सिद्धांत कितना ही सत्य के आश्रित क्यों न हो ठीक नहीं जान पड़ता। प्राय: यह भी देखा गया है कि जब कोई भी झूठ बार-बार दुहराया जाय, तो कुछ समय के लिए वह सत्य का रूप धारण कर लेता है। परन्तु एक विद्वान जिज्ञासु इसके मर्म को पा ही लेता है। क्या आप नहीं देखते कि प्राणि जगत में समष्टि जीवन एक ही रूप धारण किए आदि काल से चला आ रहा है। वेद में इसीको सम्भूति कहा गया है, क्योंकि यह व्यक्तियों के संयोग का परिणाम है और व्यक्ति को असम्भूति माना गया है, जिसका नाम और रूप दोनों ही किसी नियमानुसार लोप होकर विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। बस यह असम्भूति ही 'मैं' है।

●

"आत्मा" वह अक्षय और अमर तत्व है जो अपनी चिरन्तनता के कारण जन्म और मृत्यु की सीमा से परे है। ●

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"मैं कौन हूं" के प्रसंग में : जीवशास्त्र—५

पुरः स्थापन—पहले भाग के अध्यायों से आपको यह ज्ञात हो गया होगा, कि 'मैं' के स्थूल रूप शरीर को ही अगर 'मैं' मान लिया जावे, और इसका ध्येय केवल इस व्यक्त शरीर के लिए सुख की प्राप्ति ही हो, तो भी ऐसी इच्छा की पूर्ति के लिए हमें कुछ नियमों का पालन करना अति आवश्यक है और अगर ऐसा न किया जावे, तो मानव दानव हो जावे, जिससे न कोई सभ्य रहे, और न ही किसी सभ्यता का विकास हो।

अब प्रश्न यह है कि 'मैं' के स्थूल रूप में व्यक्तित्व की प्रदीप्ति कैसे हो जाती है। ऐसा माना जाता है, और यह मान्य भी है, कि सब प्राणियों के शरीर एक ही मिट्टी से बने हैं, अर्थात् सब प्राणी पांच तत्त्व के पुतले ही हैं। इनके अन्तर और बाह्य अवयव भी एक समान हैं, फिर भी हम केवल देखकर ही झट से बता देते हैं कि राम कौन है, और गोपाल कौन है। दो बालक एक ही घर में रहते हुए और एक जैसा खाते हुए अथवा एक जैसी शिक्षा ग्रहण करते हुए भी भिन्न-भिन्न शक्तियों वाले पाए जाते हैं। भला ऐसे व्यक्तित्व का क्या कारण हो सकता है? क्या इसका सम्बन्ध जन्म से है, या जन्म के पश्चात संस्कारों से? ऐसे प्रश्नों के उत्तर के लिए कुछ जीव-शास्त्र के ज्ञान की आवश्यकता है, जो साधारण आदमियों के लिए कुछ कठिन है। फिर भी हम आपको इसकी कुछ संक्षिप्त जानकारी कराने का साहस करते हैं।

सजीव कोष्ठक—अगर हम किसी प्राणी के शरीर के एक छोटे और पतले टुकड़े को अति सूक्ष्मदर्शी (microscope) से देखें तो यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

टुकड़ा बहुत-से कणों का बना हुआ दिखाई देता है और यह कण साथ-साथ लगे हुए ऐसे जान पड़ते हैं, जैसे साथ-साथ लगी हुई कोठरियां। इसीलिए अंग्रेज़ी में इनको सेल (cell) कहते हैं। वास्तव में यह ईंटों के सदृश हैं। जैसे किसी मकान के बनाने में ईंटों का प्रयोग होता है, ऐसे ही शरीरों की रचना में इन सेलों या कोष्ठकों का। यह सब सजीव कोष्ठक एक द्रव से भरे होते हैं। जिसको 'सजीव पिण्ड कललरस' या जीव द्रव कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसका नाम प्रोटोप्लाज़्म (protoplasm) है, जो एक यौगिक पदार्थ है, और जिसके जुज़ों को अलग-अलग भी कर लिया गया है। परन्तु इन तत्त्वों के ठीक-ठीक मिलाने पर भी अभी तक कोई रसायनज्ञ इसको सजीव बना नहीं सका। इसलिए यह जीवन-सम्बन्धी पदार्थ माना गया है।

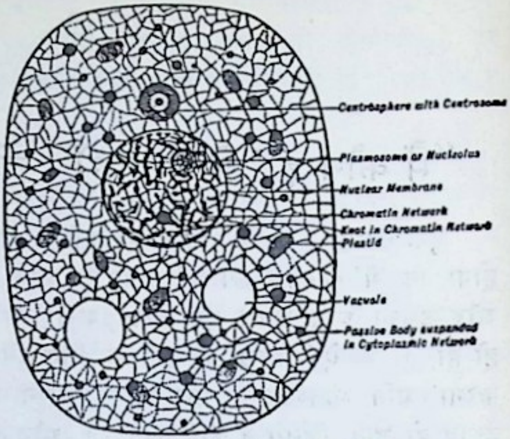

A Typical Cell (after Wilson)

चित्र १ साधारण कोष्ठक जीव द्रव का दृश्य 'नाभिका' क्रोमोसोम जाल सहित

सूक्ष्मदर्शी में से कोष्ठक को ध्यानपूर्वक देखने पर इसके ठीक बीच में एक छोटा-सा बिन्दु दिखाई देता है, जो 'नाभिक' (Nucleus) कहलाता है। इसमें एक जाल-सा बिछा हुआ है, जो ठीक दिखाई नहीं देता, परन्तु यह एक खास पदार्थ से रंगा जा सकता है। जिससे यह प्रत्यक्ष देखा भी जा सकता है। इसीलिए इसका नाम क्रोमोसोम (Chromosome) अर्थात रंगा जाने वाला है।

जैसा पहले वर्णन किया गया है, यह कोष्ठक पूर्ण रूप से जीवन-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मात्रक अर्थात जीवन की इकाई है, शरीरों का बढ़ना इन्हीं की संख्या के बढ़ने से होता है, और जीवों की क्षमता के स्रोत भी यही कोष्ठक माने जाते हैं। काम करने पर जब यह शक्तिविहीन हो जाते हैं, तो मृत-वत् हो जाने से यह मल-मूत्र अथवा पसीने से भी शरीरों के बाहर फेंक दिये जाते हैं।

जीवन की परिभाषा—क्या आप जानते हैं, कि यह कोष्ठक जीवित क्यों माने जाते हैं? जीव-शास्त्र के अनुसार जो वस्तुएं उत्पत्ति की सामर्थ्य रखती हों, या अपनी जाति का प्रादुर्भाव कर सकती हों, जीवित कहलाती हैं। यह कोष्ठक भी अपने जैसे कोष्ठक बनाने में पूर्णतः समर्थ हैं, अर्थात् यह अपने जैसे कोष्ठकों की उत्पत्ति कर सकते हैं। इसीलिए यह जीवित माने जाते हैं।

कोष्ठकों की उत्पत्ति—कोष्ठकों की उत्पत्ति इनके विभाजन से होती है, जो एक विस्मयजनक क्रिया है। जब किसी कोष्ठक के उत्पादन का समय आता है, तो सबसे पहले नाभिक जाल की आकृति एक लम्बे डोरे के समान हो जाती है। इसके पश्चात यह ४८ टुकड़ों में बंट जाता है, और २४, २४ के समूह बनकर उत्पादक कोष्ठक के सिरों पर इकट्ठे हो जाते हैं। फिर इनमें से प्रत्येक टुकड़ा दो में बंट जाने से यह ४८, ४८ के समूह बन जाते हैं। अब इस कोष्ठक की त्वचा बीच से अन्दर की ओर दबने लगती है, (देखो चित्र २) और थोड़ी देर में ही दो कोष्ठक बन जाते हैं, जिनमें कोई अन्तर नहीं होता। इनमें से हर एक-दूसरे की माता और आप माता का रूपांतर होता है।

ऐसा विभाजन हर कोष्ठक का गुण है, चाहे वह कोष्ठक किसी जीव-जन्तु या किसी वृक्ष का ही क्यों न हो। इससे जान पड़ता है, कि सब प्राणी, जीवन के एक ही अटल नियम में बंधे हुए हैं। हां यह बात ध्यान देने योग्य है, कि उपर्युक्त ४८ की संख्या केवल मनुष्य जाति के लिए है। हर प्राणी की जाति अथवा उपजाति में ऐसे टुकड़ों की गिनती में विभिन्नता पाई जाती है। यह क्रोमोसोम के टुकड़े क्या हैं? यह गुण-लक्षण हैं। इनमें से हरएक किसी न किसी गुण का चिह्न है। इसलिए क्रोमोसोम के टुकड़ों को हम गुणांक या गुण ही कहेंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शरीर के राजगीर—(gene जीन) उपर्युक्त ४८ गुणांक के अन्दर कुछ और अतिसूक्ष्म कण होते हैं, जो शरीर के हर एक अंग के बनाने के जिम्मेदार माने जाते हैं। ऐसे कारीगरों को 'राजगीर' या 'जीन' कहते हैं। इनमें हरएक किसी निश्चित समय के आने पर केवल अपना ही निश्चित कर्म करता है। जब किसी जीव के शरीर का श्रीगणेश होता है, तो प्रथम उपर्युक्त-क्रिया से कोष्ठकों का बढ़ना आरम्भ हो जाता है। फिर कुछ समय के पश्चात जब मांस के लोथड़े की एक निश्चित मात्रा हो जाती, तो इन जीन के कार्य भी निश्चित हो जाते हैं। इनमें से अगर कोई किसी विशेष अंग के बनाने में लगे हुए हैं, तो कुछ हृदय से रक्त को समस्त शरीर में घुमाने के लिए धमनियों की रचना कर रहे हैं और कई शिरा नालियों के प्रबन्ध में जुटे हुए हैं। संक्षेपतः यह सब राजगीर अपने-अपने काम में लगे हुए निश्चित समय पर पूर्ण शरीर को गढ़ देते हैं।

यह कैसी आश्चर्यजनक क्रिया है! इससे भी बढ़कर यह और भी विस्मयजनक है, कि यह 'जीन' किसी जीव जाति के पिण्डों के अंगों को एक समान बनाते हुए भी इनको विभिन्नता प्रदान करते जाते हैं, जिसके कारण हरएक प्राणी दूसरे से पहिचाना जा सकता है। इससे जान पड़ता है कि यह कारीगर अलग-अलग शरीरों में अलग-अलग प्रकार के ही होते होंगे, जो शरीरों की स्थापना करते हुए अपनी विभिन्नता को भी प्रकट करते जाते हैं। अर्थात् सामूहिक जीवन के समष्टि रूप को व्यक्तिगत रूप प्रदान करने वाले यही 'जीन' हैं।

व्यक्ति की उत्पत्ति की क्रिया-मिथुन सृष्टि—यह पहले वर्णन किया जा चुका है, कि शरीर कोष्ठकों के बने हुए हैं, और कोष्ठक की 'नाभिका' में ४८ क्रोमोसोम या गुणांक होते हैं। ऐसी स्थिति में पूछा जा सकता है, कि फिर सब स्त्री-पुरुषों के गुण कर्म समान क्यों नहीं होते और इनमें विभिन्नता क्यों कर हो जाती है? अतः यह व्यक्तिक्रम कहां से उत्पन्न हो जाता है? बात तो ठीक है, और इसके मानने में भी संकोच नहीं हो सकता। परन्तु इस सृष्टि की उत्पत्ति का पथ निराला है। उपर्युक्त ४८ गुणांकों से ही व्यक्तित्व को उत्पन्न करने के लिए इनका किसी विशेष

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ढंग से विभाजन जरूरी है, और ऐसे विभाजन के लिए ही मिथुन सृष्टि की रचना हुई, अर्थात् कई प्रकार के जीव-जन्तु अथवा मनुष्य बनाने के लिए और उनमें व्यक्ति सम्पन्न करने के लिए दो सहयोगी जीवों का होना जरूरी है। एक से ही उत्पत्ति में व्यक्ति नहीं हो सकता। एक फूल का बीज अगर एक से ही उत्पन्न हो, तो यह बीज वैसा ही फूल बनाएगा, जिससे यह उत्पन्न हुआ है। न रंगत में और न ही छोटा-बड़ा होने में कोई अन्तर होगा। इसी कारण कुछ पौधों में नर और मादा के लिंग एक स्थान पर होते हुए भी एक फूल का परागण (pollination) किसी दूसरे फूल से ही होता है। अन्तर परागण को रोकने के लिए प्रकृति ने हर फूल के अन्दर पराग नलिका को इतना ऊपर उठाकर रखा होता है, कि नर मादा के प्रजनन अंश एक-दूसरे से मिल नहीं सकते। अलग-अलग फूलों के ऐसे प्रजनन अंशों का संयोग वायु अथवा कीड़ों-पतंगों के माध्यम से ही होता है। अगर ऐसा न होता, तो यह सब रचना एक ही रूप को धारण किये पूर्णतः आकर्षणशून्य होती। प्राणी जगत में यह रंग-बेरंग के मनोरंजक दृश्य भी न होते। संसार में एक रूखापन होता। मनुष्य की आपस में पहिचान भी असम्भव-सी होती। मैं और तू का प्रश्न भी न उठता।

इस सिद्धांत के समर्थन में प्रश्नोपनिषद् के कर्ता पिप्पलाद ऋषि का विचार भी वर्णनीय है। प्रश्न है, कि यह सब प्रजा नाना रूपों में कैसे उत्पन्न होती है? इसके उत्तर में ऋषि ने कहा कि—

स मिथुनमुत्पादयते।···एतौ में बहुधा प्रजा करिष्यत इति॥

अर्थात् उसने जोड़ उत्पन्न किये ताकि मेरी नाना रूपों में प्रजा उत्पन्न हो। इससे स्पष्ट है कि प्रश्नोपनिषद् के सिद्धांत अनुसार भी कई रूपों वाली प्रजा के लिए जोड़ों के संयोग से ही उत्पत्ति का होना जरूरी है।

व्यक्तित्व के लिए प्राकृतिक विधि-विधान—अब शायद आप जानना चाहें कि किस विधि अनुसार जोड़ों (स्त्री, पुरुष) के सहयोग से प्रकृति नाना प्रकार के जीवों की उत्पत्ति कर रही है?

पहले यह वर्णन हो चुका है, कि स्थूल शरीरों का बढ़ना कोष्ठकों के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विभाजन से होता है। इस क्रिया में प्रथम क्रोमोसोम जाल ४८ गुणांकों में विभाजन होता है। फिर २४, २४ के दो समूह होकर अलग-अलग हो जाते हैं। और फिर हरएक के दो-दो होने के पश्चात ही यह कटकर दो सजीव कोष्ठक बन जाते हैं, जिनमें पूरे ४८ गुणांक होते हैं। परन्तु कुछ कोष्ठक ऐसे भी होते हैं, जो ऊपरी क्रिया में दुगने होने से पहले ही कट-कर दो हो जाते हैं, इसलिए इनके ऐसे विभाजन पर इनमें २४ ही गुणांक वाले कोष्ठक होते हैं। ऐसे अधूरे कोष्ठक शरीर के बनने के आरम्भ में ही किसी गहन गम्भीर योजना के अनुसार शरीर के एक गुप्त स्थान में रख दिये जाते हैं, जिससे इन पर दीर्घ काल तक भी बाह्य वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे सुरक्षित कणों से उत्पन्न हुए अधूरे कोष्ठक ही 'प्रजनन अंश' हैं, जो युवा अवस्था के आ जाने तक सुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं।

पुरुष के ऐसे प्रजनन अंशों को "शुक्र-कीट" और स्त्री के अंशों को "डिंब" कहते हैं।

उपर्युक्त क्रिया की स्पष्टता के लिए आप चित्र २ को देखिये। इसमें किसी कीड़े का सुरक्षित कण या कच्चा स्पर्म और कीड़ी का कच्चा ओवम दिखाया गया है। इनमें क्रोमोसोमजाल के स्थान पर तीन - तीन क्रोमोसोम के जोड़े दिखाये गए हैं। पहले यह क्रोमोसोम या गुणांक साधारण रीति से दो समूहों में बंट गये हैं।

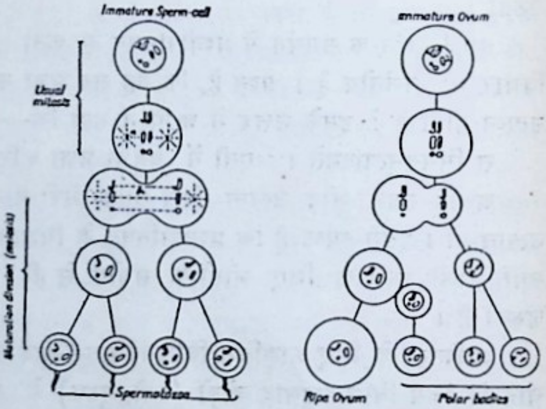

चित्र २ कच्चे शुक्र-कीट और डिंब के विभाजन और पक्के अंशों की उत्पत्ति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परन्तु फिर हरएक के दो-दो होने से पहले यह दो नये कोष्ठक बन गए हैं और फिर इन गुणांकों के दुगने हो जाने पर यह चार बन जाते हैं। चित्र से स्पष्ट है, कि एक कच्चे शुक्र-कीट के चार पक्के शुक्र-कीट बन सकते हैं। परन्तु एक डिंब का एक ही डिंब रह जाता है, तीन निकम्मे होने के कारण बाहर फेंक दिये जाते हैं।

युवावस्था की कुछ विशेषताएं—युवा अवस्था के आगमन पर इन प्रजनन अंशों में हलचल-सी उत्पन्न हो जाती है। और बाहर के वातावरण से इनमें एक कठोर उभार-सा भी उठता है। हर जीव अपनी जाति या नस्ल को सुरक्षित रखने के लिए स्वभाव से ही कटिबद्ध रहता है। जीवन से ही जीवन उत्पन्न हो सकता है। इसके लिए स्त्री-पुरुष का सहयोग ज़रूरी है। योग्यतम प्राणियों की उत्पत्ति के लिए प्रकृति भी बड़ा सहयोग देती है, और इसीलिए इस अवस्था में प्रजनन-अंशों के साथ कुछ ऐसे पदार्थ भी पैदा हो जाते हैं, जो रक्त से मिलकर सारे शरीर में फैल जाने पर शरीर को बल, तेज और कई प्रकार के रोगों से सुरक्षा प्रदान करते हैं। चेहरे की कान्ति, आंखों में चमक, त्वचा की सफाई और पठ्ठों में लचक इस अवस्था के प्रत्यक्ष लक्षण हैं। परन्तु ऐसा होता तब है, जब शरीर में इन उत्पन्न हुए पदार्थों के लिए काफी अवशोषण की क्षमता पैदा हो गई हो, नहीं तो इनका अपवाहन बाहर की ओर हो जाने से शरीर में बल आदि के आने की बजाए इसकी क्षीणता और दुर्बलता का श्रीगणेश हो जाता है। और फिर ऊर्जा की न्यूनता हो जाने से किसी कार्य में रुचि भी नहीं रहती। मस्तिष्क की विचार शक्ति अथवा स्मृति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसका कारण यह है, कि शुक्र-कीट और वह द्रव जिसमें यह तैरते रहते हैं, रक्त का सार होते हैं। इस द्रव में एक प्रकार के एनज़ाईम (Enzims) होते हैं, जो प्रोटीन के एक विशेष प्रकार के अणुओं से बनते हैं। यह पहले बताया जा चुका है, प्रोटीन अंगों की मरम्मत के लिए आवश्यक पदार्थ है। इसलिए इस द्रव का अधिक अपवाहन बाहर की ओर हो जाने से शरीर के सब भाग क्षीण अथवा दुबले-पतले पड़ते जाते हैं।

सेक्स हारमोन (Sex Harmons) :—अत्याधुनिक जीव-शास्त्र की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

खोज के अनुसार यह भी माना जाता है, कि युवा अवस्था के आने पर शरीर में कुछ ऐसे पदार्थ भी उत्पन्न हो जाते हैं, जो रक्त में मिल जाने पर बहुत से रोगों के रोकने में सहायक होते हैं, यह सेक्स 'हारमोन' कहलाते हैं। इनमें से दो जो वर्णनीय होते हैं उनके नाम हैं, टेस्टोस्टेरोन (Testostercne) और ओएस्ट्रोजन (Oestrogons) यह दोनों पदार्थ स्त्री और पुरुष में पाए जाते हैं, जिनको रासायनिक क्रिया से अलग-अलग करके इनके गुणों का कुछ ज्ञान भी प्राप्त कर लिया गया है। इनमें से टेस्टोस्टेरोन अधिक मात्रा में पुरुषों में होता है, और ओएस्ट्रोजन स्त्रियों में। टेस्टोस्टेरोन पौरुष पदार्थ है, जो उभार और जोश पैदा करता है। इसके बाहर निकलने के समय साँस तीव्र गति से चलने लगती है, दिल की धड़कन भी बढ़ जाती है। शरीर का ताप भी कुछ थोड़ा ऊंचा हो जाता है। ऐसी क्रिया को विज्ञान नियमावली के अनुसार 'दहन' कहते हैं जिसका अभिप्राय शरीर के अंगों का जलना है। इससे स्पष्ट है, कि जब अंग अभी बन रहे हों, तो इस द्रव के अपवहन से अंगों का पूर्ण रूप से निर्माण नहीं हो सकता, और जो बने हुए हों, वह भी हौले-हौले क्षीण होने लगते हैं।

स्त्रियों के हारमोन में अधिकांश 'ओएस्ट्रोनजन' होता है, और इसका तब तक उपार्जन हो सकता है, जब तक कि शरीर में प्रजनन की क्षमता रहती है, अर्थात कोई सोलह वर्ष से लेकर पैंतालीस वर्ष की आयु तक। यह हारमोन बड़ा उपयोगी पाया गया है, इससे कई प्रकार के स्त्रियों के रोग दूर हो जाते हैं। हस्पतालों में यह देखा गया, कि २५-४५ वर्ष की आयु वाले पुरुषों अथवा स्त्रियों में दिल की बीमारी से मरने वाले अगर छः पुरुष हों, तो एक ही स्त्री हुआ करती है। स्त्रियों की इस आयु में रक्षा करने वाला यही 'हारमोन' माना गया है। इसके अतिरिक्त यह कई और रोगों में भी गुणकारी पाया गया है, विशेष कर हड्डियों के जोड़ों के रोगों में, जैसे अर्थराईटिस (arthrites) आदि।

इन सब बातों के वर्णन करने का अभिप्राय यह है, कि पाठक इस बात को भली प्रकार समझ लेवें, कि युवावस्था के आरम्भ में ही शरीर में बहुत से रसद्रव पैदा होने शुरू हो जाते हैं, जो बड़े लाभदायक होते हैं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ग्रौर यह ग्रापको केवल बलवान ग्रथवा सुन्दर ही नहीं बनाते, ग्रपितु बहुत से रोगों की ग्रौषधि होने के कारण ग्रापकी रक्षा भी करते हैं। इसलिए इन ग्रनमोल रत्नों का सुरक्षित रखना भी ग्रापका कर्तव्य है। इसके सम्बन्ध में विद्वानों ने ग्रापके पथ-दर्शन के लिए कुछ नियम बनाये हुए हैं जिनको ध्यान में रखने से इन रत्नों की सुरक्षा हो सकती है। इनके संरक्षण के लिए प्रथम बात जो ध्यान देने योग्य है, वह यह कि युवक सर्वदा ग्रपने मन को किसी ग्रच्छे रुचि-अनुकूल कार्य में लगाए रखें। इसको ग्रवकाश का ग्रवसर न दें। कोई निश्चित कार्य न हो, तो लिखने पढ़ने अथवा खेल कूद में मन को लगाए रखें। दूसरी बात जिसकी ग्रोर ध्यान देना जरूरी है, वह यह कि बिना नींद के कोई युवक बिस्तरे पर विषय-स्नेह से लेटा न रहे। प्रातःकाल नींद के खुल जाने पर बिस्तरों में देर तक करवटें बदलते रहना युवावस्था का एक हानिकारक ग्रथवा कष्टदायक लक्षण है। सबेरे उठकर व्यायाम का करना, खुली हवा में गहरे-गहरे सांस लेना ग्रथवा प्राणायाम करना अत्यावश्यक है। भोजन सन्तुलित होना चाहिए। इसमें दूध, मक्खन ग्रौर कुछ कच्ची सब्जियों का होना भी जरूरी है। ग्रच्छा संग ग्रौर शुभ चेष्टाएं भी ग्रत्यावश्यक हैं। याद रखिए जवानी दीवानी होती है। इसमें उबलते हुए पानी की तरह युवकों के जीवन में उबाल आया करते हैं, जो ग्रपनी ग्राग को ग्राप ही मन्द करके शीघ्र ही समाप्त हो जाया करते हैं। युवावस्था की यह एक बड़ी समस्या है और भारतीय संस्कृति कुछ सीमा तक इस रोग की ग्रौषधि है। ग्राधुनिक शिक्षा प्रणाली तो कुछ उलटे परिणाम ही उत्पन्न कर रही है। इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा सकता है, परन्तु यह हमारा विषय न होने से इस पर अधिक विचार पाठकों पर ही छोड़ दिया गया है। हम फिर ग्रपने विषय की ग्रोर लौटते हैं ग्रौर देखते हैं कि व्यक्तित्व के उत्पन्न करने की कौन सी प्राकृतिक विधि है :—

पहले यह बताया जा चुका है, कि प्रजनन ग्रंश ग्रधूरे कोष्ठक होते हैं। इनमें ४८ में से केवल २४ गुणांक पाए जाते हैं। ग्रब ४८ में से कोई २४ एक बार लेने से बेशुमार प्रकार के गुण समूह बन सकते, जिनमें कुछ न कुछ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विभिन्नता होती है। ऐसे गिनती में कितने समूह हो सकते हैं ? इसके उत्तर में इतना कह देना काफी होगा कि इन समूहों की ठीक संख्या गणित प्रस्तार द्वारा जानी जा सकती है, जो सारी दुनिया की आबादी से भी कई गुना अधिक है। और यह गुणों के समूह ऐसे हैं, जिनमें किसी न किसी प्रकार की विभिन्नता पाई जाती है। यही कारण है, कि इन प्रजनन अंशों से उत्पन्न हुए मनुष्य एक जैसे होते हुए भी उनके स्वभाव अथवा शरीरों में इतनी विभिन्नता हो जाती है, कि बड़ी सुगमता से एक दूसरे से पहचाने जा सकते हैं।

उपर्युक्त समूहों की बनावट को थोड़ा और समझने के लिए मान लो, कि आपके पास पांच भिन्न-भिन्न गुणांक हैं, जिनके नाम हैं क, ख, ग, घ, ङ। इनमें से दो गुण एक साथ लेकर अगर हम समूह बनाना चाहें, तो जानते हो कि कितने बन सकते हैं ? इसके उत्तर के लिए आप दो-दो गुणों को निम्न विधि द्वारा जोड़े बना लो, जैसे :—

क ख / क घ / क ग / क ङ
खग / ख घ / ख ङ
ग घ / ग ङ
ग ङ

देखो यह कुल दस बनते हैं। इसी प्रकार जब हम ४८ में से २४ गुण एक बार लेते हैं, तो बेशुमार गुणांकों के समूह बन जाते हैं, और प्राणियों को व्यक्तित्व प्रदान करते हैं।

जन्मज गुण अथवा भाग्य—शुक्र-कीट और डिंब दोनों ही अधूरे कोष्ठक या प्रजनन अंश होते हैं। जब इनका संयोग होता है जो कीट से लगी एनजाईम (enzimes) अंडे की कठोर दीवार को नर्म कर देती है, (देखो चित्र ३) जिससे कीट सीधा अन्डे के केन्द्र में जा कर खुल जाता है, और दोनों मिलकर २४ जोड़े हो जाते हैं। यह अब एक नया गुणांक बन जाता है, जो कि नये बनने वाले व्यक्ति का बीज है और 'मैं' का मूलांक है यही 'मैं' की बीज रूप में पूर्ण संपत्ति है। इसीमें इसका प्रारब्ध भाग्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अथवा किस्मत है। अब इन दो प्रजनन अंशों से बना हुआ कोष्ठक उपर्युक्त विधि से बढ़ना आरम्भ करके ठीक समय पर भ्रूण को परिचित रूप में प्रकट कर देता है। इससे आपको स्पष्ट हो गया होगा, कि 'मैं' का प्रत्यक्ष रूप अरबों प्रकार की नाम रूप वाली मूर्तियों में से एक है। ऐसे 'मैं' की उत्पत्ति या व्यक्ति का प्रदर्शन एक अकस्मात घटना मानी जाती है और नियम बद्ध नहीं मानी जाती। क्या किसी व्यक्ति का अपने विशेष गुणों के साथ उत्पन्न हो जाना एक चांस (chance) की बात है, जिसमें अरबों में से किसी एक की सम्भावना हो सकती हो? हां आधुनिक विज्ञान का तो इस बारे में यही उत्तर है। इसका कारण यह है कि आधुनिक विज्ञान अभी तक अपने यन्त्रों अथवा प्रयोगों द्वारा प्राप्त की हुई जानकारी से जीवन के परम तत्त्व तक नहीं पहुंच पाया। परन्तु जो दार्शनिक इस सृष्टि की हर घटना में एक परम तत्त्व को अनुभव करते हैं, और इसमें हर कार्य को नियमानुकूल मानते हैं, वह स्त्री पुरुष के प्रजनन अंशों के मेल को भी समष्टि ज्ञान की प्रेरणा का फलस्वरूप समझते हैं।

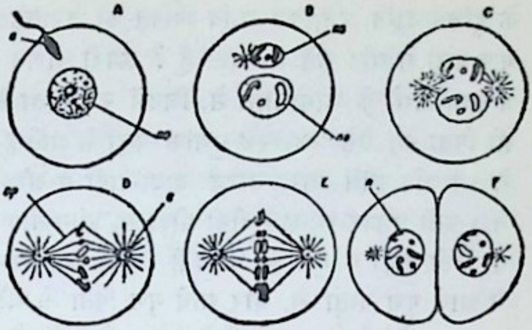

चित्र ३

डिंब उर्वरता (Fertilisation) उत्पत्ति की क्रिया

(A) स्पर्म का डिंब में प्रवेश

(C D) स्त्री पुरुष के समान गुणांक के जोड़े

(E) गुणांक का दुगना होना

(F) एक उर्वर डिंब के दो होना

परिवार और 'मैं'—उपर्युक्त प्रजनन अंशों का संयोग एक अकस्मात घटना मान लेने पर भी यह देखा गया है, कि सन्तान में अपने पूर्वजों के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कुछ गुण पाए जाते हैं। और कुछ सीमा तक बच्चे माता-पिता के अनुरूप ही देखे गए हैं। आंखों का काला, नीला, भूरा अथवा हरा रंग, बच्चों के दूधिए दान्त, रंग, कद आदि व्यक्ति को विरासत में ही मिलते हैं। यह गुण कहां से और कैसे आ जाते हैं ? ऊपरी वर्णित कथा से स्पष्ट है, कि प्रजनन अंशों के क्रोमोसोमों से, जिनमें २४ माता के होते हैं और इतने ही पिता के, ऐसे २४, २४ गुणांक कहां से आते हैं ? उनके माता-पिता से। अर्थात इनमें बारह-बारह दादा-दादी से और इतने ही नाना-नानी से। इसी प्रकार छः-छः चौथी पीढ़ी से, तीन-तीन पांचवीं और एक या दो छठी पीढ़ी के गुण आ सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति में आधे गुण माता से, और आधे गुण पिता से और आधी में चौथाई दादा, दादी और नाना नानी से। इस लिए किसी व्यक्ति में छः पीढ़ियों के गुण हो सकते हैं। हमारे शास्त्रों में भी युवकों को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पहले जन्मज गुणों की जानकारी के लिए छः ही पीढ़ियों के ज्ञान की आवश्यकता बताई गई है।

प्रश्न हो सकता है, कि क्या माता-पिता के अन्दर पहली पांच पीढ़ियों के गुण नहीं होते ? और अगर होते हैं तो फिर इतना दूर जाने से क्या लाभ ? प्रश्न तो ठीक है, परन्तु विधाता के काम निराले हैं। पहले यह वर्णन हो चुका है कि उर्वर (Fertilised) कोष्ठक अर्थात दो प्रजनन अंशों से बने हुए पूर्ण कोष्टक में गुणांकों के चौबीस जोड़े होते हैं। इनसे हर एक जोड़े के दो गुणांक (एक माता से आया हुआ दूसरे पिता से) शरीर के किसी गुण अथवा अवयव को मिल कर ही बनाते हैं। वास्तव में 'मैं' का व्यक्तिगत स्वरूप स्त्री-पुरुष के समान गुणांकों के सहयोग का ही परिणाम है।

परन्तु कई बार ऐसा देखा गया है कि बाह्य वातावरण के कारण किसी जोड़े में से एक गुणांक काम नहीं कर सकता, जिसके कारण यह चुपचाप 'सुप्त' अवस्था में पड़ा रहता है। ऐसी स्थिति में दूसरा जो 'सक्रिय' है, अकेला ही अपने नियुक्त काम को पूरा कर देता है। ऐसे सुप्त गुणांक पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आते हैं, और अनुकूल स्थिति के हो जाने पर सक्रिय भी हो जाते हैं। उदाहरणार्थ मान लो कि स्त्री-पुरुष के संयोग के जोड़े

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में से एक व्यक्ति श्रोत्र-हीन हैं, और दूसरा ठीक सुनता है। ऐसे विवाहित जोड़े की सन्तान श्रुति के सम्बन्ध में सामान्य हुआ करती है। अर्थात इन में कोई बहरा नहीं होता। बहरापन के उत्पादक गुणांक 'सुप्त' रहते हैं दूसरे 'सक्रिय' अकेले ही श्रवण शक्ति को सम्पन्न कर देते हैं।

परन्तु ऐसे स्त्री पुरुषों के अन्दर बहरापन के गुणांक सुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं। और जब कभी भी ऐसे व्यक्तियों का परस्पर विवाह संबंध हो जाता है, तो इन दोनों के बहरेपन के गुणांक सक्रिय हो जाते हैं, इस लिए इनकी कुछ सन्तान जरूर बहरी होगी। ऐसे ही कुछ रोग भी जन्मज होते हैं, जो माता पिता में प्रत्यक्ष न भी हों, परन्तु उनमें किसी गत पीढ़ी से चले आ रहे हों, और अब अनुकूल परिस्थितियों के होने से इनके गुणांक सक्रिय हो जाने से सन्तान में ऐसे रोग प्रत्यक्ष हो सकते हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि विधाता ने प्रजनन अंशों को एक ऐसे गुप्त अथवा सुरक्षित स्थान पर रखा होता है, जिससे कि बाहर के वातावरण का प्रभाव इन पर न पड़ सके, फिर भी देखा गया है कि कुछ ऐसी भी परिस्थितियां हैं, जिनसे इनकी उत्पन्न करने की क्रिया भी बदली

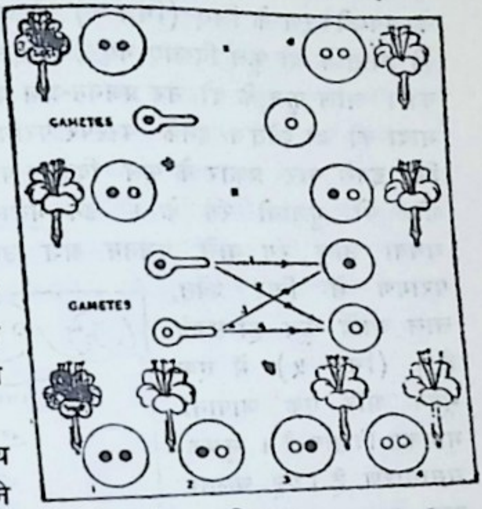

चित्र ४

एक जाति के दो फूल लाल और श्वेत गुणांक
इनके मेल से दो फूल (गुलाबी)
गुलाबी फूलों का चार प्रकार का मेल (१) लाल (२ ३,) गुलाबी, (४) श्वेत
आणुवंशिकी की स्थापना 'मण्डलवाद'

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जा सकती है। आधुनिक खोज के अनुसार परमाणु बम फटने से जो किरणें या कण निकलते हैं, उनका प्रभाव स्पष्ट देखा गया है। ऐसे प्रभावित अंशों से उत्पन्न हुई सन्तान असाधारण हुआ करती है।

ऊपर के उल्लेख से स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति में 'मैं' को व्यक्त करने वाले जो स्वभाव होते हैं, वह गुणांकों के ही परिणाम हो सकते हैं और यह इस मिथुन सृष्टि में माता पिता से ही अवतीर्ण हुए माने जाते हैं। यह गुणांक या कण प्रत्यक्ष हों या न हों, इनका नाश नहीं होता। इन बातों के स्पष्टीकरण के लिए (चित्र ४) को ध्यान पूर्वक देखिए। इसमें एक ही जाति के दो फूल दिखाए गए हैं। एक लाल और दूसरा श्वेत रंग का। लाल फूल के दो नर प्रजनन-अंश दो काली बिन्दु हैं, और दूसरे मादा की दो श्वेत। इनके परस्पर परागण से दो गुलाबी फूल और फिर इनसे चार प्रकार के फूल दिखाए गए हैं—एक लाल एक श्वेत और दो गुलाबी रंग के। इन गुलाबी रंग वालों में भी श्वेत अथवा लाल रंग वाले प्रजनन अंश उपस्थित रहते हैं और इनके परागण से फिर श्वेत, लाल आदि फूल हो सकते हैं। (चित्र ५) में एक मूषक और एक जापानी मूषिका दिखाए हैं। मूषक असाधारण है। यह चलता हुआ चक्कर काटता है। पूंछ की ओर मुख रखता है पूर्वोक्त के अनुसार दो बिन्दुकाएं प्रजनन-अंश हैं। इनकी सन्तान साधारण हैं। असाधारण अंश सुप्त अवस्था में इनके अन्दर मौजूद हैं। परन्तु इनकी सन्तान में यह गुण निखर आया है। अर्थात

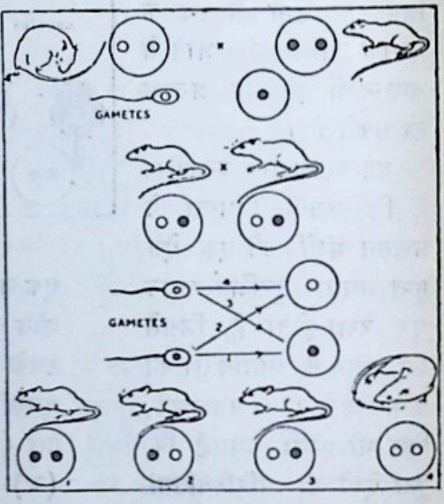

चित्र ५ सुप्त और सक्रिया गुणांक गुणांक नष्ट नहीं होते।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तीसरी पीढ़ी में जो चार चूहे दिखाए गए हैं। उनमें एक असाधारण है, (४), एक पूर्णतः साधारण जाति वाला है, दो (२, ३) द्वि जाति के अंश धारण किए हुये हैं। इनकी सन्तान सर्वदा एक चौथाई असाधारण चूहों की होगी।

आजकल जीव शास्त्रज्ञ इन 'जीन' सम्बन्धित गवेषणा में लगे हुए हैं और आधुनिक खोज यहां तक पहुंच चुकी है, कि 'जीन' कोई विशेष पदार्थ नहीं, अपितु एक रासायनिक पदार्थ हैं, और रासायनिक क्रिया से उत्पन्न हो सकता है। क्या यह पदार्थ शरीर में भी उत्पन्न हो सकता है? इसका उत्तर अगर 'हां' में हुआ, तो सब जन्मज गुण अर्जित गुण हो जाएंगे। आंखों का काला नीला होना भी बदला जा सकेगा। बहुत से जन्मज रोगों का भी नियन्त्रण हो जाएगा। वास्तव में यह असम्भव भी नहीं हो सकता क्योंकि हम प्रायः देखते हैं, कि कई रोगों से और कई प्रकार की औषधियों से हमारे शरीरों में अथवा हमारे स्वभावों में भी अन्तर आया करता है। सन्तुलित भोजन का भी बड़ा असर होता है।

वास्तव में जन्मज अथवा पैत्रिक गुण ही बाह्य वातावरण से प्रभावित हुए 'मैं' के व्यक्तित्व (नाम रूप) के उत्तरदायी हैं। ●

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ 'आत्मा' निवास करता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'मैं' का समष्टि जीवन में स्थान—७

जीवन यज्ञ—मनुष्य प्राणी है। इसके लिए वायु और प्रकाश की आवश्यकता है। आहार, निद्रा, भय और सन्तान उत्पत्ति भी इसके गुण हैं। परन्तु ऐसे सब गुण विद्यमान हैं और जीवों में भी और इन सबको इसी प्रकार वायु और प्रकाश की आवश्यकता है। इसीलिए ऐसे सब जीव-जन्तु प्राण वाले या प्राणी कहलाते हैं। वास्तव में प्राणी जगत् एक बड़ी गम्भीर और विशाल सृष्टि है। मनुष्य इस सृष्टि का एक न्यून-सा अंग है, परन्तु अपने-आपको सर्वश्रेष्ठ या सर्वोत्तम ही मानता है। और सर्वोपकारी होने के कारण ऐसा मानना ठीक भी है।

शास्त्रों में प्राणी जगत को एक विश्व-यज्ञ कहा गया है, जिसमें प्राकृतिक शक्तियां भोग पदार्थों के रूप में लगातार आहुति डाल रही हैं, और जिसका परिणाम विकास है। या यों कहिये, कि जीवन-यज्ञ एक विकास-यज्ञ है, और यज्ञ सर्वदा उत्कृष्टता के अर्थ में आता है, क्योंकि यज्ञ के अर्थ हैं, किसी उत्तम अथवा श्रेष्ठ अवस्था की ओर नियमबद्ध मिलकर बढ़ना।

शरीरों की अभिव्यक्ति—सृष्टि एक महत्त्वपूर्ण आकर्षक दृश्य है। इसको देखकर मनुष्य आदि काल से सोचता चला आ रहा है, कि यह सब रंग-बिरंगी दुनिया कैसे उत्पन्न हो गई? क्या यह सब प्राणी जगत समकालीन है या इसकी भिन्न-भिन्न जातियां क्रमशः समय-समय पर व्यक्त होती चली आ रही हैं, यह नियमित है, या अनियमित? क्या यह आयोजित दृश्य है, या कोई अकस्मात् घटना? यह प्रश्न अति गम्भीर और दुर्गम होने पर भी जीव-शास्त्रज्ञ अथवा भू-विद् इनके उत्तर की खोज में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लगे हुए अनादि काल से ही चले आ रहे हैं। इस प्रसंग में ऐतरेयोपनिषद् का विचार विवेचनीय है—

इस उपनिषद् के प्रथम अध्याय के प्रथम खण्ड में बताया गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति से पहले चेष्टा करने वाला एक परम पुरुष परमात्मा था। उसने लोकों के रचने की चेष्टा की और अम्भ, मरीच, मर और जल लोकों की अपने ज्ञान रूपी तप से रचना की। अम्भ द्युलोक अर्थात् सूर्यादि चमकते हुए तारे हैं, जो सब सृष्टि की शक्तियों के आधारभूत हैं, मरीच से अन्तरिक्ष, मर से पृथ्वी और जल से अभिप्राय समुद्र है। इसके बाद उसने लोकपालों को रचा अर्थात् अन्तरिक्ष में विचरने वाले नभचर जमीन पर चलने वाले स्थल चर और जल में रहने वाले जलचरों की भी व्यवस्था की। ऐसी नई सृष्टि के लिए उसने अपने विराट स्वरूप से देखने, सुनने, सूघंने, बोलने आदि की शक्तियों का उद्भव किया। और भूख-प्यास को इनके साथ लगाकर एक आश्चर्यजनक मिश्रण उत्पन्न कर दिया। फिर ऐसे मिश्रण के लिए कुछ उपर्युक्त स्थान अनिवार्य हो गए। इसलिए आंख, कान, मुंह, त्वचादि सूक्ष्म रूप में कुछ उपकरण भी बनाए। भूख-प्यास से जीवन को सक्रिय करने के लिए शरीरों की रचना का भी आरम्भ हो गया। प्रकृति की प्रयोगशाला में क्रमशः इनके कई नमूने भी बनने शुरू हो गए। लिखा है कि जब गौ का शरीर इन देवताओं (इन्द्रियों के समूह) के सामने रखा गया तो इन्हें कुछ पसन्द न आया। क्योंकि ऐसे जीव-गृह से जीवन की क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती। इसके पश्चात् घोड़े का शरीर बनाया गया। इसकी ओर भी देवों की रुचि न हुई। और हो भी कैसे! क्योंकि जीवन तो स्वभाव से ही यज्ञमय है। ऐसे-ऐसे गृहों के अन्दर रहकर यह अपने कर्तव्य को कैसे निभा सकता है? अंततः जब मनुष्य बनाकर इनके सामने रखा गया तो यह इन्हें अत्यन्त सुन्दर लगा। और प्रसन्नता से इसमें प्रवेश कर अपने कर्तव्यों के पालन करने वाले हो गए, यह कहते हुए :—

'पुरुषो वाव सुकृतम्'

सचमुच ही मनुष्य-शरीर एक सुन्दर रचना है। इस कथा से स्पष्ट है कि शरीरों की उत्पत्ति क्रमशः समय-समय पर होती रही, अर्थात् यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सब सृष्टि एक कालिक नहीं है, और ऐसा जान पड़ता है, जैसे प्रकृति अपनी प्रयोगशाला में किसी बढ़िया नमूने के अविष्कार करने में लगी हुई हो, और अन्त में मनुष्य शरीर का विकास कर दिया हो। इस उपनिषद्कार के अनुसार यह भी है कि जीवों की हर जाति के शरीर अलग अलग ही घड़े गए और फिर इसके विकास का शिलाधार केवल भूख-प्यास ही है। भूख-प्यास से जीवों की आवश्यकताएं प्रकट हो जाती हैं। इसी से यह सक्रिय हो उठते हैं, प्रयत्नशील होकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जीवन संग्राम में डट जाते हैं। ऐसे संग्राम में विजय के लिए इनका बाह्य वातावरण के अनुकूल बनना अत्यावश्यक है। ऐसे अनुकूलन में प्रकृति भी सहायक होती है, परन्तु जो जीव ऐसा नहीं कर पाते वह जीवन संग्राम में पराजय को प्राप्त होकर सृष्टि से बाहर फेंक दिये जाते हैं। क्योंकि जीवन संग्राम में योग्यता ही विजयलक्ष्मी के नाम से सिद्ध है।

विकासवाद—आधुनिक सेन्द्रिय जगत के विकास का सिद्धान्त एक अंग्रेज शास्त्रज्ञ डार्विन के नाम से सम्बन्धित है। इसके अनुसार सेन्द्रिय जगत का आरम्भ किसी बड़े सादे जीव से माना जाता है। परन्तु यह नहीं बताया गया कि ऐसा सादा जीव कहां से आया ? हां मान लो कि यह किसी प्रकार से अनुकूल वातावरण के होने पर सृष्टि के आरम्भ में कहीं से आ टपका तो फिर इस शास्त्रज्ञ का कहना है कि भूख-प्यास के कारण इसे सक्रिय होना पड़ा। बदलते हुए वातावरण के अन्दर जब खाद्य-पदार्थों की कमी होने लगी तो यह जीवन संग्राम में उतरा। बाह्य वातावरण के अनुकूल बनने के लिए इसके शरीर की बनावट में अकस्मात् अन्तर होने लगे। कुछ अवयव बढ़े या कोई और तबदीली हुई। अगर यह परिवर्तन जीव को योग्यता प्रदान कर सकें, तो यह बलिष्ठातिजीवन के सिद्धांत अनुसार एक नई जाति का मूलजीव बनकर पृथ्वी पर विचरने लगा, नहीं तो यह सदा के लिए अव्यक्त हो गया। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जीवों के शरीरों में शनैः-शनै जो अकस्मात् परिवर्तन होते हैं इनका कोई कारण नहीं हुआ करता। जीवन का स्वभाव ही समझा जाता है। अगर ऐसी तबदीली जीव को बदले हुए वातावरण के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनुकूल बना देती है तो यह बलिष्ठ होकर जीवन के संग्राम में विजयी होता हुआ एक नई जाति का तत्त्व-जीव हो जाता है। इसी प्रकार जीवों के शरीरों में विभिन्नता होकर भिन्न-भिन्न जातियां बनती चली आ रही हैं। इस सिद्धांत के अनुसार यह विचित्र प्राणी-समष्टि एक ही मूल-जीव का विकास है। इस पक्ष में जो एक बड़ा उदाहरण दिया जाता है, वह यह कि अगर इस जीव-जगत के सब जीव-जन्तु इकट्ठे करके पंक्ति में इस प्रकार क्रमशः खड़े कर दिए जावें कि बनावट में सबसे सादा पहले और सबसे दुर्गम गम्भीर शरीर वाला अन्त में तो आप भली-भांति देख सकोगे, कि साथ-साथ खड़े जीवों में कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। हां इस पंक्ति में एक-दूसरे से दूर खड़े जीवों में अन्तर दूरी पर निर्भर है। जितनी दूरी अधिक होगी, उतना ही अन्तर अधिक होगा। इससे यह सिद्ध किया जाता है कि शरीरों में अन्तर दीर्घकालीन है। न्यून-से-न्यून अन्तर के लिए लाखों वर्ष चाहिएं। यही कारण है कि मनुष्य को ऐसे अन्तर ज्ञात नहीं होते। एक सादे जीव के अवतीर्ण से लेकर मनुष्य शरीर के बनने तक कोई दो अरब वर्ष की आवश्यकता समझी जाती है। परन्तु जीव-विज्ञान के विशेषज्ञ ऐसे विकास के समर्थन में कई एक कठिनाइयां देखते हैं। जीवों का क्रमशः अध्ययन करते हुए यह देखा गया है, शरीर के कई अवयव उद्भव हो गए, किन्तु इनके विकास के लिए कोई प्रारंभिक संकेतिक अंश नहीं मिलता। इससे प्रतीत होता है कि शायद उनका तत्कालीन उद्भव हो गया होगा। ऐसी बातों को कुछ अधिक समझने के लिए जीवों का कुछ संक्षिप्त वृत्तांत आपके सामने रखते हैं जिससे आप स्वयं ही निर्णय कर सकेंगे कि जीवों की जातियों का उद्भव हुआ या विकास।

पृथिवी का आरम्भिक रूप तपते हुए गैसीय पदार्थों के गोले का है। इसके ठण्डे होने पर जब यह वासयोग्य हुआ, तो इसके पृष्ठ पर प्रथम दृश्य जलप्लावन का था। इसलिए प्रथम सृष्टि भी जलचरों की ही हो सकती है, और पर्यवेक्षों द्वारा ऐसा ही जान पड़ता है। इसलिए हम पहले ज़ल जीवों का अध्ययन करते हैं, अर्थात् समुद्री जीवों का।

एक कोटि के जीव (अमीवा)—सब जीवों में यह सरलतम जीव है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जैसा (चित्र ६A) में दिखाया गया है, यह केवल जीव द्रव्य की एक बूंद-सी है। न इसका सिर है और न पैर। हां पानी में बहता हुआ अगर कोई खाद्य पदार्थ इसको टकरा जावें, तो यह झट जान लेता है कि यह खाने योग्य पदार्थ है, और उसी स्थान से उसे ग्रहण कर लेता है। इससे जान पड़ता है कि इसके चारों ओर कोई त्वचा नहीं है। इसका आगम कहां से अथवा किस प्रकार हुआ इसका निर्णय अभी तक नहीं हो सका। हां यह डार्विन के विकासवाद का तत्त्व जीव माना जाता है। इस श्रेणी में और भी बहुत से जीव हैं। इनमें से एक इसी चित्र में (B) स्थान पर दिखाया गया है। यह एक कोटि का जीव होता हुआ भी इसका मुख-छिद्र एक स्थान पर है, और इसके शरीर पर रोयें भी स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। इन रोओं की सहायता से भोज्य पदार्थ को यह अपने मुख-छिद्र में ला सकता है। भोजन का प्रबन्ध पहले से अच्छा है। एक कोटि के कुछ जीव ऐसे भी हैं, जिनके शरीरों पर पथरीला परत-सा चढ़ा रहता है। इनके उपनिवेश होते हैं। एक स्थान पर इकट्ठे रहते हैं। वहीं मरते हैं, जिससे दीर्घ समय के पश्चात् इन मरे हुए शरीरों से चट्टानें बन जाती हैं, और टापुओं के रूप में समुद्र से उभर पड़ते हैं, कैसी विचित्र सृष्टि है। ऐसे जीव पानी में घुले हुए पौधों के कणों को खाकर पत्थर जैसे पदार्थों को बनाते हैं। क्या खूब है कि पांच तत्त्व के बने हुए जीवित शरीर का जीव द्रव एक मरे हुए शरीर के जीव द्रव्य को खाकर इसके भौतिक तत्त्वों को अलग करके पत्थर जैसे कठोर

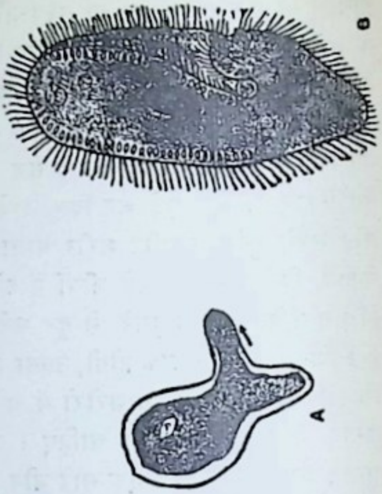

चित्र ६
एक कोट के जीव
(A) अमीवा (B) सीलिटा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पदार्थों को बनाकर अपने शरीर की रक्षा करता है। जीवन के ऐसे यंत्र को अभी तक कोई समझ नहीं पाया। परन्तु जीवन ऐसे सरल और सादे शरीर से सन्तुष्ट नहीं। एक ही कोष्ठक से अपने सब काम करने से यह कुछ उत्कृष्ट नहीं हो सकता। इसलिए इसके अगले जीव गृहों की रचना में कई प्रकार के कोष्ठकों को काम में लाया गया, और अलग-अलग कोष्ठकों से अलग-अलग काम लेने की भी योजना बनाई गई। ऐसे आरम्भिक जीव भी समुद्री सम्पत्ति हैं, और इनकी रचना भी एक कोष्ठक के जीवों के समकालीन जान पड़ती है।

समुद्री जीव—चित्र ७, सिलूरीयन काल में समुद्र के तललोक का दृश्य है। सिलूरीयन काल को केवल ३५ करोड़ वर्ष ही पुराना माना जाता है। इस चित्र में तीन प्रकार के जीव दिखाए गए हैं :—एक तैरने वाले, दूसरे रेंगने वाले और तीसरे तल पर जमे हुए जीव। इसमें जो पौधे या झाड़ियां-सी दिख रही हैं, यह वास्तव में कई प्रकार के जीव हैं। एनेमोन, मूंगे और कई प्रकार के घोंघे समुद्र को झाड़-झंखाड़ बना देते हैं। इनमें कुछ फूलों की तरह जान पड़ते है। ऐसे जीवों को पुष्प जीव या कुसुमाभ अर्थात् फूलों की आभा वाला भी कहते हैं। कुछ कांटेदार पीठ वाले होने के कारण शल्यपृष्ठ कहे जाते हैं। परन्तु कुछ बड़े लाभदायक भी होते हैं। सिप्पी और मोती बनाने वाले घोंघे इसी प्रकार के कुछ जीव हैं। भला आपको मालूम है कि घोंघे मोती क्यों और क्यों कर बनाते हैं ? अगर

चित्र ७

५० करोड़ वर्ष पुराना समुद्री तल।
यह झाड़-झंखाड़ नहीं सब जीव हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

नहीं जानते तो जानिए :—

मोती बनाने वाले घोंघों का शरीर बड़ा मुलायम होता है। यह इकट्ठे होकर एक स्थान पर जमे रहते हैं, और इनके उपनिवेश झाड़ियों से जान पड़ते हैं। खाने-पीने के लिए इन्हें कहीं जाना नहीं पड़ता। जो कोई भी भोज्य कण इनके मुख-छिद्र के पास से गुज़रा, इनका ग्रास बन गया। परन्तु जब इनकी संख्या अत्यधिक हो जाती है, तो हरएक को भोजन नहीं मिल सकता। भूख से व्याकुल होकर फिर यह कुछ रेंगना शुरू कर देते हैं, इससे इनके अन्दर जब कोई रेत का कण जा घुसता है, तो यह इसके कोमल शरीर को रेतने लग जाता है। इससे इसको बड़ा कष्ट हो जाता है। इस दुःख से बचने के लिए यह शरीर में से एक लसदार द्रव को निकाल इस कण के चारों ओर लपेट देता है। जब यह कठोर हो जाता है, तो यही मोती का रूप धारण कर लेता है। इनमें कुछ जीव शिकार करने के लिए बिजली की तरंगें भी पैदा करते हैं, जिससे समुद्र तल, उनको आकाश के सदृश जान पड़ता है।

तैरते हुए जीव भी इस चित्र में भली-भांति दिख रहे हैं। जिनमें एक साधारण किस्म की स्क्विड जाति की मछली भी है, जो ५० से ६० फुट तक लम्बी होती है। इसमें विशेष बात जो ध्यान देने योग्य है, वह आंख है। यह इतनी ही पूर्ण है, जितनी कि हमारी, और भी चक्षुष्मान् जीव जो इससे पहले पाए गये हैं, पूर्ण चक्षुर्-इंद्रिय युक्त ही मिलते हैं। ऐसा जान पड़ता है, कि चक्षु का डार्विन सिद्धांत द्वारा विकास ही न हुआ हो, किन्तु इसका उद्‌भव प्रथम चक्षुष्मान जीव में तत्काल ही हो गया हो। ऐसी क्रिया डार्विन के विकासवाद को हिला देती है। क्योंकि कहा जा सकता है, कि अगर आंख एकदम पैदा की जा सकती है, तो हर जाति के प्रथम शरीर के बनाए जाने में या बनने में क्या अड़चन हो सकती है? कुछ नहीं।

बहु कोटि वाले जीव—प्रकृति ने बहु कोटि वाले शरीरों में हरएक कोष्ठक को अपना-अपना काम निश्चित करके जीवन को कुछ यज्ञमय बना दिया है। भिन्न-भिन्न कोष्ठकों को किसी उत्तम कार्य पद्धति अनुसार भिन्न-भिन्न कार्यों पर नियुक्त करके जीवन को कुछ उत्कृष्ट भी

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कर दिया है । इस श्रेणी में सबसे सरल जीव जो है, उनमें पाचन स्थान है । इससे अगली 'पेट वाली' (body cavaty) जाति है इस जाति के जीवों में कुछ स्थान खाली रखा जाता है, जिसमें एक पाचन नाली और नस नाड़ियां भी रहती हैं और जिनके कारण भोजन का पाचन कुछ सुगमता से होने लगता है । अच्छे पाचन के कारण इनसे कइयों के शरीर दैत्याकार और बलिष्ठ भी हो जाते हैं । फिर इनमें कुछेक के बाह्य अवयव भी निखर पड़ते हैं और ऐसा जान पड़ता है, कि इनके अंग शरीर के साथ जोड़ दिये हों । इसलिए इनको 'संघि पाद' की श्रेणी के जीव कहा जाता है । पाचन की अच्छी व्यवस्था के हो जाने पर अब यह काफी लम्बे-चौड़े शरीरों वाले भी हो जाते हैं । आठ भुजाओं वाले कैकड़े कोई ३० से ५० फुट लम्बे होते हैं, और इतने बलवान् होते हैं कि अपने पांवों और बाहुओं से जहाजों को काफी हानि पहुंचा सकते हैं । इनके आहार के लिए इनको युद्धोपकरणों से और प्रतिरक्षा के लिए रक्षा भूषणों से भी सज्जित किया जाता है ।

उपरिवर्णित समुद्री जीव केवल उस समय के हैं, जबकि पृथ्वी पर अभी जलप्लावन ही चल रहा था और कोई दृढ़ सूखा स्थल समुद्र से उभरा नहीं था । इस वक्त तक जीवन की उत्क्रृष्टता के लिए जिन शरीरों की रचना हुई उसमें इस बात का ही ध्यान रखा गया, कि भूख-प्यास की संतुष्टि हो : इसके लिए बहु-कोष्ठकों के शरीर बनाए गये । हर कोष्ठक के लिए कोई विशेष कार्य नियुक्त कर दिया । फिर थैली आकार की एक जाति उत्पन्न हो गई, जिसको 'अन्तर गुही' कहते हैं और जिनके शरीरों में खाये-पीये पदार्थों के लिए एक विशेष स्थान होता है । फिर जैसा पहले वर्णन किया गया है, पाचन नली वाले जन्तु घड़े गये । इसके पश्चात् कठोर पीठ वाले । आत्मरक्षा और शिकार आदि के लिए इनको कई प्रकार के उपकरण भी दिये गये । इनके अतिरिक्त इस वक्त समुद्र में कई प्रकार के अन्य जीव भी पाए जाते हैं, जिनमें कोई लगभग तीस हज़ार मछली की जातियां ऐसी हैं, जिनमें हड्डी पाई जाती है, और इनकी तीस ऐसी भी जातियां हैं जो बिना हड्डी के हैं । ह्वेल मछली कोई तीस मन से कम नहीं होती इसके अन्दर वसा (चरबी वाले पदार्थ) की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक तह जमी होती है जो एक फुट तक मोटी हो सकती है। इससे निकला हुआ तेल बड़ा मूल्यवान होता है। इसकी हड्डी भी बड़ी कीमती होती है। कई देशों में इसका व्यापार करोड़ों रुपयों का होता है। इस वक्त समुद्र में और भी कई प्रकार के भयानक जीव पाए जाते हैं। परन्तु समुद्र में इनका आगमन कुछ स्थलचरों के बाद ही माना जाता है। विकासवाद के अनुसार यह कहा जाता है, कि जब स्थलचर अत्यधिक हो गये, जिसके कारण पेट-पूजा का निर्वाह होना कठिन हो गया, तो कुछ स्थलचरों के शरीरों में फिर ऐसा परिवर्तन होना आरम्भ हो गया, कि फिर से वह पानी में रहने के योग्य हो गये : वास्तव में कुदरत (ईश्वरी-शक्ति) की यह एक अजीब कहानी है, जो मनुष्य की समझ से परे है।

स्थलचर—अब हम कुछ उन जीवों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे, जो स्थलचर कहलाते हैं केवल इस अभिप्राय से कि आप इस बात को समझ सकें, कि प्राकृतिक शक्तियां कैसे नियमबद्ध हो रही हैं, जिसके कारण जीव हर वातावरण में रहता हुआ, न केवल अपनी भूख-प्यास से ही मुक्त हो सकता है या अपनी रक्षा ही कर सकता है, अपितु अपनी जाति या नस्ल का स्थायित्व भी बनाए रखने में समर्थ होता जाता है।

सलिल-स्थलचर (Amphibians)—यह तो मानना ही पड़ेगा, कि पहला स्थलचर जीव वही हो सकता है, जो पानी में भी रह सके, और खुश्की पर भी। ऐसा जीव मेंढ़क है। जमीन पर यह रेंगता नहीं किन्तु उछल सकता है। पानी से बाहर रहता हुआ भी यह अधिक समय तक पानी के बिना नहीं रह सकता। खुश्क साली में बड़ा दुःखी होता है। फिर भी खुश्की पर जीवित रहने के लिए इसके पास एक ऐसा प्रबन्ध है, कि अकाल में यह अपना पेट पानी से भरकर मट्टी में घुस जाता है और बिना खाये-पिये दो-चार महीने कष्ट से काट लेता है। अगर पानी इसके पेट में न हो, तो यह जीवित नहीं रह सकता। ऐसा मट्टी में दबा हुआ कोई मेंढक अगर आपको मिल जावे, तो इसको उलटा करके देखो, पानी मुंह के रस्ते निकल जाएगा, और फिर तत्काल ही इसका जीवन भी समाप्त हो जाएगा।

मेंढक जाति के जीवों में जो एक नया अवयव उत्पन्न हो गया है,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वह है फेफड़ा या फुप्फुस। फेफड़े का काम है रक्त के गंदे भाग को जलाना, जिससे रक्त शुद्ध हो जावे। शुद्ध रक्त जीवन का आधार है। जलचरों को भी प्राणवायु की आवश्यकता है। मछलियों के गलफड़े होते हैं। गलफड़े क्या हैं ? एक झिल्लीनुमा परदा होता है, जिसमें से समुद्र में से कुछ मीठा पानी और इसमें मिली-जुली वायु शरीर में जा सकती है। ऐसी थोड़ी वायु ही ऐसे जीवों के लिए पर्याप्त हो जाती है। कारण यह कि, पानी में रहने वाले जीवों को इधर-उधर जाने में या शिकार आदि के लिए कुछ श्रम नहीं करना पड़ता क्योंकि पानी में जीवों का गुरुत्व अर्थात् भारीपन नहीं होता। एक ह्वेल मछली, जो एक टन भारी होती है खुश्की पर एक मिनिट के लिए कोई पन्द्रह या सोलह फुट अगर उठे, तो इसके लिए कोई एक अश्व-शक्ति की आवश्यकता होती है, जिसके लिए इसको काफी खुराक चाहिए, काफी रक्त और फिर रक्त की शुद्धि के लिए पर्याप्त मात्रा में प्राण वायु भी। परन्तु पानी में यह एक मिनिट में बहुत दूर तक नीचे या ऊपर उठ सकती है। शिकार के पीछे खूब भाग भी सकती है, कारण यही कि, जैसा ऊपर लिखा है पानी में इसका गुरुत्व नहीं होता, और जो कुछ काम इसे करना भी पड़ता है, वह होता है, केवल पानी के चीरने में। पानी को चीरने में पानी के अणु परस्पर रगड़ खाते हैं, जो पानी या किसी भी द्रव की श्यानता (viscosity) का कारण हुआ करता है, और जिसके कारण द्रवों के चीरने में या इनके बहने में कुछ काम भी करना पड़ता है, और इसीके हेतु कुछ क्षमता की भी आवश्यकता हो सकती है। फिर मछलियों का आकार भी तो गरुड़-नुमा (stream lined) होता है, इनको और भी कम शक्ति की ज़रूरत होती है। इसलिए पानी में रहने वाले जीवों को फेफड़ों की जरूरत नहीं होती। स्थलचरों को कोई ऐसी सुगमता प्राप्त नहीं। इनको अपना बोझ उठाना ही पड़ता है। सवा मन भारी एक युवक जब एक मिनिट में दस बार एक-एक फुट ऊपर उछलता है, तो इसके शरीर रूपी यंत्र की क्षमता एक अश्व-शक्ति के तीसवें भाग के बराबर होनी चाहिए। शरीर में इतनी क्षमता उत्पन्न हो सकती है, परन्तु कुछ काल के लिए। निरंतर नहीं। कारण यह कि जीवन एक क्रिया है, शिथिलता नहीं, प्रवृत्ति का मार्ग है,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निवृत्ति का नहीं। व्यक्तिगत रूप में भी यह सक्रिय है, निष्क्रिय नहीं। इसलिए केवल जीवन की क्रिया को ही स्थिर रखने के लिए फेफड़ों को चौबीस घंटों में कोई ३ मन से ५ मन तक रक्त को शुद्ध करना पड़ता है। इसके लिए हृदय को कोई एक मिनिट में सत्तर बार थोड़ा-थोड़ा रक्त (कोई एक घन सैंटीमीटर एक बार) फेफड़ों के हर भाग में बिखेरना होता है, जहां वायु के सम्पर्क से इसे शुद्ध किया जाता है और फिर हृदय के ही रास्ते यह सारे शरीर में घूमकर इसके अवयवों की मरम्मत कर इसको कार्य करने के योग्य बना देता है। बैठने वाले और दिल दिमाग़ से ही काम करने वालों के फेफड़े पूर्णतः काम नहीं करते, इसलिए ऐसे मनुष्य कमज़ोर और रुग्ण हुआ करते हैं। उछलने, खेलने-कूदने से या किसी प्रकार के शारीरिक परिश्रम से रक्त अधिक मात्रा में फेफड़ों में आता है। इसके लिए वायु भी काफी मात्रा में अन्दर जानी चाहिए जिसके कारण सांस भी तीव्रता से चलने लगता है। इससे ऊष्मा भी तेजी से पैदा होने लगती है क्योंकि काम करने के लिए भोजन से जो ऊर्जा (energy) का उत्पादन होता है, उसका अंतिम रूपांतर गर्मी या ऊष्मा ही होता है। उच्चतम जीव-गृहों में जीवन की क्रिया एक ताप पर ही ठीक हो सकती है, इसलिए इस प्रकार ऊष्मा से बढ़े हुए तापमान को कम करने के लिए शरीरों में कुछ ऐसा प्रबन्ध किया जाता है, जिससे कि इनका तापमान ठीक डिगरी पर रहे। मनुष्य के शरीर में त्वचा के नीचे पसीने की ग्रंथियां होती हैं। जब ताप बढ़ जाता है, तो यह ग्रंथियां अपना काम आरम्भ कर देती हैं। आदमी पसीना-पसीना हो जाता है। और जब यह वाष्प बनकर उड़ता है, तो इसके लिए काफी गरमी चाहिए। यह शरीर से ही ले ली जाती है, जिससे इसका तापमान (Temperature) ठीक रहता है। कुत्ता अपनी गरमी को कम करने के लिए मुंह खोलकर बैठ जाता है, और हांक-हांककर अधिक ताप को घटा लेता है। इस श्रेणी में दूध पिलाने वाले जीव चाहे वह स्थलचर हों, नभचर अथवा जलचर सबके सब शामिल हैं।

परन्तु स्थल पर रहने वाले जीवों के लिए अब दो बड़ी कठिनाइयां उपस्थित हो गईं। एक तो भूख-प्यास के लिए तीक्ष्ण संग्राम, और दूसरे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तीव्रता से बदलती परिस्थितियां, समुद्र की अपेक्षा स्थल पर वातावरण का बदलना अति शीघ्रता से होता है। खाद्य पदार्थों की कभी न्यूनता और कभी अधिकता भी तेज़ी से होती रहती है। इसलिए जीवन संग्राम का बवंडर भी बड़ी तीक्ष्णता से उमड़ा रहता है। एक जीव दूसरे को अपना भोज्य पदार्थ समझता है। एक बलिष्ठ जाति किसी दूसरी जाति को अपना ग्रास ही समझती है। भूख-प्यास से मुक्त होना ज़रूरी है। कमज़ोर से कमज़ोर जाति का दूसरी जाति के डिंबों या आरम्भिक अवस्था के भ्रूणों को हड़प कर जाना कोई कठिन नहीं। परन्तु इससे किसी जाति की नस्ल का विकास होना या बढ़ना अति कठिन है। इसलिए ऐसे संग्राम में विजय प्राप्ति के लिए कुछ स्थलचरों में एक और अवयव को बढ़ाना ज़रूरी समझा गया। इनके अन्दर 'अपरा' या जरायुमूल को बढ़ाया गया। इसमें जननी जन्य को तब तक अपने अन्दर रखती है, जब तक कि भ्रूण ऐसी योग्यता प्राप्त नहीं कर लेते, कि बाह्य वातावरण के आक्रमणों का भली-भांति सामना कर सकें। कंगारू एक ऐसा जीव है, जिसके भ्रूण पूरी सामर्थ्य के होने से पहले ही बाहर आ जाते हैं। ऐसी अवस्था में इनको सुरक्षित रखने के लिए शरीर के बाहर एक थैली आकार बच्चे-दानी होती है, जिसमें अधूरे जन्य को फिर कुछ समय तक अन्दर रखा जाता जाता है। क्यों ? क्योंकि हर जाति को सुरक्षित रखना उस उत्पादक शक्ति का नियम है। यह ठीक है, कि कुछ अतिकाय स्थल-चर भी हो गुजरे हैं, जो बड़े शक्तिशाली और भयानक भी हो सकते हैं। और शायद उस समय उनका प्राणी जगत में साम्राज्य भी हो। परन्तु इस समय उनका नाम निशान भी नहीं। इनमें से एक की जाँघ की हड्डी प्रसारीभूत (Fossilised) हुई जीवावशेष के रूप में मिली है, जो छः फुट लम्बी है। इससे अनुमान लगाया जाता है, कि यह जीव कोई ६० फुट लम्बा और २० फुट ऊँचा होगा। परन्तु यह इस वक्त नहीं है। आया, और चला गया। जीवन के संग्राम में यह पूर्ण उतरा नहीं जिससे ऐसा जान पड़ता है, कि संसार की कशमकश में बलिष्ठजाति जीवन का नियम न हो, योग्यजाति जीवन हो। अर्थात संग्राम में अतिजीवन के लिए अतिकाय का पाशविक बल नहीं अपितु वातावरण के अनुकूल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

होना ही है ?

हमारे विषय के सम्बन्ध में उपयुक्त जीवों के वर्णन का तात्पर्य यह है कि समय-समय पर जीवों की जातियों का उद्गम होता हुआ चला आ रहा है, और इनके विकास की जो आधारशिला है, वह है शरीर रूपी यंत्र में एक-एक पुरजे (अवयव) को बढ़ाकर इसको सोलह कला संपूर्ण करना। शरीरों की कलाओं के अनुसार अगर सब जीवों को अलग-अलग जातियों में बाँट दिया जावें, तो कुल नौ जातियाँ बनती

जाति के नाम Name of phylun	नाभकीय कोष्टक Nucleated cell	पाचन तत्व Digesstive cavity	शारीरिक खोल Body cavity	सिर Becklone Head	जबड़े और अंग Jaws limb	हड्डी Bone	फेंफड़े Lungs	अपरा Ammion	स्थिर तापमान TempRegulator
Protozoa एक कोट के जीव	X								
Coelantra अन्तर गुही	X	X							
Coelantra Co lomates मुंगा जाति	X	X	X						
Cyclotomes संधि पाद	X	X	X	X					
Cartilaginous fish बिना हडडी मछली	X	X	X	X	X				
Bone-fish मत्स्य	X	X	X	X	X	X			
Amphibians मेंढक	X	X	X	X	X	X	X		
Reptiles उरंगम	X	X	X	X	X	X	X	X	
Mammals & birds पशु-पक्षी	X	X	X	X	X	X	X	X	X

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं और सृष्टि में देखा गया है, कि इनका आगमन होना एक दूसरे के बाद क्रमशः हुआ है ।

उपर्युक्त विवरण निम्नांकित सूचि की बायीं ओर जीवों की जातियों के नाम हैं और उपरिस्तर में शरीर में उत्पन्न हुए अवयवों के । चरखी के निशान से यह पता चलता है, कि किसी श्रेणी वाले जीवों के कोई अंग नहीं । दूध पिलाने वाले जीवों की श्रेणी के सामने सब खानों में चरखियाँ दी गई हैं, जिससे स्पष्ट हो जाता है, कि इनमें सब अवयव मौजूद हैं । इस सूची से स्पष्ट है कि जीवन शनैः-शनैः कैसे एक कोष्ट वाले जीव से उत्कृष्ट होता हुआ किसी बड़ी सिद्ध योजना के अनुसार स्तनपायी या मैमल (मनुष्य सहित) विकसित हो गया है ।

क्या ऐसी सृष्टि का विकास सृष्टि कर्ता के 'तप' का स्पष्ट परिणाम नहीं ? बिना किसी प्रसिद्ध योजना के ऐसी नियमबद्ध उत्कृष्ट सृष्टि का उद्भव कैसे हो सकता है ? ऐसे प्रश्नों का उत्तर कुछ सीमा तक मन की पूर्वधारणान्वित स्थिति पर ही निर्भर है,

चित्र १३ कंकाल

दायें से बायें

गिब्बन, चिम्पांजी, ओरंग, गोरिल्ला, मनुष्य ।

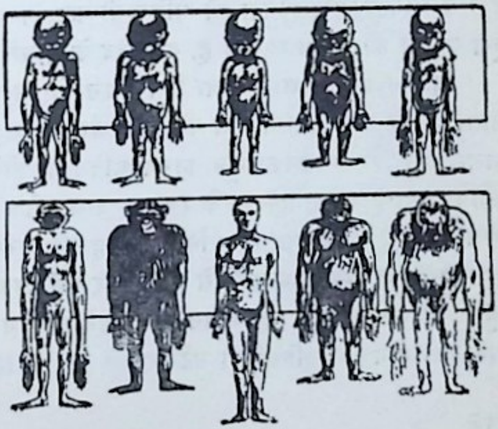

चित्र १२

ऊपर बच्चे नीचे जवान

गिब्बन, चम्पांजी, मनुष्य, गोरिल्ला ओरंग ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नृवंश-विज्ञान—८

संसार रूपी वृक्ष—पिछले अध्यायों में जीवन का विकास क्रमशः जीवों की नौ जातियों में दिखाया गया है। उत्पत्ति की इस उद्विकासी क्रिया को समझने के लिए जीव-शास्त्रज्ञ इसका सादृश्य किसी एक वृक्ष से करते हैं। परन्तु ऐसा व्यवहार केवल आधुनिक ही नहीं प्राचीन तत्त्व-वेत्ता भी जीवन की तुलना वृक्ष ही से किया करते थे। उदाहरणार्थ आप गीता के पन्द्रहवें अध्याय के कुछ प्रथम श्लोकों की ओर ध्यान दें, तो आपको जीवन की तुलना एक उलटे वृक्ष से की हुई स्पष्ट दिखाई देगी। इसका प्रथम श्लोक इस प्रकार है :—

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥

ऊपर जिसका मूल है, नीचे जिसकी शाखाएं हैं, और वेद जिसके पत्ते हैं, ऐसे अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष को अविनाशी कहा गया है। इस संसार रूप वृक्ष को जो कोई ऐसा जानता है, वही वेद के जानने वाला ज्ञानी भी है।

श्वः का अर्थ है, आने वाला दिन। इसलिए अश्वत्थ का अर्थ समझा जाता है, वह जो आगामी कल को आज जैसा न रहे, अर्थात् जो बदलने वाला हो। परन्तु इसका मूल कारण अविनाशी होने से यह अविनाशी बताया गया है, हां उद्विकास के स्वभाव वाला होने के कारण परिवर्तन-शील जरूर है, और इस परिवर्तन के प्रवाह की परम्परा ऐसी है जिससे यह अपनी आरम्भिक अवस्था से धीरे-धीरे पूर्ण विकास की अवस्था को पहुंच सके और जिससे यह जीवन वृक्ष अपने अन्तिम विकास में ज्ञान या ज्ञाननिष्ठ मानव में पुष्पित हो उठे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आधुनिक जीव-शास्त्रज्ञ भी जीवन के विकास को वृक्ष के ही सादृश्य से वर्णन करते हैं। परन्तु यह ऐसे शास्त्रज्ञ इसके मूल से अनभिज्ञ होने के कारण केवल इसके प्रत्यक्ष भाग को ही ज्ञातव्य मानते हैं। इस वृक्ष की शाखाएं उपजातियां मानी जाती हैं। कोई शाखा किस समय इस वृक्ष से फूट निकली? इसकी जानकारी तल-छटी चट्टानों में मिले हुए जीवावशेषों से होती है, ऐसी खोज से पता चलता है कि कुछ शाखाएं ऐसी हैं, जो सृष्टि के आरम्भिक काल में ही फूटकर आज तक फूलती-फलती चली आ रही हैं, इनमें से अनेकों की कुछ ऐसी उपशाखाएं भी निकलीं, जिसके जीवाविशेष किसी निचली शिलाओं में तो मिलते हैं, परन्तु ऊपरी चट्टानों में नहीं। इससे जान पड़ता है कि कई एक जीव उत्पन्न हुए, जो कुछ समय के बाद सृष्टि से उठा लिए गए। इनमें से एक ऐसी शाखा भी हैं जो ऊपर को ही उठती जाती हैं, और जिसकी उपशाखाएं कई प्रकार के उत्कृष्ट जीव हैं। इसी शाखा की एक उपशाखा मनुष्य जाति है, इसका नाम नृ-पशु शाखा (anthropoid stem) अर्थात 'मनुष्य रूपी पशुओं को विकास पद्धति है।' (चित्र ८) उद्विकासित वृक्ष की एक ऊपरी शाखा है, इसके सबसे नीचे दो शाखाएं, जो जगह की न्यूनता के कारण अधूरी दिखाई गई हैं, दो प्रकार के बन्दरों के आगमन का समय है, जो बहुत पुराना है। इसके ऊपर की शाखा छोटे-छोटे नृपशुओं की है। परन्तु इसकी साधारण शाखा बड़े-बड़े नृपशुओं (great anthropoid primat) की ओर बढ़ती जा रही है। चित्र में दी हुई मिति के अनुसार कोई तेरह लाख वर्ष की बात है कि यह

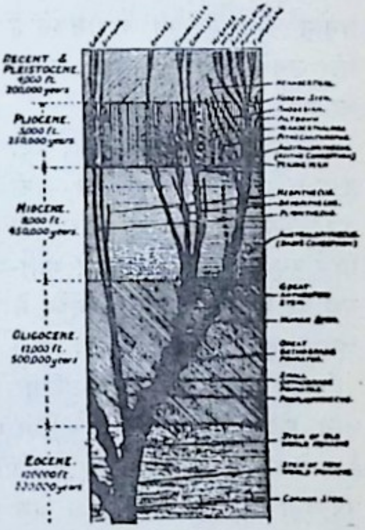

चित्र ८

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शाखा दो शाखाओं में बंट गई इनमें से एक 'मानुष' की ओर दूसरी वन-मानुष की ओर चल पड़ी। इन दोनों की उपशाखाएं भी दिखाई गई हैं मानव या मानुष शाखा से समय-समय पर उत्पन्न हुए कई प्रकार के मनुष्य माने जाते हैं, जैसे जावा मैन (Java man) पिल्टडौन मैन (Piltdown man) निएनडिरथन मैन (neanderthan man) आदि। वन-मानुषों की इस वक्त चार जातिएं उपलब्ध हैं :—गोरिल्ला, चम्पांजी, ओरंग और गिब्बन। इनमें और मनुष्य में कितना सादृश्य है, इसकी जानकारी के लिए इन वन-मानुषों का कुछ संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

वन-मानुष :—यह बड़े भयानक जंगली जीव हैं, जो बन्दरों जैसे जान पड़ते हैं, परन्तु इनकी दुम नहीं होती। दूर से देखने पर यह मनुष्य की प्रतिमूर्ति ही जान पड़ते हैं। कुछ इनमें बन्दरों के समान सिखाए भी जा सकते हैं और उनसे अधिक सभ्य भी बनाए जा सकते हैं।

चित्र ९

(चित्र ९) में जंगल में खड़ा हुआ एक नर गोरिल्ला है। जरा ऊपर एक मादा अपने बच्चे को लिए हुए बैठी है। यह बड़ा भयानक जानवर है, परन्तु मनुष्य से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। गोरिल्ली तो बिलकुल एक बुढ़िया जान पड़ती है। (चित्र १०) में एक पालतू चिम्पांजी दिखाया गया है, जो प्याले को पकड़े हुए हैं, और चमचे के साथ चाय पी रहा है। यह बड़ा सभ्य हो सकता है। मेज पर बैठकर एक सभ्य पुरुष के समान भोजन कर सकता है। (चित्र ११) में एक चिम्पांजी अपने रुग्ण मित्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की सेवा में लगा हुआ है। गिब्बन जब खड़ा होता है, तो पूर्णतः मनुष्य दिखाई देता है। अन्तर केवल इतना होता है, कि इसका सिर जरा-सा आगे की ओर झुका होता है, (देखो चित्र १२, १३ पृष्ठ १२१) और हाथ अधिक लम्बे पावों तक पहुँचते हैं। ऐसे ओरंग एक लम्बे हाथों वाला एक बूढ़ा पेटू ही जान पड़ता है। इन वन-मानसों की मनुष्य के साथ तुलना करने के लिए आप चित्र १२ को देखिये। इस चित्र के निचले भाग में प्रौढ़ अवस्था वाले वनमानुस हैं। बीच में आदमी है। इसी चित्र के ऊपरी भाग में क्रमशः इन के नन्हे हैं। किन में आपको

चित्र १०

चित्र ११

अधिक समानता जान पड़ती है? उत्तर आपका स्पष्ट है, कि इन के बच्चों में। इनके अंतर को कुछ और समझने के लिए इनके धड़ों टांगों और हाथों की परस्पर तुलना कीजिए। इसके अतिरिक्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चित्र १३ में इनके कंकालों (ठठरियों) को भी देखिये। इन ठठरियों में जो न्यूनाधिक अंतर है, वह इनकी शक्ल-सूरत में ठीक समाया हुआ है, इनके शिशुओं में कुछ कम है। और शायद इनके भ्रूणों में कुछ और भी कम हो।

क्या आप समझ गये, कि इस सृष्टि में जीवों की जातियां कैसे प्रकट हो गयीं ? उपर्युक्त वार्ता से स्पष्ट है, कि जीवों की भिन्न-भिन्न जातियां परस्पर कितनी ही मिलती-जुलती क्यों न हो, उद्‌विकास वृक्ष की भिन्न-भिन्न शाखाएं ही हैं। साथ-साथ या दूर-दूर उगती हुई टहनियों का एक ही कारण तो हो सकता है, परन्तु वे एक दूसरे का कारण नहीं हो सकतीं। इसलिए मानुष और वन-मानुष जीवन के उद्‌विकासी घटना के दो अलग-अलग रुख ही हैं। इसको और समझने के लिए चित्र ८ को फिर ध्यानपूर्वक देखिए। कैसे हर एक शाखा इस समष्टि जीवन वृक्ष से किसी समय निकलकर युग-युगांतरों में पल्लवित होती हुई आज भी पुष्पित हो रही है। घटना प्रवाह एक बार उभर पड़ने पर फिर अपने रुख को नहीं बदलता। हां रुक सकता है, अर्थात योग्यता के कारण किसी विशेष जीवजाति का अतिजीवन (survival) न हो, परन्तु इसका किसी और जाति में परिवर्तन होना विकासवाद का विषय नहीं हो सकता।

उद्‌विकासी घटना प्रवाह—यह पहले बताया जा चुका है, कि प्रकृति की प्रयोगशाला में प्रकृति का रुख उच्चतर जीवों का विकास करना है। अब शायद आप पूछें कि ऐसे जीवों की क्या विशेषता है ? शरीर का कौन-सा भाग या अंग जीवों को उत्कृष्ट कर सकता है, या जीवन के संग्राम में इनको अतिजीवन प्रदान कर सकता है ? इसके संबन्ध में नृ-वंशविज्ञान का उत्तर है, कि मस्तिष्क। जितना ही किसी जीव का मस्तिष्क उत्तम होता है, उतनी ही उसकी उत्तमता मानी जाती है, मस्तिष्क की उत्तमत्ता इसकी समाई और इसकी बनावट पर निर्भर है। जानवरों के दिमाग की समाई बहुत कम होती है। ज्यों-ज्यों जीवन का विकास मनुष्य की ओर बढ़ता है, त्यों-त्यों मस्तिष्क की समाई बढ़ती जाती है, और इसकी रेखाएं भी अखरोट की तरह निखरती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जाती हैं। मनुष्य का दिमाग काफी बड़ा और गहरी रेखाओं वाला होता है। जब किसी जीव की खोपड़ी के टुकड़ों का अवशेष किसी चट्टान में मिलता है, तो उससे पूर्ण खोपड़ी के आयतन या समाई का अनुमान लगाया जाता है, और उसकी रेखाओं की ओर भी ध्यान दिया जाता है। और फिर इनसे निकाले हुए परिणामों से ही उस जीव को किसी जाति से संबंधित किया जाता है, अर्थात यह जीव क्या है पशु, नृपशु या केवल नृ है। नृवंश विज्ञान-पर्यनलोकनों द्वारा मानुष और वनमानुषों की खोपड़ियों की अधिक से अधिक जो समाई मानी गई है वह इस प्रकार है। समाई घन सेन्टीमीटरों में है।:—

(१) गोरिल्ला ६००, (२) तांग-एप ७००, (३) जावा मैंन ६००, (४) आदमी कम से कम ६५०, (५) पिलटडौन मैंन १३००, (६) आस्ट्रेलियाई आदिवासी १२५०, (७) आधुनिक सभ्य आदमी १४८०, (८) निअनडरथल मैंन १६२६।

आधुनिक आदमी की बड़ी से बड़ी खोपड़ी जो लिखित में आई है, वह है २०३० घनसैंटीमीटर है जो ईवन तुरजिनिव (IVAN Turgeneve) एक रूसी उपन्यासकार की थी। उपर्युक्त खोपड़ियों की समाइयों से यह स्पष्ट है कि उद्विकासी घटना का प्रवाह मस्तिष्क को ऐसा बनाना है, कि जीव अपने ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का प्रयोग समझकर अपनी रक्षा कर सके, भूख-प्यास से निवृत्ति पा सके और अपनी अन्येच्छाओं की पूर्ति भी कर सके, जिससे प्राणीजगत एक सुखमय हो जावे। परन्तु ऐसा उत्तम मस्तिष्क होने पर भी सुख की कामना करने वाले मनुष्य जैसे प्राणियों को भी यथार्थ ज्ञान की आवश्यकता है, जो सृष्टि के समझने से ही प्राप्त हो सकता है। इस लिए वेद का आदेश है:—

विष्णे: कर्माणि पश्यत, यतो व्रतानि पस्परो,
इन्द्रस्य युज्यः सखा। ऋग्वेद

कर्ता:—की कृतियों को देखो, उन्हीं का अनुकरण करो, क्योंकि आप की उत्कृष्ट स्थिति के यही सहायक हैं।

नृवंश सृष्टि:—मनुष्य का आगमन पृथ्वी पर कब हुआ? यह एक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बड़ा कठिन विषय है, परन्तु आकर्षक अथवा रोचक होने के कारण नृतत्त्व विज्ञान के विशेषज्ञ प्राचीन काल से ही इसकी गवेषणा में लगे हुए चले आ रहे हैं। आजकल भी मानव विज्ञान शास्त्री चट्टानों में, गुफाओं में या किसी अन्य विशेष स्थानों में किसी प्रसारीभूत हड्डी, दाँत आदि या तोड़ने-फोड़ने के पत्थर के बने हुए उपकरणों की खोज में लगे रहते हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों समय गुजरता जाता है, मानवाब्द पीछे ही पीछे हटता चला रहा है। उदाहरणार्थ चित्र ८ को फिर देखिये। इसके बाईं ओर क्रमशः तलछट शिलाएँ दी हुई हैं, जिनकी मोटाई अथवा लगभग आयु भी दे रखी है। इसके अनुसार नृपशु शाखा का उद्भव जैसा पहले कहा गया है, तेरह लाख वर्ष ही है, और नृ-शाखा का कोई एक लाख से कुछ अधिक समय जान पड़ता है।[1] परन्तु नवीन खोज के अनुसार नृ-शाखा को प्रकट हुए सत्तरह लाख और पचास सहस्र वर्ष हो गये हैं, और नृ-पशु शाखा को कोई लगभग तीन[2] करोड़ वर्ष।

भारतीय सृष्ट्यब्द :—इसके मानने में किसी को संदेह नहीं, कि भारतीय संस्कृति सबसे पुरानी है अर्थात् वह देश जो सबसे पहले सभ्य हुआ होगा, भारत ही माना जाता है, क्योंकि वेद सबसे पुराना ज्ञान माना जाता है और उसका प्रादुर्भाव भारत में ही हुआ। और इसीलिए भारतीय इस ज्ञान के न्यासी माने जाते हैं। यह ठीक है, कि इस ज्ञान की रक्षा भारत में कई सम्प्रदायों ने समय के अनुसार भिन्न-भिन्न विधियों से की, और अपने सिद्धान्तों की शिलान्यास जाने या अनजाने इसी ज्ञान पर किया। इस पुरानी संस्कृति के अनुसार धार्मिक कृतियों में एक संकल्प भी पढ़ा जाता है, जिसमें एक **सृष्टयब्द** का भी वर्णन

---

१. २, ३, ४, अप्रैल १९६५ को शिकागो में नृ-तत्त्व विज्ञान के शास्त्रियों और अन्य विशेषज्ञों की एक गोष्ठी हुई थी जिसमें इन तिथियों को सर्वसम्मति से माना गया। परन्तु इसका आधार केवल उन उपकरणों (औजारों) या हड्डियों पर है, जो अफरीका के एक प्रदेश तागानीका (Tanganyika) के एक घाटीमार्ग (olduvaigorge) में पाये गये थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहा जाता है, कि जब मानव की बुद्धि इतनी उज्वल हो गई, कि वह काल को समझने लगा, और गणित का भी अभ्यास हो गया, तो अपने कार्यों की तिथि को कालबद्ध करने के लिए उसने वर्षों की गिनती की प्रथा चलाई और उसमें हर वर्ष एक-एक जोड़कर मानवाब्द: को निश्चित कर दिया। ऐसे मनुष्य का आगमन इस धार्मिक कृत्यों में पढ़े जाने वाले संकल्प के अनुसार विक्रमी सम्वत् २०२२ को १, ९७, २६, ४९, ०६८ वर्ष आज से पहले माना जाता है। हो सकता है, कि इतने लम्बे समय में कोई गलती हो गई हो। इसके संशोधन के लिए ऋषि दयानन्द ने ज्योतिष शास्त्रों में दी हुई विधि के अनुसार जो सृष्टयाब्द: निकाली, वह है १, ९६, ०८, ५३, ०६७ वर्ष। आधुनिक भिन्न-भिन्न विधियों से जो सृष्ट्यब्द निकाली जाती है, उनमें भी अरबों वर्षों का अन्तर बैठता है, इसकी अपेक्षा संकल्प वाली और ऋषि द्वारा गणित शब्दों में अंतर नाम मात्र ही है। एक बात जो और ध्यान देने योग्य है, वह यह कि जो मनुष्याब्द: जानने की आधुनिक विधियाँ हैं, वे चट्टानों में मिले हुए जीवावशेषों की आयु जानने से है, जिन चट्टानों की आयु पहले दो अरब वर्ष ही मानी जाती थी, अब रेडियो एक्टेविटी द्वारा निकाली हुई कोई पांच अरब वर्ष तक मानी जाती है। इसलिए पृथ्वी का वासयोग्य हो जाना केवल दो अरब आज से पहले हो गया था, और भारतीय सृष्टियाब्द: में सच्चाई है। परन्तु अभी यह विवेचनीय ही है, और इसके लिए किसी व्यावहारिक ढंग से गवेषणा की भी ज़रूरत है।

महा-काव्य :—इस वक्त भारतीय संस्कृति को व्यावहारिक ढंग से प्रदीप्त करने वाले केवल दो ही महा-काव्य हैं रामायण और महा-भारत। रामायण बाल्मीकि मुनि रचित ग्रंथ माना जाता है जिसका सम्बन्ध उस घटना से है, जो त्रेता काल के अन्तिम चरण में हुई और जिसको बीते आज विक्रमी सम्वत २०२५ तक ८६९०६५[1] वर्ष हो गये

---

[1] द्वापर के ८६४००० वर्ष और आज तक कलियुग के ५०६५ वर्ष। ८६९०६५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं। दूसरा महाभारत एक स्पष्ट इतिहास-ग्रंथ है जो व्यास रचित माना जाता है, और जिसमें भरत वंश का चरित्र अथवा कौरव-पांडवों में हुए महासंग्राम का वर्णन मिलता है। इसमें वर्णित कथा द्वापर के अंतिमपाद की घटना मानी जाती है, जिसको बीते हुए कोई पाँच सहस्र वर्ष से कुछ अधिक काल हो चुका है।

इन ग्रंथों के अध्ययन से जान पड़ता है, कि इन पुराने वक्तों में भी मानव जाति भारत में पूर्णतः सभ्य थी। प्रायः पूछा जाता है, कि क्या उपरिलिखित महाकाव्यों की जन्माब्द सत्य हैं? उत्तर है, कि यह अभा तक तो संशयालु ही मानी जाती है, कारण यह है कि यूरोपियन विद्वान इन मितियों से सहमत नहीं। इसके अतिरिक्त भारतीय विद्वान् भी, जो इसी विद्या प्रणाली के शिक्षित हैं, ऐसी ही राय रखते हैं। ऐसे संदेह के कई कारण हैं—एक तो यह कि यह दोनों महा-ग्रंथ महा-काव्य भी माने जाते हैं, अर्थात् यह अपने समय के कविराजों के कवि-कर्म ही तो हैं। कवि एक अनुभवी होता है। वह किसी समय के इतिहास को अपनी अनुभूतियों से रंग देना अपना कर्तव्य समझता है। दूसरे यह अति प्राचीनकाल की कथाएँ होने के कारण इनमें कुछ हेर-फेर का भी होना असम्भव नहीं है, और यह भी हो सकता है कि इनमें कई समयों अथवा स्थानों की परिस्थितियों की झलकें भी झलझला रही हो। क्योंकि प्रायः ऐसा देखा गया कि किसी अतीत काल की दन्तकथाएं अथवा जन श्रुतियाँ जो जनता के मन को प्रभावित कर सकती हों, लोक कल्याण के लिए कवियों की रचनाओं में चमक उठा करती हैं। इस लिए हो सकता है, कि इन पुस्तकों में कुछ ऐसी भी वार्ताएं हों जिनका आधार कई लाखों वर्ष पुरानी घटनाएं ही हों, और जिनका पृथ्वी स्थल पर कोई वस्तु अवशेष तो न हो, परन्तु लोक गाथा में बंधी हुई ऐसी घटनाएं आदिकाल से चली आ रही हों। उदाहरणार्थ आप जानते होंगे, कि महाभारत में 'मय' असुर की चर्चा है। युधिष्ठिर के महल को सज्जित करने वाला इसी नाम का असुर था। सूर्यसिद्धान्त के ज्योतिष का आविष्कार करने वाला भी 'मय' असुर के नाम का ऋषि हुआ है। इसके अतिरिक्त मध्य एशिया के इतिहास में भी तीन सभ्यताओं अर्थात्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुमेरी, बाबुली और आसुरी की चर्चा है। इसका एक राजा, जिसका नाम था बनीपाल असुर, बड़ा प्रसिद्ध हो गुज़रा है। उसकी राजधानी 'निनेंव' में एक ग्रंथागार भी पाया गया है।

इतिहासकारों का विचार है, कि महा-भारत का 'मय' असुर इसी स्थान से युधिष्ठिर ने बुलवाया होगा। परन्तु यह केवल ३००० वर्ष पहले की बात समझी जाती है। इसलिए महाभारत की घटना को और सूर्य सिद्धांत के आविष्कार को इसी समय के साथ बाँध दिया जाता है। वास्तव में महाभारत की कथा पांच सहस्र वर्ष से भी पुरानी जान पड़ती है, क्योंकि इसमें मोहनजोदड़ो की सभ्यता की कोई चर्चा नहीं। मोहनजोदड़ों के खंडहर सिंध प्रांत में पाए गए हैं, जो सुमेरी सभ्यता से सम्बन्धित होने के कारण कम से कम पांच सहस्र वर्ष पुराने हो सकते हैं। महाभारत में उत्तरी भारत और इसके इर्द-गिर्द स्थानों के राज्यों का वर्णन मिलता है परन्तु इस सभ्यता का नहीं। इससे स्पष्ट है, कि महाभारत का जन्माब्द: पाँच सहस्र वर्ष से कम नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान के योग्य बात है, कि मेक्सिको (अमरीका) में गहरी जमीन में दबी हुई एक नगरी पुरावशेष के रूप में मिली है, जो एक 'मय' नगरी के नाम से सिद्ध है। इससे जान पड़ता है, कि 'मय' असुर शायद किसी विशेष मनुष्य का नाम न हो, परन्तु एक प्रसिद्ध जाति हो, जो अतीत काल में पृथ्वी के पृष्ठ पर खूब फैली हुई होगी। महाभारत आदि में वर्णित 'मय' उसी जाति के कुछ बुद्धिमान पुरुषों के उपनाम हो सकते हैं। हो सकता है कि इन महा-काव्यों में कुछ कथाएं पीछे काल की हों, क्योंकि व्यास जी का प्रथम महाभारत केवल दस [1]हज़ार श्लोकों वाला था, और जो अब मिलता है,

---

१ ऋषि दयानन्द की लिखी हुई पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में उल्लेख है, जो राजा भोज के बनाए 'संजीवनी' नामक इतिहास के नाम पर इस प्रकार है—व्यास जी ने चार सहस्त्र चार सौ और उनके शिष्यों ने पांच सहस्त्र छः सौ श्लोक युक्त अर्थात सब दश सहस्र श्लोकी के प्रमाण 'भारत' बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय बीस सहस्र और महाराजा भोज लिखते हैं, मेरे पिताजी के समय पच्चीस और अब मेरे समय में तीस सहस्र श्लोकयुक्त महाभारत है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वह इससे दस गुना है। ऐसा भी सम्भव हो सकता है, कि इसमें कुछ कथाएँ ऐसी भी हों जो किसी जलप्लावन के समय की हों और जिनको बीते हुए करोड़ों वर्ष बीत चुके हों और जिन्हें किंवदन्ती के रूप में महाभारत के समय तक सुनते-सुनाते चले आ रहे हों। ऐसी कथाएं कहां की हो सकती हैं केवल उन्हीं स्थानों की, जो जलप्लावन के समय पानी से उभर रहे होंगे, और बचे-खुचे मानुषों अथवा अन्य जीवों के उपनिवेश बन गये होंगे।

देव और असुर—संस्कृत साहित्य में देव-असुर वृतान्त एक साधारण बात है। वेद में भी इन का वर्णन है, जहां पर शायद दो प्रकार की मनो-वृत्तियों की ओर संकेत है। परन्तु पूर्वोक्त दोनों महा-काव्यों में तो दो प्रकार की संस्कृति के अनुयायी ही जान पड़ते हैं। महाभारत में आर्य अथवा असुर राजाओं का वर्णन तो प्रायः कई स्थानों पर आया है, इससे जान पड़ता है कि किसी अतीत काल में जब मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ तो इस के मस्तिष्क-विकास का प्रवाह दो भिन्न-भिन्न पक्षों में ही उमड़ उठा जिस से दो संस्कृतियाँ प्रत्यक्ष हो गईं। इन्हीं संस्कृतियों के कारण भारत में दो सभ्यताएँ चमक उठीं—एक दैवी और दूसरी आसुरी। दोनों जीवन के दो पक्ष हैं। इन में से अगर एक जीवन के तत्त्व की वास्तव में ही उन्नति करने वाला है, तो दूसरा जीव-गृह की। या यूँ समझिये, कि यहदो रास्ते हैं एक परलोक के स्वर्ग का और दूसरे लोक स्वर्ग का। यद्यपि मनुष्य जाति की उन्नति के लिए इन दोनों का एक साथ अपनाना अत्यावश्यक है, फिर भी इसी सिद्धांत के अनुसार अक्सर देशों में जातियां अलग-अलग होती गईं। महाभारत की कई कथाओं से जान पड़ता है, कि असुर किसी विशेष धर्म के अनुयायी नहीं होते थे, जंगलों में वास करते थे, और लूट मार भी करते थे। परन्तु इन के अपने राज्य थे। रामायण में असुर-राजा बाली ही लिखा है। राजा बाली ने अपने भाई सुग्रीव की स्त्री को ग्रहण कर उस के शासन को सम्भाल लिया था। असुरों का ऐसा व्यवहार होते हुए भी इन में बड़े-बड़े विद्वान् थे, ऋषि थे, जिन्होंने प्रकृति के नियमों की सिद्धि के बड़े-बड़े अविर्भावों अथवा आविष्कारों को जन्म दिया। शल्य-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चिकित्सक अर्थात जर्राह, सर्जन आदि असुर ही हुआ करते थे। इसी कारण सर्जरी को शल्य-चिकित्सा भी कहते हैं। जैसा पहले वर्णन किया गया है, सूर्यसिद्धांत भी एक असुर ऋषि की ही कृति है। दूसरे पक्ष की संस्कृति थी, आर्य या दैवी। इस के अनुयायी ईश्वर के मानने वाले और वैदिक मर्यादा के अनुसार जीवन का निर्वाह करने वाले थे। सत्य-निष्ठ अथवा सत्य-प्रतिज्ञ होते थे। वचन का पालन करने के लिए जान पर खेल जाते थे, और बड़े त्याग-शील भी प्रसिद्ध थे। सत्य की अन्वेषणा में लगे हुए शारीरिक सुख अथवा हर प्रकार की सांसारिक सामग्री को त्याज्य मानते थे। 'मैं कौन हूं' की खोज के संबंध में इन्होंने शरीर को बदलने वाले वस्त्रों से ही तुलना करके, इस की ओर उपेक्षा दिखाई। परन्तु जीवन-अस्तित्व को सदैव रहने वाली वस्तु माना। और जीवन का ध्येय इसी अस्तित्व का कल्याण अर्थात् इस को अमृत-पद तक ले जाना ही समझा। इस के लिए ज्ञान, तप और त्याग को अनिवार्य ठहराया। ऐसे पथ को अपनाने से व्यक्ति तो उन्मुख हो चला, परन्तु साथ ही अहमन्यता का भाव भी बड़ी तेज़ी से उत्तेजित हो गया अपने से भिन्न आचार व्यवहार करने वालों के लिए कुछ घृणा उत्पन्न हो उठी। इन से अलग रहना सहना शुरू हो गया। आपस में भी आचार-विचार में विभिन्नता के कारण वैर-विरोध का शिलान्यास हो गया। इस से आर्य सभ्यता को बड़ी ठेस पहुंची। ऐसी संस्कृति ने असुरों को भी कुछ विस्मित-सा कर दिया, जिस के कारण इन की कई जातियों ने देश को छोड़ परदेशों में जाकर अपने उपनिवेश बसाये। परन्तु भारत में इन दोनों संस्कृतियों का कुछ समन्वय हो कर एक संयुक्त सभ्यता का उदय हो गया। परन्तु इस मिश्रित संस्कृति में भी परलोक का ही पलड़ा भारी रहा। इस से व्यक्तित्व तो कुछ और उभरा। परन्तु जाति-मान देश को छोड़ने लगा। भौतिक सभ्यता कमजोर हो गई। जिस से भारत का भौतिक वैभव जाता रहा। देश-वासी देश और समाज की ओर से विमुख हो कर कई संप्रदायों में बंटे हुए किसी अनजाने स्वर्ग के सपनों में जीवन के दिन काटने लगे। और इस स्थिति पर पहुंच गए जो इस समय देखने में आ रही है। इस दुर्गति का कारण यही है, कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हम ने जीवन के एक ही रुख की ओर ध्यान दिया। पादटिप्पणी में दिये हुए युजर्वेद के मंत्र में जीवन के केवल एक ही पहलू को उत्कृष्ट करने वाले घोर-अज्ञानी कहे गए हैं। कारण यह कि जीवन के ये दोनों रुख एक दूसरे के पूरक हैं। शरीर की भौतिकता को नष्ट करके इस की सत्ता को कहां ठहराया जा सकता है। लोक के स्वर्ग को बिगाड़ कर परलोक के सपनों के क्या अर्थ हो सकते है ? सपनों में वही वस्तुएं देखी जाती हैं, जो देखी भाली हों। अन्य नहीं। इस लिए उस से अगले मंत्र[1] मे कहा है, :—हे, मनुष्यो आप बदलने वाले या नाशवान (मैं) के भौतिक भाग को और सदा रहने वाले अस्तित्व को साथ-साथ उत्कृष्ट करो। एक से मृत्यु अर्थात् संसार के दु:खों से छूट जाओगे (या संसार-स्वर्ग पाओगे) और दूसरे से आनन्द अर्थात विशेष स्वर्ग को पाओगे। याद रखिये लोक के स्वर्ग के बिना परलोक के स्वर्ग के कुछ मानी नहीं। मोक्ष की प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ और काम के साथ-साथ सिद्धि जरूरी है। क्या इससे स्पष्ट नहीं, कि संसार के आधुनिक कोलाहल के कारण ही पुराने ज्ञान रूप कल्प वृक्ष की ज्ञान शाखा का दो अधूरी और दुर्बल उपशाखों (दैवी और आसुरी) में ही बँट जाना है। इस वक्त इनसे एक शाखा (दैवी) तो लगभग मुरझा ही चुकी है और दूसरी अपने रंग रूप को बदले जा रही है।

प्रजातिएं—आधुनिक काल के साहित्य ने रंग रूप के अनुसार मानुष जाति को चार प्रजातियों में बांट दिया : (१) श्वेत वर्ण वालेआर्य (२) पीले वर्ण के मंगोलादि (३) काले वर्ण के नीग्रो, (४) आस्ट्रेलिया के आदिवासी इन चारों प्रजातियों में परस्पर रंग रूप आदि में विभिन्नता होते हुए भी यह उद्विकास वृक्ष की एक ही शाखा के फलस्वरूप अर्थात् एक ही जाति के जोड़ों से उत्पन्न हुए माने जाते हैं। नृतत्व के अनुसार उदविकास वृक्ष की भिन्न-भिन्न शाखाओं के व्यक्तियों के संयोग से संतान उत्पत्ति नहीं हो सकती, और अगर कहीं हो भी जावे, तो पीढ़ी

---

१. सम्भूतिं च विनाशंच यस्तद् वेदोभयं सह
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आगे नहीं चलती। जैसा कि हम घोड़े और गधे के संबध में जानते हैं, कि यद्यपि यह दोनों जीवन वृक्ष की साथ-साथ शाखाएं हैं, तो भी इनकी मिश्रित संतति 'खच्चर' संतान उत्पत्ति के अयोग्य होती है। परन्तु संसार के सभी व्यक्तियों में कैसे ही रंग रूप वाले हों, परस्पर दाम्पत्य व्यवहार से संतान हो सकती है। सब मनुष्यों की एकता का यही प्रबल प्रमाण माना जाता है।

भू-तत्व—मनुष्य पृथ्वी पर कब अवतीर्ण हुआ ? इस के उत्तर के लिए धरती रचना संबंधी कुछ विज्ञान की आवश्यकता है। नृ-वंश विज्ञानी उस जीव को जो पहले पहल बाहों से पत्थर को उछाल सका होगा अथवा काटने फाड़ने के लिए पत्थरों को तोड़ कर कुछ उपकरण बना सका होगा प्रथम आदमी मानते हैं। ऐसे आदमी का आगमन कोई एक लाख वर्ष पुरानी घटना समझी जाती है। हां आधुनिक अविष्कार इस घटना को सत्तरह लाख और पचास सहस्र वर्ष घसीट कर दूर पीछे ले गये हैं। इतना ही नहीं, बल्कि पत्थर उछालने वाले प्रथम आदमी की अवधि को तो कोई तीस करोड़ पीछे हटा दिया गया है। परन्तु ऐसे विशेषज्ञ आधुनिक आदमी को तो अधिक से अधिक पचास लाख वर्ष पुराना मानते हैं। कई तो केवल पचीस लाख ही। आधुनिक आदमी से अभिप्राय शायद उस 'आदमी' से है, जो प्रथमतः अग्नि को प्रज्वलित कर सका हो, जिसके कारण यह अपने आपको हिमयुगों में भी सुरक्षित रख सका होगा और साथ ही अपना प्रवेश शीतप्रधान देशों में भी किया होगा। अपनी इच्छा से अग्नि को प्रज्वलित करने वाला ही आधुनिक आदमी माना जाता है। इसलिए इस घटना से पहले आने वाले कुछ नृपशु आदमी तो हो सकते हैं, परन्तु इनकी बुद्धि का विकास और किसी प्रकार की सभ्यता का उद्भव होना असम्भव माना जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी माना जाता है कि **यज्ञ** अग्नि के उद्भावन से पहले (अर्थात् जीवन की सुरक्षा के लिए अपनी इच्छा से उत्पन्न की हुई अग्नि) 'मानुष' केवल गरम देशों में ही रह सकते होंगे। इसलिए इन की खोज केवल ऐसे देशों में की जाती है, जो **उष्ण**-कटि-बन्ध में हों जैसे अफरीका आदि। ऐसा विचार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तर्कयुक्त तो अवश्य है परन्तु युक्ति-युक्त नहीं जान पड़ता। कारण यह कि, जब 'मानुष' पत्थर फेंक वृक्ष के फल को गिराकर खा सका होगा, तो उसने वनों को रगड़ से अथवा बिजली से जलता देखकर आग के उपयोग अथवा दुरुपयोग को समझने में इतनी दीर्घसूत्रता नहीं दिखाई होगी, जितनी कि मानुष और आधुनिक आदमी में समझी जाती है। मनुष्य के मस्तिष्क का जब आरम्भ हो गया, तो फिर इतनी देर नहीं होनी चाहिये।

अब आप शायद शंका करें, कि आधुनिक आदमी भी तो पचीस या पचास सहस्र वर्ष से चला आ रहा है, परन्तु इस सृष्टि से संबंधित तत्त्व ज्ञान तो कोई चार-पाँच हजार वर्ष की बात है। इतने लम्बे अरसे में तो यह मनुष्य सृष्टि तो असभ्य ही चली आ रही होगी। क्योंकि बुद्धि वा विकास और विज्ञान की सफलता तो केवल एक-दो सौ वर्ष की बात मानी जाती है।

इसी प्रकार प्राचीनकाल के मानुष में और आधुनिक काल के 'आदमी' के विकास में एक दीर्घसमय का व्यतीत हो जाना कोई दोष-युक्त घटना नहीं समझी जा सकती और ऐसे विचारों में कोई दोष भी तो नहीं जान पड़ता, फिर भी इनका आधार हमारे दृष्टिकोण पर ही है, और उस खोज पर है जो बढ़ती तो जा रही है, परन्तु अभी अपूर्ण है, और हो सकता है कि इस सम्बन्ध में हमारी जानकारी ही न हो, क्योंकि अन्य जीवों की अपेक्षा बन्दरों वन-मानुषों नृपशुओं के जीवावशेष आदि नहीं मिलते। यह सब चतुर होने के कारण प्रकृति के चंगुल में नहीं फंसते। अन्य स्थल-चर कई बार प्यास से व्याकुल हुए उस दल-दल में पहुँच जाते हैं, जहाँ से निकलना असम्भव हो जाता है इसीलिए खड़े-खड़े वहीं प्राण त्याग देते हैं, और फिर उसी दल-दल का भाग हो जाते हैं। शरीर गलने लगता है। अन्दर के अवयव त्वचा की अपेक्षा अति सूक्ष्म होने के कारण इनका सड़ना जल्दी हो जाता है। इससे एक गैस उत्पन्न हो जाती है, जो पानी में घुले हुए कुछ पदार्थों के साथ मिल उनको पत्थर बना देती है। ऐसे बने हुए पत्थर के कण शरीर के सड़े हुए कणों का स्थान लेते जाते हैं, जिससे त्वचा के अन्दर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सारे शरीर का परिवर्तन पत्थर में हो जाता है, और जिसकी शक्ल-सूरत त्वचा के कारण पूर्णतः ऐसी जान पड़ती है, मानो वह जीव पत्थर हो गया हो। फिर उस पर तलछट बढ़ती जाती है, जिसकी मोटाई मीलों हो सकती है और फिर करोड़ों वर्षों के बाद ऊपर के दबाव से और नीचे की गरमी से यह पक कर ठीक ठोस पत्थर का जीव पुराव-शेष के रूप में चट्टानों में पाया जाता है। ऐसे ही कई वृक्ष पत्थर के बने हुए कोयले की खानों में मिलते हैं। पृथ्वी ऐसे और अन्य जीवन के निशानों से जो पृथ्वी अपने गर्भ में छिपाए रखती है जीवों की याद-गार को स्थिर कर देती है, और इसलिए यह सब जीवावशेष कहलाते हैं। इनकी खोज से भू-गर्भ विज्ञान का विस्तार होता है। उद्विकास और नृवंश विज्ञान की आधार शिक्षा भी यही है। परन्तु जैसा पहले कहा गया है, उच्चकोटि के जीवों का इस प्रकार प्रसारीभूत हो जाना असम्भव है, इसलिए चट्टानों में इनके **जीवावशेष** ढूंढना व्यर्थ है, और न ही कुछ पर्याप्त मात्रा में अब तक मिले हैं। चमीव की ऊपरों तहों में कहीं-कहीं नृ-पशुओं के में अवशेष विशेषकर दाँत, जबड़े या खोपड़ी की एक छोटी-सी हड्डी के रूप में मिले हैं, जिनसे मनुष्य के आगमन का सही अनुमान लगा लेना बड़ा कठिन है।

अब शायद आप प्रश्न करें, कि आधुनिक नृवंश विज्ञानियों की 'मानुष' के आगमन की तिथि भ्रमयुक्त है, तो संस्कृत साहित्य में दी हुई लगभग दो अरब की तिथि में क्या प्रमाण है? यह ठीक है, कि इस वक्त हमारे पास आधुनिक विधि के अनुसार समझने के लिए कोई प्रमाण-कोटि नहीं। केवल शास्त्र ही प्रमाण सूत्र हैं और पर्यवेक्षणों द्वारा यह जान पड़ता है, कि यह पृथ्वी जो लगभग दो अरब वर्ष से वास-योग्य होने पर भी आज से कोई एक लाख वर्ष पहले तक जल-चरों अथवा पशुओं के राज्य के अधीन होती चली आ रही है और ऐसे ही मानी जायेगी क्योंकि इसके किसी अति पुराने समय के पृष्ठ पर किसी प्रकार की कृत्रिम सर्जना का स्पष्ट प्रमाण देखना असम्भव है। इसके ऐसे अभाग्य के प्रसिद्ध कारण जो मान्य हैं, वह यह हैं—एक तो पृथ्वी ध्रुव का शनैः-शनैः घूमना, दूसरे समुद्र और स्थल में परस्पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिवर्तन।

ध्रुव-चक्कर :—पर्यवेक्षणों द्वारा ज्ञात हुआ है, कि उष्णकटिबन्ध देशों में कहीं कहीं हिमनद (glaciers) के निशान प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित हैं। गरम देशों के कुछ स्थानों पर पत्थरों के टुकड़े अथवा चट्टानें ऐसी घिसी हुई जान पड़ती हैं, जो हिमप्रवाह के कारण परस्पर रगड़ खाती रही हों। मैसूर में भी पर्यवेक्षणों द्वारा किसी दूर अतीत काल में हिमयुग का अनुमान लगाया जाता है। उत्तरी ध्रुव से बारह अंश से कम दूरी पर एक स्थान है, जिसको 'स्पिटज़र्वगन' कहते हैं। यह स्थान इस समय बर्फ से ढका हुआ है। चारों ओर हिम-पर्वतों का ठट्ठ ही दृष्टिगोचर होता है। इस हिमशैलों से आवृत्त स्थान पर पत्थरी कोयले की खान पाई गई है। कोयले की खानें वहीं हो सकती हैं, जहाँ पर कभी सूचि भेद्य वन हों। और यह वहाँ हो सकते हैं, जहाँ पर्याप्त गर्मी हो, अर्थात् यह स्थान कम से कम उष्ण कटिबन्ध में हो। इसलिए यह स्थान कभी काफी गर्म होगा, अर्थात यह ध्रुव कटिबन्ध कभी उष्ण-कटिबन्ध में होगा। यह कब था ? अनुमान लगाया गया है, कि यह कोई २० करोड़ वर्ष की घटना हो सकती है, क्योंकि इस स्थान की चट्टानों की आयु ऐसी ही जान पड़ी है। अगर ध्रुव की यह तब्दीली भूमध्य रेखा से मान ली जावे, तो यह मान्य होगा, कि ध्रुव के एक चक्कर की अवधि ८० करोड़ वर्ष की हो सकती है। इसलिए दो अरब वर्ष में इसने ढाई चक्कर पूरे कर लिये होंगे। इस चक्कर के साथ-साथ जीव-जन्तुओं के स्थानों का भी परिवर्तन होना चाहिये। हो सकता है कि जहाँ (ध्रुव के पास) कभी वन थे, वहां उस वक्त हर प्रकार के जीव भी हों और शायद कई जीवों के निशान भी कभी मिल जाएं। परन्तु नृपशुओं के अवशेषों का मिलना अति कठिन है, और मनुष्य जैसे चतुर जीव का कोई निशान जीवावशेष के रूप में मिलना तो असम्भव ही है। इसके अतिरिक्त कुछ थोड़ी अवधि वाले हिमयुग भी होते रहते हैं। अन्दाज़ा लगाया गया है कि ऐसे हिमयुगों का अन्तराल कोई ढाई लाख वर्ष है, अर्थात पहला नृपशु (जावामैन जिसको हुए दस लाख वर्ष माने जाते हैं) से आज तक चार हिमयुग बीत चुके हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऐसे परिवर्तनों के अन्दर हो सकता है. कि सभ्यताएं भी उत्कृष्ट और निकृष्ट होती आ रही हों, और इस समय हम केवल उस सभ्यता की खोज में हों जो केवल पच्चीस सहस्र वर्ष पुरानी हो। और इसके परे जाने के लिए हम असमर्थ हों।

भू-पटल का कम्पन—अगर आपको कोई अवसर मिले, तो किसी कोयले की खान को देखें। खान में आपको कोयले की परतें एक के ऊपर दूसरी और दोनों के बीच मट्टी की तहें स्पष्ट दिखाई पड़ेंगी। मट्टी की तहों में आपको समुद्री जीवों के जीवावशेष भी मिल सकते हैं जिससे इसका समुद्रभव ज्ञात होना साधारण-सी बात है। परन्तु कोयले की परत कहती है, कि मैं कभी घना जंगल थी, जिसमें बड़े-बड़े वृक्ष थे, जो स्थल पर लहराते थे। खान में ऐसी एक दूसरे के ऊपर कई स्तरें हुआ करती हैं, जो भूकम्प के कारण टेढ़ी-मेढ़ी भी हो सकती हैं। परन्तु यह स्पष्ट बतलाती हैं कि पृथ्वी की यह सतह कभी समुद्र का तल थी और कभी दृढ़ खुश्क ऊंची जगह। अर्थात् जमीन की सतह का यह भाग किसी विशेष विधि अनुसार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर होता रहा है। पृथ्वी के पृष्ठ पर ऐसे और भी स्थान हैं, जो या तो इस वक्त ऊपर उठ रहे हैं, या नीचे की ओर जा रहे हैं। इस समय भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर जो पर्वतमाला की ऊंची-ऊंची चोटियां हैं, उन पर समुद्री जीवों के अवशेष मिलते हैं, जिससे ज्ञात होता है, कि यह कभी समुद्री तल के भाग थे, और अब ऊपर उठते जा रहे हैं।

ऐसे पर्यवेक्षणों से ज्ञात होता है, कि पृथ्वी की पृष्ठ पर कम्पन है, और यह ऐसी, जैसे बजते हुए तबले की चर्म सतह पर। तबले पर अगर कुछ पतली सी रेत बखेर कर इसे बजाया जाए तो आप देखेंगे, के रेत उछलकर कुछ विशेष स्थानों पर इकट्ठी हो गई है। अर्थात कुछ स्थान ऐसे हैं, जो कम्पन में भाग नहीं ले रहे। इनको निष्पन्द (Node) कहते हैं जो एक विशेष प्रकार की तरंगों का गुण हैं, और जिनको अप्रगामी तरंगें (Stationary waves) कहते हैं। पृथ्वी पर भी ऐसी तरंगों का पर्याय बना हुआ है। इसके अलग-अलग भाग एक निश्चित समय के पश्चात कम्पन करते हुए समतल भी हो जाते हैं, जिसके कारण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समुद्र का पानी लगभग सारे धरातल पर फैल जाता है, और जल प्लावन का दृश्य उमड़ पड़ता है। ऐसी अवस्था में शायद ही कुछ स्थल-चर अथवा नभ-चर बचते होंगे। हां मनुष्य भी एक बड़ी न्यून संख्या में किसी ऊंचे स्थान पर पहुंचकर कष्ट के दिन काटते रहते होंगे। यह तरंगें आवर्त गति वाली होने के कारण एक विशेष समय के पश्चात् दोहराई जाती हैं। इसलिए ऐसे बाढ़ ठीक निश्चित समय के बाद हुआ करते हैं। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि का आरम्भ बाढ़ से है और फिर हर मन्वन्तर के पश्चात बाढ़ आया करते हैं। इसी सिद्धांत के अनुसार सृष्टि का यह सातवां मन्वन्तर चल रहा है। इसलिए मनुष्य ने अब तक ऐसे छ: दृश्यों के दर्शन किए होंगे।[1]

उपरिवर्णित नृतत्त्व का निष्कर्ष यह है, कि मनुष्य इस पृथ्वी तल पर बहुत पुराना नहीं है। कोई पचीस हज़ार से पहले यह नहीं था। आधुनिक मनुष्य और वन-मानुष के बीच जो एक और नृ-वनमानुषों की जाति मानी जाती है, उसका भी आगमन तीन करोड़ वर्ष से अधिक नहीं माना जाता और इतनी अवधि भी परतदार चट्टानों की आयु का बहुत न्यून भाग है, एक प्रतिशत से भी कम। अर्थात् पृथ्वी पर जीवन को अवतीर्ण हुए अगर सौ वर्ष बीत चुके हों, तो उस नृ-वनमानुष को जिसकी खोपड़ी की समाई केवल ९५० घन सेंटिमीटर हो प्रादुर्भूत हुए

१ सूर्य सिद्धांत अनुसार सृष्टि की आयु १००० चतुर्युग है। मनुष्य की अवधि पृथ्वी पर ९९४ चतुर्युग मानी गई है। फिर इस समय को चौदह भागों या मन्वन्तरों में बाँट दिया है। इससे स्पष्ट है कि हर मन्वन्तर ७१ चतुर्युग का होना चाहिये। हर चतुर्युग (४३२००००) त्रितालीस लाख बीस हजार वर्ष का होता है। हर ७१ चतुर्युगों के बाद प्लावन की घटना होती है जिसका प्रभाव (४३२०००x४=१७२८००० वर्ष) अर्थात एक सत्ययुग के समय तक रहता है। इस अरसे में इसमें अधिकतर जीव-जन्तुओं (मनुष्य सहत) का संहार हो जाता है। इसलिए नए मन्वान्तर में नई सभ्यता का उदय होना है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक वर्ष से भी कम की बात समझी जा सकती है। देखिए सौ वर्ष की अवधि में इस पृथ्वी पर निन्यानवे वर्ष तो पशु आदि शासन करते रहे. मनुष्य ने तो केवल एक वर्ष से कम अरसे में ही क्या कुछ नहीं कर दिया। कई आविष्कार और आविर्भाव, अनेक प्रकार की सभ्यताएँ और संस्कृतियों का उदय होना इसके आने पर ही हुआ। परन्तु ऐसा भी जान पड़ता है, कि यह अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया हो, और फिर प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपनी अंत्येष्टि करने की ओर बढ़ चला हो, क्योंकि प्रायः देखा गया है कि उन्नति और अवनति चक्र के समान मनुष्य जाति के जीवन में घूमती रहती हैं। जैसे पृथ्वी का कोई भाग अपने कम्पन में समुद्र का तल बनने के पश्चात ऊपर को उठता है और फिर पहाड़ की चोटी बनकर वापस लौटता है, ऐसी ही सभ्यताएं अपनी आवर्त गतियों में दोनों ओर की पराकाष्ठाओं को छूती रहती हैं।

हो सकता है, कि सूर्य सिद्धांत के अनुसार मनुष्य जाति दो अरब वर्ष से ही चली आ रही हो। परन्तु विज्ञान की अन्वेषणा अभी वहाँ तक न पहुँची हो, और शायद वहां तक पहुँच भी न सकेगी। जीवन वृक्ष कई बार पल्लवित अथवा पुष्पित होता रहा, परन्तु इसके कुछ फूल और पत्ते समय-समय पर गिरकर ऐसे सड़ गए हों और ऐसे अदृश्य हो गए हों कि अब इनका कोई पता-निशान मिलना असम्भव हो गया हो।

विशाल ब्रह्मांड में मनुष्य अत्यन्त छोटा और अल्पज्ञ है। प्रभु की विराट महिमा और उसकी सृष्टि का ज्ञान यदि वस्तुतः उसे हो जाए तो वह प्रभु चरणों में श्रद्धानत हो जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मैं कौन हूं का व्यक्तिरूप—९

पिछले अध्यायों के अध्ययन से आप को स्पष्ट हो गया होगा, कि जैसे सूर्य चन्द्र, पृथ्वी आदि अव्यक्त प्रकृति के व्यक्त रूप हैं, ऐसे ही हर जीव-जन्तु प्राणि समष्टि के व्यक्तित्व को प्रकट करते हैं। मनुष्य रूप के अन्दर कार्य करने की स्वतंत्रता और भोगों की पूर्ति में सुख की अनुभूति होने से इस व्यक्तित्व को ही अब अपना रूप समझना स्वाभाविक है। मनुष्य के अतिरिक्त दूसरे जीवों में भी व्यक्तित्व काफी उभरा रहता है। इन में मान प्रतिष्ठा का होना, समूह बना कर रहना, घर बनाना और उसकी रक्षा करना, एक दूसरे से प्रेम अथवा द्वेष करना यह सब उनके व्यक्तित्व का ही तो प्रदर्शन हैं। प्राणी-जगत् में पांच तत्वों से शरीरों के नियमानुसार बने हुए होने पर भी सबके रूप रंग, गंध आदि में अन्तर है, जिस से कि न केवल जीवों की जातियों का ही ज्ञान होता, अपितु हर जीव की विभिन्नता भी स्पष्ट जान पड़ती है। ऐसे विचारों के कारण बहुत से विद्वान् ऐसा भी मानते हैं, कि जैसे प्रकृति का भाव अन्तरिक्ष में हाइड्रोजन के परमाणुओं से होता है, ऐसे जीवन समष्टि भी अणु रूप में हा सकती है, जिस के हर अणु में कुछ विशेषता हो। मुण्डकोपनिषद के इस कथन से जो नीचे दिया है, जीवन को व्यक्ति में अणु रूप की ओर ही संकेत करता है :—

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन प्राणः पञ्चधा संविवेश

यह आत्मा अर्थात् शरीर का जीवन-ज्योति अणु रूप में है, इस लिए यह मन से जानने वाला है, और शरीर के अन्दर यह पाँच प्राणों के साथ प्रविष्ट हो रहा है, इससे स्पष्ट है कि आत्मा और है, और प्राण और।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परन्तु ऊपर के प्रसंग के साथ यह बात भी मान्य है, कि आत्मा बिना प्राणों के किसी प्रकार की चेष्टा करने के लिए पूर्णतया असमर्थ है। शरीर में अणु अर्थात अति सूक्ष्म रूप में होने से यह किसी भी यंत्र से देखा नहीं जा सकता।

वर्तमान काल में जो इल्क्ट्रान-सूक्ष्म दर्शी बनाई गई है, वह किसी वस्तु के आकार को कोई अढ़ाई हजार गुणा बढ़ा सकती है, इसके प्रकृति के अति सूक्ष्म कण देखने की भी सम्भावना हो गई है, परन्तु यह जीवन का सूक्ष्म कण (आत्मा) इस से भी देखा नहीं जा सकता। इसी लिए आधुनिक विज्ञान इस की सत्ता (अस्तित्व) को नहीं मानता, क्योंकि इस के सिद्धांत अनुसार जिस वस्तु का शरीर से सम्बन्ध है, उस की रूप रेखा जानी जा सकती है, परन्तु जैसे उपर्युक्त मंत्र में विद्यमान है, आत्मा का कोई सीधा जोड़ शरीर से नहीं, केवल प्राणों के माध्यम से है। और पाँच प्राण अर्थात प्राण, अपान समान, व्यान अथवा उदान क्या हैं ? यह केवल शरीर की कई एक क्रियाओं के कारण ही हैं। क्योंकि प्राण-स्वयं सांस लेने की क्रिया ही है, जिससे रक्त की शुद्धि होती है। 'अपान' शरीर के मल-मूत्र के त्यागने का कारण है, समान जठराग्नि ही तो है, जिस से खाए हुए भोजन का पाचन होता है, और व्यान रक्त नालियों में घुमा कर शरीर के हर भाग को आवश्यक शुद्ध पदार्थों से युक्त रखता है। इसी तरह उदान दिमाग या मन को शरीर पर होने वाली सब घटनाओं से सूचित रखने वाला है। इस उपनिषद के कर्ता महर्षि पिप्पलाद के कथनानुसार इसी उदान से जीव-आत्मा बाह्य ज्ञान को प्राप्त करता है, और इसी से ही दुःख अथवा सुख का भागी बनता है। यह महर्षि पिप्पलाद का विचार है, और इसका संबंध मनो-विज्ञान से होने के कारण किसी प्रयोग से जाना नहीं जाता। इसी सिद्धांत अनुसार जीव-आत्मा एक परम सूक्ष्म, अथवा अव्यक्त अणु माना गया है। शरीर के बनाने वाले तत्त्व जीव-आत्मा की अपेक्षा अति स्थूल हैं। इस लिए इसे दिमाग के कणों की अवस्था का भी सीधा ज्ञान होना असम्भव है। इन दोनों के मेल के लिए प्राणों को माध्यम बनाया गया है। और इसको जीव-आत्मा का निश्चित भाग समझा गया है, इसी सिद्धांत अनु-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सार यह भी माना गया है, कि जीव इसी उदान से शरीरों में ऐसा प्रेरित होता है जैसे कोई तिनका (घास-फूस) वायु में उड़ता हुआ किसी दीवार के सहारे रह गया हो, और वहां किसी विशेष वस्तु के होने से चिपक भी गया हो। परन्तु जीव का शरीर से चिपकने को नियम-बद्ध माना गया है। यह क्यों ? केवल इसलिए कि संसार में सब क्रिया नियमानुकूल हैं। कारण और कार्य का संबंध हर घटना में दिखाई देता है। इस लिए यह जीव और शरीर का संबंध भी नियम-बद्ध ही समझ में आता है।

उपर्युक्त कथन से आपको ज्ञात हो गया होगा, कि हो सकता है, कि व्यक्ति, जीवन-वृक्ष का अन्तिम फल न हो, परन्तु इसके विपरीत व्यक्तियों का समूह रूप ही समष्टि जीवन हो। इस सिद्धान्त अनुसार हर व्यक्ति एक पहाड़ी नदी की भांति कई प्रकार की वनस्पतियों और पत्थरों से टकराती हुई और अपने जैसी कई नदियों से सम्मिलित होकर एक बड़ी नदी के रूप में आगे बढ़ती हुई अपने आखिरी स्थान की ओर जाती हुई जान पड़ रही है। इस एक बड़ी नदी के रूप में होने पर इसके गुण कर्म आदि भिन्न-भिन्न नदियों के मार्गों पर निर्भर हैं। जैसे अगर किसी नदी के रास्ते में अच्छी सुगन्धित जड़ी-बूटियां और लाभदायक लवणों से भरे हुए पत्थर हों, तो यह बड़ी नदी को भी लाभदायक बना देती है। परन्तु इसके विपरित अगर इसका प्रवाह किसी विष-गिरी से हो, और रास्ते में विष वृक्षों से विष-पुष्प समेट कर ले जा रही हो, तो यह समष्टि-जीवन रूपी नदी कितनी बड़ी क्यों न हो, इसके पानी को विषयुक्त ही कर देगी इसी प्रकार व्यक्ति का समष्टि रूप में परिवर्तन होना है। अतः मनुष्य का व्यक्तित्व भी अगर नदी समान मान लिया जावे, तो जीवन का उत्कृष्ट होना या नीचे गिरना व्यक्ति के अपने कर्तव्यों द्वारा ही हो सकता है। प्राणी जगत में बहुत से ज्ञानी, विद्वान और कर्तव्य परायण होने से सारे जगत् के अन्दर आनन्द हुआ करता है, और इससे ही हर प्राणी वास्तविक सुख को अनुभव कर सकता है। लगभग सब मत मतान्तरों का यही सिद्धान्त है कि जीवन का व्यक्तित्व केवल व्यक्ति रूप में ही है। हर व्यक्ति के कुछ नियमित कर्म हैं, कुछ कर्तव्यों का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पालन करना है जिससे सामूहिक सुख की प्राप्ति हो सकती है, और फिर इससे व्यक्ति को सुख भी हो सकता है। उदाहरणार्थ जिस देश में स्वार्थी अधिकतर हों, अविद्वानों की भीड़-भाड़ हो, ऐसे देश पराधीनता को प्राप्त होते हुए देश-वासियों के दुख के स्थान हुआ करते हैं, जिसका दूर करना किसी एक आध व्यक्ति का काम नहीं हुआ करता। घर के अन्दर ही मूर्ख का होना घर की अशान्ति के लिए काफी होता है। अतः इस सिद्धांत के अनुसार सामूहिक सुख तभी सम्भव हो सकता है जब हर व्यक्ति अपने परिश्रम से अपने-आपको मानवता की उच्च श्रेणी की ओर उठता हुआ आनन्द को अनुभव करता है। मन की ऐसी प्रवृत्ति का होना बहुत कुछ अपने प्रयत्न और बाहर के वातावरण पर निर्भर है। अगर हर व्यक्ति के जीवन की सत्ता भिन्न-भिन्न जीव-आत्मा ही मान ली जावे, तो भी पूर्ण सुख की सम्भावना तभी हो सकती है, जब कि हर व्यक्ति अपने-आपको ऊपर उठाकर समष्टि जीवन को उत्कृष्ट करता है। इससे जाति समाज अथवा देश की उन्नति होने पर हर एक व्यक्ति पर भी शान्ति और सुख की वर्षा हो सकती है। इससे यह भी स्पष्ट है कि व्यष्टि और समष्टि एक-दूसरे पर निर्भर रहते हुए भी जब तक हर व्यक्ति का जीवन अथवा हर स्त्री-पुरुष का चरित्र मानवता के ऊंचे स्तर पर नहीं उठ पाता, समष्टि जीवन कुछ अच्छा नहीं हो सकता। यही कारण है, कि प्रसिद्ध विद्वान समष्टि जीवन का अस्तित्व समझते हुए भी अपने मनों के अन्दर व्यक्ति का प्रभाव प्रत्यक्ष उभरा हुआ पाते हैं। क्या आप नहीं देखते कि मनुष्य हृदय में एक अभिलाषा हुआ करती है, कि मैं कुछ ऐसे कृत्य कर चलूं, कि मेरे जाने के पश्चात् भी मेरी निशानी बनी रहे, और मेरे कृत अर्थात किए हुए कार्यों की प्रशंसा होती रहे। यह क्यों? क्या यह इस बात की स्पष्टता नहीं कि हमारे अन्तःकरण में हमारा व्यक्तित्व निहित है। यही कारण है कि हम मृत्यु को जानते हुए भी इसके पीछे और आगे की ओर देखते हैं। बहुत से संन्यासी और त्यागी भी इस संसार में मान प्रतिष्ठा की आग में झुलसते रहते हैं। प्राचीन काल की कब्रों के खोदने से मालूम हुआ है कि पश्चिमी देशों के लोग प्राचीन काल में शव के पास कुछ खाने योग्य पदार्थ जैसे चावल आदि और पानी पीने के घड़े रखा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करते थे, जिससे जान पड़ता है कि उस समय के लोग, मरने के पश्चात भी शरीर में किसी ऐसी वस्तु को मानते थे, जिसको खाने-पीने की जरूरत हुआ करती थी। प्राचीन मिस्र और कुछ पश्चिमी जातियों को यह भी विश्वास था, कि मरने के बाद आदमी की आत्मा यम लोक के एक देवता के पास जाती है, जिसका नाम है ओसिरिस। वहां पर 'थोथ' नाम की एक देवी रहा करती है, जो तराजू से किसी प्रेत के पुण्य पाप को तोलती है। इसकी ठीक-ठीक जांच के लिए तराजू के एक पलड़े में आत्मा को हृदय और दूसरे में एक और देवी (जिसका नाम 'मुत' है) के पंख रख देती और इस प्रकार पुण्य और पाप की तुलना कर वे सारा हिसाब यम देवता 'ओसिरिस' के सम्मुख रख देती थी। अगर आत्मा निष्पाप साबित हुआ तो उसे देवता का आशीर्वाद मिलता और फिर इस प्रकार यम लोक से छुटकारा पाकर वह आत्मा फिर अपने पुराने शरीर को खोजती हुई घूमा करती थी। अगर उसका पुराना शरीर ठीक-ठीक होता तो वहां पर रहकर आनन्द के साथ सांसारिक सुखों का सदा भोग करती। इसके लिए इस बात की आवश्यकता समझी गई कि मरने के पश्चात भी शरीर की अवस्था ठीक-ठीक बनी रहे। यह गले सड़े नहीं। इसलिए उस समय के मिस्त्रियों ने बड़ी खोज के बाद एक लेप का आविष्कार किया, जिसको मरे हुए शरीर पर मलने से शरीर का गलना सड़ना नहीं होता था। और यम लोक से लौटी हुई आत्मा आनन्द से उसमें निवास करती थी। ऐसी लाशों को 'ममी' कहते हैं, जो अब भी कई देशों के अजायबघरों में देखने में आती हैं। मिस्र में इनको बड़ी-बड़ी समाधियों में रखा जाता था। जिनको पिरामिड कहा जाता है जो आज भी एक बड़ी संख्या में मिस्र में देखे जा सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य में मरने के पश्चात भी जीते रहने की लालसा बड़ी प्रबल हुआ करती है। इसी लिए मरने के बाद सांसारिक भोगों के आनन्द को भोगने के लिए प्राचीन जातियों ने स्वर्ग और नरक की कल्पना की। और शायद उनके ऐसे ही विश्वासों के कारण वह अपने जीवन के पथ पर जमे रहे। परन्तु आजकल के वातावरण में ऐसी बातें मान्य नहीं। वेदों के अन्दर भी जीवन व्यक्तिगत रूप में ही माना गया है। और आर्य ऋषियों ने भी हर व्यक्ति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के अन्दर एक जीवन अणु को माना है, जिसको जीवात्मा या केवल आत्मा का नाम दिया है। यह जीवात्मा बिना शरीर के नहीं रहता। लेकिन यह शरीर में कैसे आता है इसके बारे में भिन्न-भिन्न शास्त्रज्ञों की भिन्न-भिन्न विचार धाराएं हैं। अधिकतर यही मानते हैं, कि खाने योग्य पदार्थों के माध्यम से ही यह शरीर के उत्पत्ति वाले बीज कणों में प्रवेश करके ही जीव देहधारी बनता है। परन्तु यह अज्ञानवश होता है इसमें चेतना तो है परन्तु अपना ज्ञान नहीं। इसलिए प्रकृति की ओर यह ऐसे खिंची जाती है, जैसे लोहा चुम्बक की ओर। इसी कारण यह शरीरों के दुःख सुख का भागी हो जाती है। इसके उत्कृष्टता और सुख के लिए एक सर्व व्यापक सर्वज्ञ परमात्मा को भी माना गया है, जो पूर्ण ज्ञानमय होने से केवल दुःख सुख से परे ही नहीं, अपितु पूर्ण आनन्ददाता भी है, इसीलिए इसको सच्चिदानन्द अथवा परमानन्द के नाम से भी पुकारा है। यह भिन्न-भिन्न आत्माओं को मित्रता के नाते ज्ञान भी देता है, जिससे कि यह भी उसके कुछ आनन्द को पाते हैं। ऋषियों का मत है कि इन आत्माओं की इच्छायें हुआ करती हैं जिनको यह शरीर के धारण करने पर ही कर्मों द्वारा प्रकट कर सकते हैं, परन्तु अज्ञान युक्त कर्म इनके दुःख का कारण हो जाते हैं। जैसे एक छोटा बच्चा अग्नि की चमक को देख कर उस को पकड़ने की कोशिश करता है, तो अपने हाथ को जला लेता है, और अपनी अज्ञानता से दुःख का भागी बनता है। इसी तरह जीवात्मा भी मूढ़ होता हुआ बिना जाने-बूझे किसी शरीर में जाने से इसको कई प्रकार के दुःखों को सहन करना पड़ता है।

अतः सुख के लिए इसको ज्ञान की आवश्यकता होती है। आर इसकी ज्ञान की पूर्ति परमात्मा से होती है। जीवात्मा प्रकृति के परमाणुओं से भी सूक्ष्म हैं, और परमात्मा जीवात्मा से भी। अर्थात परमात्मा अति सूक्ष्मतम, जीव सूक्ष्मतम और प्रकृति के परमाणु सूक्ष्म माने गए हैं। या हम ऐसा भी कह सकते हैं, कि प्रकृति के कण जीवात्मा की अपेक्षा अति स्थूल हैं, और इसी प्रकार परमात्मा की अपेक्षा जीवात्मा अति स्थूल है। सूक्ष्म और स्थूल वस्तुओं का परस्पर मेल नहीं। एक दूसरे के अन्दर होते हुए भी इनको आपस का ज्ञान नहीं हो सकता। उदा-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हरणार्थ आप जानते हैं, कि विद्युत की तरँगें जो दूर विक्षेपण केन्द्र (Transmitting station) से विसर होती रहती हैं, इन के लिए दीवार कोई बाधा नहीं। क्यों ? क्योंकि दीवार इन तरंगों की अपेक्षा बड़ी स्थूल है। इसलिए तरंगों को दीवार का भास भी नहीं हो सकता। इसी तरह अगर वायु-मण्डल में स्थिरता हो, और कोई इसमें गति भी न हो तो आप अगर इसमें धीरे-धीरे चल रहें हों, तो भी आप को इसका ज्ञान नहीं हो पाता। ठीक ऐसे ही शरीर में आत्मा और परमात्मा का निवास होने पर भी आत्मा को न तो शरीर का ज्ञान होता है, और न ही परमात्मा का। इन तीनों का मेल अथवा जानकारी केवल मनुष्य शरीर के एक विशेष स्थान पर-ही हो सकती है, जिसे 'हृदय' कहते हैं। यह हृदय या दिल वह रक्त पम्प नहीं, जिसका काम रक्त को धमनियों में फेंक कर सारे शरीर की भूख अथवा क्षति की पूर्ति करना है। इसका स्थान शायद दिमाग के उस स्थान में हो, जिस को कुछ विद्वान सहस्रार अथवा बृह्मरंध्र चक्र कहते हैं और जो समस्त शक्तियों का केन्द्र माना जाता है। वेद में भी इसी हृदय को ही, स्थूल और सूक्ष्म के मिलने का स्थान माना गया है। जैसे इस ऋग्वेद के मंत्र से स्पष्ट है :

सतो बंधुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ।

सत् और असत् अर्थात स्थूल और सूक्ष्म का सम्बन्ध ऋषियों और अन्य मनन-शील विद्वानों ने अपने विचार से हृदय में देखा या पाया।

यजुर्वेद में हृदय को मन का स्थान भी माना है, जैसे नीचे दिए हुए मंत्र से विदित है,

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मेमन: शिवसंकल्पमस्तु ।

(वह जो) हृदय में स्थित है जरा रहित अर्थात बुढ़ापे से दूर है, बड़ा गमन शील है, वह मेरा मन शिव संकल्प वाला होवे। इसमें मन को हृदय में स्थित कहा गया है, मन या सोचने का स्थान दिमाग ही माना जाता है। अतः स्पष्ट है, कि यह हृदय रक्त का पम्प नहीं, क्योंकि इसमें सोचने या बाहर के दृश्यों के जानने का कोई यंत्र नहीं, वह केवल मस्तिष्क या दिमाग ही हो सकता है।

हमारी इंद्रियों से ले जाए गए संदेश दिमाग के विशेष भागों के कणों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में कुछ उथल-पुथल पैदा करते हैं या कुछ तरंगें सी उत्पन्न करते हैं, जिन को हम हृदय कह सकते हैं, यही तरंगें आत्मा की अनुभूति हैं। सीधा शरीर से इसका कोई और संबंध नहीं जान पड़ता। वेद के अनुसार भी इसी हृदय को ही सत् और असत् के मिलने का माध्यम माना गया है।

परमात्मा सर्व व्यापक और सर्वज्ञ होने से इन सब को जानता है, परन्तु आत्मा का इससे ऐसा कोई सीधा संबंध नहीं। इस विचार का समर्थन श्वेताश्वतरोपनिषद के नीचे लिखे मंत्र से भी होता है, जिस में उपर्युक्त भाव को स्पष्ट करने के अतिरिक्त परमात्मा के कुछ गुणों की ओर भी ध्यान दिलाया गया है।

अपाणिपादो जवानो ग्रहीता,
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता,
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

वह परमात्मा हाथ-पैरों से रहित होने पर भी सब को ग्रहण अथवा थामने वाला और हर स्थान पर गमन करने वाला है। आँखों के बिना ही सब को देखता और कानों के बिना सब की सुनता है। वह सब को जानता है, परन्तु उसको जानने वाला कोई नहीं। वह ही महा पुरातन पुरुष परमात्मा है।

इस उपनिषद् का मत स्पष्ट है, जो सब को जानता है, उसको कोई नहीं जान सकता। एक सर्वभौमिक राजा जिसको चाहे देख सकता है, परन्तु हर एक की पहुंच उस तक नहीं हो सकती और न ही हर एक उसको देख सकता है। इस उदाहरण में राजा और प्रजा एक ही जाति के होने पर भी ऐसी कठिनाई जान पड़ती है, परन्तु आत्मा और परमात्मा में तो जातीय भेद है, पहले की अपेक्षा दूसरा अति सूक्ष्म है। इसलिए आत्मा का अपने से अति सूक्ष्म परमात्मा का जानना साधारणतया नहीं हो सकता। यही कारण है कि इस उपनिषद् में यह स्पष्ट कहा गया है, कि जो सब को जानता है, उसको ऐसा कोई नहीं जान सकता, जैसा हम संसार की और वस्तुओं को जान सकते हैं। जैसे ऊपर कथन किया गया है, आत्मा को भी ज्ञान केवल हृदय के माध्यम से ही होता है, और यह ज्ञान वह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ही है, जो ज्ञान इन्द्रियों से दिमाग अथवा हृदय में संचित किया जाता है। जब कोई व्यक्ति किसी सिद्धांत की खोज में जुट जाता है, मस्तिष्क में इस खोज के लिए पर्याप्त शक्ति को भी उपार्जन कर लेता है, और इसके लिए अन्य आवश्यक सामग्री को इकट्ठा करके इसके ध्यान में ही लगा रहता है, और फिर सुख और दुःख से विरक्त हुआ, तपस्वी होकर एकाग्रता समाधि में स्थित ऐसा योगी सिद्धि को प्राप्त करने की सम्भावना कर सकता है। आजकल जो कई प्रकार के आविष्कार आप की जानकारी में आ रहे हैं, वह ऐसे ही योगियों की योग्यता के ही परिणाम हैं। परन्तु कई बार यह भी देखा गया है, कि जब कुछ व्यक्ति एक ही खोज में लगे हुए दिन-रात एक करते हुए भी सब के सब अपनी खोज के तथ्य को नहीं पा सकते। सच्चाई का आविष्कार किसी एक ही व्यक्ति के हृदय में ही होता है। यह क्यों? सब इसके भागी क्यों नहीं होते! कुछ प्रसिद्ध आधुनिक विज्ञान-शास्त्रज्ञों का इस बारे में यह मत है, कि प्रकृति अपने मन्दिर के पुजारियों में से जिसे योग्य समझती है, उस के हृदय में अपने कुछ गुप्त भेद भी खोल देती है। पर योग्यता की परीक्षा अवश्य है, जिसका निर्णय वह आप ही करती है। परन्तु प्रकृति हमारे सिद्धांत अनुसार चेतन नहीं है, चेतना रहित होने से ऊपर के कथन का सम्बन्ध प्रकृति से नहीं हो सकता। वास्तव में यह किसी चेतन शक्ति की ओर ही संकेत है, जिसकी आधीनता में यह ऐसे विकास को प्राप्त हो रही है। इसका कारण यह भी हो सकता है, कि जब प्रकृति असत् रूप से सत् रूप में आ गई, जिससे यह हमारी इन्द्रियों का विषय हो जाने से हमें यही सब कुछ जान पड़ती है। चेतनता का सम्बन्ध सीधा ज्ञानेन्द्रियों के साधन होने से ऊपर के प्रसंग में इस को संबोधित नहीं किया गया। वस्तुतः संकेत चेतना की ओर ही है।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है, कि वह विद्वान जो प्रकृति के निहित भेदों के पाने की खोज में लगे हुए हैं, अपनी शक्ति अथवा सामर्थ्य के अतिरिक्त किसी अपने से अलग शक्ति को भी अनुभव करते हैं, जो हमारी योग्यता का निर्णय करती है। और हमें प्रकृति के आवश्यक ज्ञान से संचित करती है। उसी शक्ति को लोग भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं। इसी को परमात्मा का नाम दिया जाता है। इस शक्ति का न केवल सृष्टि की रचना में ही हाथ है परन्तु जैसे पहले कहा गया है, हमारी योग्यता के अनुसार हमारी उत्कृष्टता का भी ध्यान रखती है। अर्थात शोध के कार्यों में यह शक्ति हमारे लिए एक प्रकार की मार्गदर्शक भी है। उपर्युक्त कथन को थोड़ा-सा और समझने के लिए नीचे लिखा एक उदाहरण है। प्राचीन काल में भारत देश के ऋषियों ने ज्योतिष विद्या में बहुत कुछ उन्नति की थी। परन्तु कई एक कारणों से जब विद्या का लोप होने लगा, इसकी घोर उपेक्षा हो गई और फिर इसको पूर्ण समझ कर इसकी ओर ध्यान देना बिल्कुल बन्द कर दिया तो इसका परिणाम यह हुआ, कि साधारण मनुष्यों के अज्ञात हृदयों में एक अधूरा ज्ञान स्थित हो गया। जिससे कि न केवल ज्योतिष विद्या की उन्नति ही समाप्त हो गई, इससे उत्पन्न हुए झूठे विचारों ने जनता को अपने कर्त्तव्यों कार्यों से हटा कर ग्रहों और उपग्रहों से उत्पन्न होने वाली घटनाओं का बे-पेंदे का लोटा बना दिया। यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना है, कि जब महमूद गजनी ने सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण किया, तो भारतवासियों के अज्ञान की सीमा को जान कर, उसने कुछ ज्योतिषियों से मेल कर लिया और कई प्रकार के लालचों से उनको बांध दिया। इसी कारण से जब राजपूत लड़ने को क्षेत्र में आए, तो इन ज्योतिषियों ने तत्काल अपनी ज्योतिष पत्रियों को खोल कर यह बतलाया, कि राजपूतों के लड़ने का अभी मुहूर्त नहीं है। इसके अतिरिक्त देवता को राजपूतों की तलवार की आवश्यकता भी नहीं, क्योंकि वह महमूद गजनी की अपेक्षा काफी शक्तिशाली है। बस फिर क्या हुआ इसका परिणाम सब देशवासी जानते हैं। ज्योतिष विद्या वास्तव में सूरज चांद, सितारों अथवा ग्रहों और उपग्रहों को ठीक-ठीक जानना है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने वेद के मन्त्रों के अर्थों को ठीक-ठीक समझने के लिए इस विद्या की जानकारी की आवश्यकता को समझा। मैं कौन हूं? मेरा इस सृष्टि के साथ क्या सम्बन्ध है? ऐसे प्रश्नों के उत्तर तभी मिल सकते हैं, जबकि हम सृष्टि उत्पत्ति के कारण और इसमें होती हुई घटनाओं को भली-भांति समझ लेवें। इसलिए उन वेद मन्त्रों को जिनमें इस विषय का ज्ञान वर्णन है, बिना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ज्योतिष अथवा भौतिक विज्ञान के नहीं समझा जा सकता। इसलिए विज्ञान को ज्ञान के लिए अनिवार्य माना गया है। पश्चिमी देशों में जिस प्रकार इस विद्या की उन्नति हुई, वह कथा भी एक आश्चर्यजनक है। यह ठीक है, कि यह विद्या 'मैं' के स्वरूप को प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट नहीं करती परन्तु 'मैं' की शक्ति और उसके ज्ञान की प्राप्ति का आधार अवश्य है।

कोई अढ़ाई सहस्र वर्ष से पहले की बात है, कि यूनान वाले ऐसा मानते थे कि पृथ्वी एक स्थान पर स्थित है। इसके चारों ओर सूरज और चांद, अपनी-अपनी निश्चित गतियों से घूम रहे हैं। इसके अतिरिक्त वह पांच ग्रहों (बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि) को भी पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए मानते थे। परन्तु जहां सूर्य और चन्द्र की प्रदक्षिणा सरल है, इन ग्रहों की चाल कभी-कभी उलटी देखी जाती है। उदाहरणार्थ, आप मंगल ग्रह की चाल को लाजिए। यह तीन मास अर्थात जून, जुलाई और अगस्त को ठीक अपने नियमित रास्ते पर चलता दिखाई देता है, परन्तु इसके पश्चात अपने निश्चित रास्ते को छोड़ देता हुआ जान पड़ता है, फिर उलटा चलकर अक्टूबर में घूम कर अपने अगस्त वाले स्थान के पास दिखाई देने लगता है, इसके पश्चात नवम्बर से फिर अपने निश्चित रास्ते को पकड़ लेता है। दूसरे ग्रहों की भी यही दशा है। इसी कारण इन ग्रहों का अंग्रेजी में नाम 'प्लैनेट' अर्थात 'आवारा घूमने वाला' है। परन्तु उस समय के पश्चिमी विज्ञान-शास्त्रज्ञों के अप्रकट अथवा भीतरी गुप्त ज्ञान ने मंगल की ऐसी अनियमित चाल को स्वीकार नहीं किया। इसी कारण इसके तथ्य को पाने की खोज में जुटे रहे। उसी समय के एक दार्शनिक ने जिसका नाम 'प्लेटो' था, अपने छात्रों के समक्ष यह समस्या रखी, कि सब तारे आकाश की छत पर जड़े हुए पृथ्वी के चारों ओर नियम बद्ध हुए घूम रहे हैं। ऐसे ही इन ग्रहों की चाल भी होनी चाहिए। परन्तु ऐसा दिखाई नहीं देता। क्या इससे यह जान नहीं पड़ता कि इनकी चाल कई सावधिक वृत्ताकार चालों का एक साथ होने का परिणाम हो। अर्थात इनकी चाल कई साधारण सरल चालों से मिल कर बनी हो, जैसे अगर आप चलती गाड़ी में घूम रहे हों, तो गाड़ी से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बाहर खड़े मनुष्य के लिए आपकी चाल दो चालों से जोड़ का नतीजा होगी। इस समस्या के सुलझाव के लिए प्लेटो के एक शिष्य ने जिसका नाम 'इयूडोकस था', इस समस्या का हल यों किया : आकाश में तारों की तरह यह ग्रह भी पारदर्शक गोलों पर जड़े हुए हैं, हर एक गोल इसमें जड़े हुए ग्रह समेत एक निश्चित चाल से पृथ्वी के गिर्द घूम रहा है इन सब का केन्द्र पृथ्वी ही है। परन्तु इनकी चालें भिन्न-भिन्न हैं, और एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। इसके लिए हर गोल की धुरी इससे ऊपर वाले गोल में जमी हुई मानी गई है। और अन्त वाले गोल की धुरी आकाश अथवा तारों वाले गोल में। इन गोलों को भिन्न-भिन्न चालों से सम्पन्न करके मंगल अथवा दूसरे ग्रहों की चालों की कुछ स्पष्टता की गई। परन्तु समस्या का यह हल साधारण मनुष्य की समझ के परे था क्योंकि हर ग्रह के साथ कई गोल जोड़ने पड़े। उदाहरणार्थ बुद्ध ग्रह के साथ तेरह गोलों की भिन्न-भिन्न चालों के मिलाने से इसकी चाल की स्पष्टता हो सकी। कई और दार्शनिकों ने इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया, परन्तु यह सबके सब सुझाव साधारण जनता के लिए इतने कठिन साबित हुए, कि सन् १२०० में केवल यूनान के राजा 'अल्फोंसों' ने कहा, कि सृष्टि उत्पत्ति के समय अगर मैं होता, और इसके सम्बन्ध में मेरी राय ली जाती, तो इस सृष्टि की उत्पत्ति आसानी से समझ में आने वाली किसी योजना के अनुसार होती। ठीक इसी प्रकार 'कॉपनिक्स' के मन में भी ऐसा विचार उठा, कि सृष्टि की नींव बड़े सादे नियमों पर रखी हुई होनी चाहिए। कोपर्निकस पोलेन्ड का रहने वाला था जिसका जन्म सन् १४७३ में हुआ था। अपने समय का यह एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हो चुका है।

इसका भीतरी विचार यह कहने लगा कि पृथ्वी घूमती है सूरज के गिर्द और केन्द्र सूरज है न कि यह पृथ्वी। पृथ्वी सौर-मण्डल का केवल एक अंग है। परन्तु उसने अपनी भीतरी ध्वनि को पूर्ण श्रद्धा से न माना और उस समय की जनता भी अपने पुराने विचारों को छोड़ने के लिए तैयार भी कहां थी ? और यह भी बात थी, कि उस समय के लोगों को समझ में यह भी नहीं आता था, कि अगर वास्तव में जमीन घूमती है,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तो एक उड़ता हुआ पक्षी अपने स्थान से अति दूर क्यों हो जाता, या एक सीधा फेंका हुआ पत्थर ठीक अपने निश्चित स्थान पर कैसे आ जाता है क्योंकि जिस समय पत्थर वायु में चल रहा है, जमीन कुछ आगे पीछे हो जानी चाहिए। भारत में सौर मण्डल का विचार पहले से ही था, और पश्चिमी देशों के भी कुछ लोग भारत के इस विचार से परिचित थे। इसी कारण कोपर्निक्स का विचार उसकी मृत्यु के पश्चात शीघ्र ही मान्य समझा गया। यह भी हो सकता है, कि पृथ्वी का घूमना ईसाई मत के विरुद्ध होने से उसने अपने सिद्धान्त को अपने जीवन में विकसित न किया हो। क्योंकि मत मतान्तरों की अज्ञान से भरपूर श्रद्धा भीतर की उमड़ती हुई सच्चाई को बहुत काल तक दबाने में समर्थ हुआ करती है। इसी कारण ईसाई धर्म के मुख्य अध्यक्ष 'मार्तम लूथर ने कोपर्निक्स को मूर्ख अथवा पागल कहा था। क्योंकि उसने एक प्रत्यक्ष स्थित पृथ्वी की स्थिरता को न मान कर इसको घूमती और सूरज की परिक्रमा करती हुई माना। चलती को गाड़ी कहना मूर्खता है, परन्तु सब ऐसे कहते चले आए हैं। हर वस्तु का अस्तित्व ठीक ऐसा नहीं जैसे हमें दृष्टिगोचर होता है। नीला आसमान क्या है, एक दृष्टि का भ्रम ही तो है। जहाज समुद्र में चला जा रहा है, यात्री आराम से बैठे समुद्र की ओर देख रहे हैं। जहाज किनारे के कुछ समीप आकर मोड़ लेता है। यात्री किनारे को घूमता हुआ ही देखते हैं। इसका कारण स्पष्ट है, कि आंखें बाहर की ओर लगी हैं। अगर आंखें जहाज के मुख्य की ओर होतीं तो जहाज का मुड़ना भी जाना जाता। इसलिए कहा गया है, कि जो ज्ञान साधारणतः इन्द्रियों से प्राप्त होता है, सदा सत्य नहीं हुआ करता। इसके लिए अभ्यास और विचार की आवश्यकता हुआ करती है।

कोपर्निकर्स की मृत्यु के पश्चात भिन्न-भिन्न देशों के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने इस कार्य को बड़ी श्रद्धा और श्रम से तपस्वी बनकर जारी रखा। 'तैंपोब्राह' (जो एक डेन्मार्क का ज्योतिषी हुआ है) ने कोपर्निक्स के सिद्धांत को ठीक वैसा नहीं माना। उसने सूरज को पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा करते हुए और दूसरे सब ग्रह सूरज के गिर्द घूमते हुए समझा। फिर भी वह ग्रहों का एक बड़ा सिद्ध प्रेक्षक माना जाता है,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उसने मंगल ग्रह के हर स्थान का चित्र बनाया, जो अभी तक डिग्री के साठवें भाग तक ठीक समझा जाता है। इसके पश्चात इसके एक छात्र ने इस काम को जारी रखा। यह गणित शास्त्र-विशेषज्ञ था। उसने अपने गुरू के प्रेक्षित अंकों को इकट्ठा करके एक सूची बनाई। इसने ज्योतिष के कुछ वह नियम निकाले, जो अब तक 'कैप्लर-नियम' के नाम से प्रसिद्ध हो रहे हैं, और ज्योतिष विद्या की नींव माने जाते हैं। इसने ग्रहों की चालों पर प्रकाश डाला, इनके रास्तों को अंकित किया, जिन रास्तों को उसने गोलाकार की बजाये अंडाकार बतलाया। परिक्रमा का समय और कक्षाओं की सूरज से दूरी को भी नियम-बद्ध किया। इसका नियम समझने के लिए यह उदाहरण है :—मान लो, कि पृथ्वी की दूरी सूरज से एक इकाई है, जिसका वर्ष ३६५ दिन का है, तो इकाई को तीन बार परस्पर गुणा करो इससे यह एक ही रहेगा और फिर इसको ३६५ के वर्ग से भाग देने से जो उत्तर आता है, वह सब ग्रहों के लिए एक स्थिर अंक संख्या है। ऐसे ही मंगल की दूरी सूर्य से पृथ्वी की अपेक्षा डेढ़ गुना है, और इसका एक वर्ष ६८७ दिन का होता है, अगर इन दोनों का उपरोक्त विधि से उत्तर निकाला जावे, तो इन दोनों उत्तरों का मूल्यांक एक ही होगा। यह कैपलर का तृतीय नियम कहलाता है। इससे अगर किसी एक ग्रह के परिक्रमण का समय ज्ञात हो, तो इससे उस ग्रह की दूरी का ज्ञान हो जाता है। यह सब ठीक है, परन्तु खोज थी एक सादे सरल नियम की, जो इस जगत में और हर ब्रह्मांड में लागू हो सके, जिससे यह जाना जा सके, कि किस बल के आधार पर यह सबके सब ग्रह सूर्य से बंधे रहते हैं। चांद भी पृथ्वी से बँधा हुआ इसकी परिक्रमा करता रहता है। यह क्यों है ? और फिर ऊपर फेंका हुआ पत्थर भी तो पृथ्वी से आकर चिपट जाता है। यह सब एक ही नियम के अन्दर हैं, या हर एक के भिन्न-भिन्न नियम हैं। इसका उत्तर इस समय का कोई भी ज्योतिर्विद्यवित बड़े परिश्रम से खोज करने पर भी न पा सका। आंतरिक भास स्पष्ट है, कि सृष्टि का निर्माण एक ही नियम के आधारित है। यह नियम कौन-सा है ? इसी की ही सारी खोज है। जैसा पहले कहा गया है, खोज करने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वालों की योग्यता की भी परीक्षा अवश्य है। परखैया का परखना जरूरी है। इसके पश्चात ही सत्य की किरण योग्य हृदय में डाली जाती है। इसके लिए उसके अन्दर बैठे हुए परखैया ने 'न्यूटन' को चुना।

न्यूटन का जन्म १६४२ में हुआ था। उसने कोपर्निक्स, कैप्लर गैलीलियों और उस समय के दूसरे विज्ञान शास्त्र विशेषज्ञों के कार्यों को खूब समझा। इस पर वर्षों विचार किया, कुछ समय के बाद मन में एक सुझाव उठा मस्तिष्क में उठती हुई एक रोशनी की किरण ने विचारों को कुछ स्पष्ट किया और इन सारे संग्रहीत प्रेक्षणों को एक ही सैद्धान्तिक सूत्र में बांध दिया। इसी का नाम न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण नियम है, जिसके अनुसार वह दो वस्तुओं की संहति के गुणन की अनुलोम और दूरी के वर्ग का प्रतिलोमानुपाती होता है। अर्थात अगर दो लोहे के गोलों की दूरी दुगनी कर दी जावे, तो यह गुरुत्वाकर्षण केवल पहले का चौथा भाग हो जाता है, और अगर इनकी संहतियों को दुगुना किया जावे, तो इन दोनों का परस्पर बल चौगुणा हो जाता है। यह सूत्र ज्योतिष में और आधुनिक गणित विद्या में अति लाभकारी प्रसिद्ध हुआ है। इससे न केवल जाने हुए ग्रहों की ठीक-ठीक तोल नाप हो सकती है, अपितु नए ग्रहों की जानकारी भी हो जाती है। आखिरी ग्रह 'प्लूटो' इसी सिद्धांत अनुसार प्रथम आसमान में अंकित किया गया था, और फिर इसके पश्चात् ही उसी स्थान पर दूरबीन से देखा जा सका। किसी सिद्धांत की उपयोगिता इसी में हो सकती है, कि इससे नए-नए आविष्कार हो सकते हैं। उपर्युक्त कथन का सार यह है कि हर शुभ कार्य के अन्दर एक अपना आप है, जो खोजी है, जो खोज करता है दूसरे एक इस खोज को परखने वाला है अर्थात परखैया है, जो योग्यता को देखकर सत्यज्ञान का संचार करता है। और तीसरे एक शरीर है जिस के द्वारा ऐसे प्राप्त किए हुए ज्ञान को प्रक्रिया में लाकर इसको प्रत्यक्ष किया जाता है। इन तीनों का ठीक योग ही किसी मनुष्य की 'मैं' हुआ करती है, परन्तु यह भी ठीक है, कि इस संसार में बहुत ऐसे लोग हैं, जो केवल बाहर के आदेश से ही अपने कार्य को करते हैं, कुछ ऐसे भी हैं जो अपनी मनमानी करते हैं, और तीसरे प्रकार के वह मनुष्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं, जो नेता माने जाते हैं क्योंकि ऐसे पुरुष अपने अन्दर के पाए हुए प्रकाश को प्रयोगों द्वारा सिद्ध करके कार्यों में प्रवृत्ति होते हैं।

इसके प्रकरण में प्राचीन काल की एक कथा है। महर्षि याज्ञवल्क्य जब आयु के चौथे भाग को पहुँचकर संन्यासाश्रम में प्रवेश कर घर से निकलने लगे, तो उनकी स्त्री **मैत्रेई** ने पूछा, कि आप कहां जाएंगे, तो उत्तर दिया कि परमात्मा की खोज में। फिर पूछा कि, वह परमात्मा कहाँ है ? और कहां जाकर ढूंढ़ोगे ? इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा :

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्।
आत्मनोन्तरोयमयति, स त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।

यह बृहदारण्यकोपनिषद् का वचन है। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि मैं उस परमात्मा की खोज में चला हूं, जो जीवात्मा में स्थित है, और इससे भिन्न है। परन्तु वह मूढ़ जीवात्मा नहीं जानता कि मैं उसका शरीर हूं। यही परमात्मा इस जीव में व्यापक होकर इसका साक्षो होकर इसको ज्ञान की किरण से जगमगा देता है। इसकी योग्यता की परीक्षा लेता है। इस अमृत परमात्मा को जो तेरे भीतर है जान।

क्या इसका जानना कठिन है। हां, जैसे पहले वर्णन किया गया है। यह जीव से भी अति सूक्ष्म होने के कारण इसकी जानकारी कठिन है। इसके संकेत केवल हृदय अथवा दिमाग की पृष्ठभूमि पर ही लिखे जाते हैं ऐसे संकेतों के समझने के लिए बड़े परिश्रम की आवश्यकता हुआ करती है। ऋषियों का अनुभव है कि इस भीतरी ज्ञान के लिए दोनों प्रकार की विद्या को (परा और अपरा) श्रद्धा और तप से जानना जरूरी है। इस सिद्धान्त के अनुसार परमात्मा सर्वव्यापक होता हुआ भी शरीरधारी माना गया है। परन्तु इसके कई शरीर हैं। जैसे प्रकृति एक होते हुए भी कई पदार्थों में देखी जा सकती है, ऐसे ही सर्वव्यापक परमात्मा एक होता हुआ भी अपना कार्य अथवा अपनी आकांक्षा कई प्राणियों द्वारा विकसित करता है। इसी कारण ईश्वर के सर्वव्यापक होने पर भी इसकी खोज के लिए लिए याज्ञवल्क्य को अपने आत्मा की आत्मा में ही खोज के लिए संन्यासाश्रम में प्रवेश करना पड़ा है। जैसे हम अपने को बिना विज्ञान

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अथवा मनोविज्ञान के नहीं समझ सकते, ऐसे ही उस सर्वव्यापक परमात्मा की आकांक्षा अथवा उसके विज्ञान को नहीं पा सकते, जब तक कि हम अपने-आपको उसके स्तर तक न ले जावें। अर्थात् उसके किए हुए या हमारे दिमाग पर बनाए हुए सङ्केत हम समझ न सकें। इसी ज्ञान के लिए तप श्रद्धा और विज्ञान की आवश्यकता हुआ करती है। और जैसा कि न्यूटन आदि के सम्बन्ध में कहा गया है, **'जिन खोजा तिन पाइयां।'** क्या ? सर्वज्ञान अथवा सर्वज्ञ। इस सर्वज्ञ में ही 'मैं कौन हूं' की झलक है। उपर्युक्त भीतरी ज्ञान शक्ति का विचार जिसका न्यूटन आदि के उदाहरणों द्वारा वर्णन किया है, वह केवल वैज्ञानिक क्षेत्र से ही सम्बन्धित नहीं, अपितु इसकी अनुभूति हर योग्यता प्राप्त किए हुए पुरुष स्त्री के अन्दर हो सकती है। उदाहरणतः हम आपको श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की संवेदना को समझने के लिए उनके कुछ भाव प्रस्तुत करते हैं—

"I felt sure that some Being who comprehended me and my world was seeking his best expression in all my exeriences... To this Being I was responsible; for the creation in me is His as well as mine... I felt that I found my Religion of man, in which the infinite became defined in humanity and came close to me so as to need my love and co-operation.

मुझे दृढ़ विश्वास है कि मेरे भाव और मेरी लेखनी किसी भीतरी महाचेतन शक्ति से ही प्रेरित हो रही है। यही चेतन शक्ति मुझे अपना शरीर बनाकर संसार के अपने प्रकाश को विकसित कर रही है। इसी चेतना का मैं उत्तरदायी हूं। क्योंकि मेरी सारी लेखनी उसकी सहायता का ही परिणाम है। और इसके अतिरिक्त मैंने इसकी ही सहायता से अपने उस धर्ममत को जिसको मानवता कहते हैं, पा लिया है। यह सत्य है कि मनुष्य के शरीरों में ही जीवात्मा सहित उसने अपने को प्रकट करना ही ठीक समझा है, इसी कारण वह मेरे अति निकट हो गया है। और मेरे ही से अपने ज्ञान का विस्तार कर रहा है। इसलिए उस महाशक्ति के साथ सहयोग करना और अपने प्रेम की आहुति देना ही मेरा कृत्य है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सृष्टि उत्पत्ति १०

पुरःस्थापना—पूर्व अध्यायों के वृत्तांत से आप जान गए होंगे कि समष्टि जीवन कई प्रकार से अभिव्यक्त होता हुआ अन्त में उस उत्कृष्ट प्राणी में समाप्ति हो गया है, जो इसके भेद के समझने का भी प्रयत्न कर रहा है। मैं क्या हूं? मेरा अन्य प्राणियों के साथ क्या सम्बन्ध है? मैं कब इस पृथ्वी पर आया आदि? यह ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर कुछ सीमा तक इसने समझ लिया है। प्रस्तर युग से लेकर लौह युग तक कोई चौदह लाख वर्ष बीत चुके हैं। इस लम्बे काल में इसने प्रकृति के साथ एक अविरल युद्ध छेड़ रखा है। प्रकृति का गुण जड़ता है। अपने इस स्वाभाविक गुण के कारण यह अपनी स्थिति को स्थिर रखना चाहती है। इसकी वास्तविक अवस्था अव्यक्त रूप है, जो प्रलय से भी परे है, इसलिए यह हमें व्यक्त रूप से प्रलय की ओर दौड़ती हुई स्पष्ट दिख रही है। संसार में सर्व शक्तियों का प्रवाह जो दृष्टिगोचर हो रहा है, इनका अंतिम परिवर्तन ऊष्मा में ही हुआ करता है, और ऊष्मा का हर प्रकार की ऊर्जा में। परन्तु ऐसी प्रक्रिया में ऊष्मा का प्रकीर्णन इस प्रकार हो रहा है, जिससे यह निष्क्रियता को प्राप्त होती जा रही है। कारण यह कि 'ऊष्म गतिकी' के द्वितीय नियम (Second Law of Thermodynics) के अनुसार विश्व में ऊर्जा का विस्तार इस प्रकार हुआ करता है, जिससे कि यह सोलपोल (बेकार) होती जाए। यही कारण है कि समुद्र के पानी में ऊष्मा के रूप में अतिरेक ऊर्जा के होने पर भी इसको किसी प्रयोग में नहीं लाया जा सकता, क्योंकि समुद्र में ऊष्मा की स्थिति समान ताप पर है। समान अवस्था में चाहे कारण रूप प्रकृति हो अथवा ऊष्मा निष्क्रिय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ही हुआ करती हैं।

जीवन सक्रिय है, और अपने-आपको प्रकट या अभिव्यक्त करने के लिए प्रकृति से मेल-मिलाप करता है। इनके परस्पर योग का फल गति है, जिससे प्रकृति द्रव्य रूप में ऊर्जा का का वाहन बन जाती है। जीवन इसको अभिव्यक्त करता है, इसको सत् रूप देता है, परन्तु प्रकृति जैसा पहले कहा है अपने स्वाभाविक गुणों से अव्यक्त रूप की ओर जाती है, असत् रूप धारण करने की ओर ही बढ़ती है। इसलिए स्वाभाविकतः सृष्टि प्रलय को प्राप्त होती है, परन्तु जीवन के सम्बन्ध से इसकी उत्पत्ति होती रहती है। अतः इस प्रकार उत्पत्ति तथा प्रलय का पर्याय चलता आ रहा है और चलता भी रहेगा।

सृष्टि उत्पत्ति—सृष्टि की उत्पत्ति का उपादान कारण त्रिगुणात्मक प्रकृति है, जो अव्यक्त रूप में हुआ करती है। इसके तीनों गुण साम्यावस्था में होने के कारण इसका अपने आप व्यक्त रूप में आना असम्भव ही है।

वेद ने इस अव्यक्त प्रकृति को भौतिक सृष्टि की रचना के लिए इसका परिवर्तन दो मौलिक कणों में बताया है, जो 'ऋत' और "सत्य" के नाम से सिद्ध हैं। ऐसा जान पड़ता है कि आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह वह कण हो सकते हैं जिनको मौलिक कण (Fundamental particles) और प्रतिकण (Anti particles) कहते हैं। वैज्ञानिकों का विचार है कि हर मौलिक कण का प्रति कण है। प्रयोग द्वारा कुछ प्रति कणों का प्रमाण भी मिला है। कहते हैं कि इनके अलग-अलग रहने से व्यक्त सृष्टि होती है, परन्तु इनके मेल से मौलिक कण पूर्णतः 'फोटान' (Photon) या प्रकाश के कण में बदल जाते हैं, जिससे ऐसा भी माना जाता है कि इस विश्व का एक प्रति विश्व (anti-universe) भी है, जिनके परस्पर मेल से यह व्यक्त-विश्व अव्यक्त हो सकता है।

सांख्यदर्शन में भौतिक सृष्टि की उत्पत्ति पुरुष और प्रकृति से बताई है, परन्तु सेन्द्रिय सृष्टि से लिए इनके अतिरिक्त २३ अन्य तत्त्वों को भी माना है। कुल २५ तत्त्वों से यह आत्मनाम सृष्टि की रचना कही है। यह २५ तत्त्व इस प्रकार हैं—पुरुष, प्रकृति, बुद्धि (महद्) अहंकार, पाँच ज्ञानेन्द्रिय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पांच कर्मेन्द्रिय, मन, पांच स्थूल भूत और पांच तन्मात्राएं (रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श)। इसी प्रकार न्याय में परमाणुओं से, योग में पुरुषार्थ से, मीमांसा में कर्म से और वेदान्त में पुरुष से सृष्टि की उत्पत्ति कही गई है।

आधुनिक विज्ञान और उत्पत्ति—आधुनिक भौतिक विज्ञान के अनुसार जगत् रचना, न्यायदर्शन की भांति परमाणुओं से ही मानी है।

आप जो चारों ओर तीन रूपी (ठोस, द्रव, गैसीय) पदार्थ देखते हो, इन की संख्या सहस्रों की हो सकती है। परन्तु यह सब तत्त्वों के योग से बनते हैं। आजकल इन तत्त्वों की संख्या १०३ तक पहुंच चुकी है, किन्तु वे तत्त्व जो अधिकतर यौगिक पदार्थों में पाये जाते हैं, गिनती में केवल ९२ है। यह परमाणु रूप में एक दूसरे के योग दान से कई प्रकार के पदार्थ बनाने की सामर्थ्य रखते हैं और यौगिक पदार्थों से परमाणु अपने प्राथमिक रूपों में भी अगल-अलग किये जा सकते हैं। इसलिए इनको रासायनिक तत्त्व तो कहा जा सकता है परन्तु भौतिक दृष्टि से नहीं। यह बात आप को नीचे दिए विवरण से स्पष्ट हो जायेगी।

परमाणुओं का आकार—जैसे ऊपर कहा गया है, परमाणु रासायनिक तत्त्व तो हो सकते हैं, किंतु भौतिकी दृष्टि से नहीं। कारण यह कि आधुनिक पर्यवेक्षणों द्वारा यहा सब अलग-अलग कणों से बने हुए पाए गए हैं। न्यून से न्यून यह दो कणों के परस्पर योग के परिणाम हैं। इन में से एक का नाम 'प्रोटान' और दूसरे का इलैक्ट्रान हैं। यह दोनों ही विद्युन्मय है। इनमें से प्रोटान धन आवेषित और इलैक्ट्रान ऋण आवेषित है। परन्तु धन और ऋण आवेशों की मात्रा बराबर की होने से अणु निरावेषित हो जाते हैं। हां, इन की द्रव्य मात्रा या संहति में बड़ा अन्तर होता है। इलैक्ट्रान की अपेक्षा प्रोटान कोई दो हजार गुणा भारी होता है। जिससे स्पष्ट है, कि किसी परमाणु का भार केवल इस प्रोटान का ही फल है। इस को थोड़ा और समझने के लिए हम आप को हाईड्रोजन आदि के परमाणुओं के आकार और रूप को वर्णन करते हैं—

हाईड्रोजन एक गैस है, जो जस्त और हल्के गंधकाम्ल के मिलाने से उत्पन्न होती है। सब से हलका पदार्थ होने के कारण इसका घनत्व न्यूनतम है। वायु इस गैस से कोई चौदह गुणा भारी है। बच्चे इसको छोटे-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

छोटे बेलूनों में भर कर जब छोड़ देते हैं, तो यह काफी दूर तक हवा में उड़ जाते हैं।

इसका हर एक परमाणु एक प्रोटान और एक इलक्ट्रान से बनता है। प्रोटान परमाणु का बीज-केन्द्र है, जिसको नाभिका (Nucleus) कहते हैं। इससे कुछ दूरी पर ऋण आवेषित इलैक्ट्रान रहता है। परन्तु यह एक जगह पर ठहरा हुआ नहीं। प्रोटान के गिर्द यह इस प्रकार घूमता रहता है, जैसे पृथ्वी या अन्य ग्रह सूर्य के गिर्द। वास्तव में सब परमाणु लघु-रूप में सूर्य मण्डल हैं। जैसा ऊपर वर्णन किया गया है, परमाणु की कुल संहति (mass) केन्द्रीया नाभिका में स्थित रहती है, और नाभिका अति न्यूनतम होता है। परन्तु परमाणु का आकार इसकी अपेक्षा बहुत बड़ा होता है। इन दोनों के आकारों के परस्पर सम्बन्ध को समझने के लिये, आप एक गोल कमरे का अनुमान करें, जिस का अर्द्ध-व्यास कोई १२५ गज हो, तो ठीक इसके बीच में रखा हुआ एक बाजरे का दाना परमाणु के नाभिका के समान होगा। चूंकि हर वस्तु साथ-साथ रखे हुए परमाणुओं ही से बनती है, इसलिए किसी वस्तु की संहति उपर्युक्त सादृश्य अनुसार १२५, १२५ गज की दूरी पर रखे हुए बाजरे के दानों के समान बिखरी हुई ही हो सकती है। इससे सिद्ध है कि परमाणु या इससे बनी वस्तु आकाश में केवल एक खोखलापन ही है। क्या वस्तुएं ऐसी ही दिखाई दे रही हैं ? नहीं, नहीं। कारण यह कि किसी वस्तु का अस्तित्व इन्द्रियों का विषय नहीं। हां, इन्द्रियों के संयोग से पाई हुई जानकारी ही सूक्ष्म तत्त्वों के ज्ञान का मूल हुआ करती है।

जब हम वस्तुओं के अणुओं अलग-अलग भाग अर्थात परमाणुओं के भार का माप-तौल करते हैं, तो ऐसा जान पड़ता है, कि सब परमाणु भिन्न-भिन्न गिनती के प्रोटानों से बने हुए हों और इनकी संख्या की विभिन्नता के कारण ही परमाणुओं में अलगता आ गई हो, जिससे कि इन परमाणुओं से बने हुए पदार्थ भी कई प्रकार के हो जाते हैं। कैसी आश्चर्यजनक सृष्टि है कि एक जैसे प्रोटानों और इलैक्ट्रनों से बनी वस्तुएं केवल इनकी संख्या के अन्तर से कई प्रकार की वस्तुएं दृष्टिगोचर हो रही हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हिमालय गैस—यह हाईड्रोजन की भाँति ज्वलनशील नहीं, अपितु अक्रिय है। इसका भार लगभग चार प्रोटानों के भार के बराबर है, जिससे यह माना जाता है, कि यह चार हाइड्रोजन के परमाणुओं से बनी हुई है। परन्तु इसके गिर्द घूमने वाले केवल दो ही लैक्ट्रान है, जो इसको निरावेषित बना देते हैं। इससे स्प्ट है कि इसकी नाभिका में चार प्रोटान में से केवल दो पर धनत्व आवेश है और बाकी दो निरावेषित ही होगें। प्रारम्भ में ऐसे निरावेषित कण किसी परमाणु से अलग-अलग हुए न मिलने के कारण इनकी कोई अलग हस्ती नहीं समझी गई। परन्तु ईस्वी सन् १९३२ में इनका भाव स्वतंत्र रूप से प्रयोग द्वारा स्पष्ट हो गया था जिसका नाम न्युट्रान रखा गया परन्तु नाभिका के बाहिर इनकी आयु केवल सौ सैकण्ड ही पाई गई। फिर भी यह बड़ा शक्तिशाली क्षमतापूर्ण है। प्रोटान जब किसी परमाणु की नाभिका से बाहर आता है तो अपनी संहति और गति के बड़े वेग के कारण धातु जैसे पदार्थों के अन्दर घुसने की क्षमता रखता है। परन्तु यह किसी कण के नाभिका से टक्कर नहीं खा सकता। कारण यह कि यह दोनों धन आवेषित होने से इनमें प्रतिकर्षण होता है। इसके विपरीत न्युट्रान की आयु अतिन्यून होते हुए भी निरावेषित होने के कारण किसी पदार्थ के अणुओं की नाभिकाओं को टक्कर मार इनके टकड़े-टुकड़े कर सकता है, जिससे अन्न पदार्थों की उत्पत्ति हो जाती है। कभी-कभी यह नाभिका के अन्दर-घुस कर वहीं जम जाता है। उदाहरणार्थ आप परमाणु बम के सिद्धान्त की ओर ध्यान दें जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

युरेनियम एक खनिज पदार्थ है। इसके परमाणुओं में ९२ प्रोटान होते हैं, परन्तु न्युट्रानों की संख्या १४२ से १४६ तक हो सकती। इससे स्पष्ट है कि ऐसे परमाणुओं का भार तो अलग-अलग हो सकता है, परन्तु आवेषित प्रोटान सब में बराबर हुआ करते हैं। चूंकि किसी वस्तु का गुण कर्म इस के आवेश पर निर्भर है, इसलिए यह सब यूरेनियम ही होते हैं। इनमें से दो जिनमें न्युट्रान की संख्या क्रमशः १४३ व १४६ होती है, बड़े प्रसिद्ध है। यह दोनों परमाणु-भार के अनुसार युरेनियम २३५ व युरेनियम २३८ के नामों से सिद्ध हैं। साधारणतः यह मिले-जुले रहते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं। एक सहस्र ग्राम में युरेनियम २३ केवल सात ग्राम ही हुआ करता है बाकी का भाग युरेनियम २३८ होता है। इनके रासायनिक गुण समान होने से इनको रासायनिक क्रिया से अलग अलग करना असम्भव है। हाँ इनके भार में कुछ विभिन्नता होने के करण इनको एक विशेष यंत्र द्वारा अलग-अलग किया जा सकता है।

जब कोई न्युट्रान साधारण युरेनियम में प्रवेश करता है, तो २३८ वाले अणु इसको अपने अन्दर जज्ब कर लेते हैं। परन्तु २३५ वाले अणु के दो टुकड़े हो जाते हैं। जिससे यह दो अलग-अलग पदार्थों में बदल जाता है। इनमें से एक का नाम क्रुपटान है जिसमें ३६ प्रोटान और ५५ न्युट्रान होते हैं, और दूसरे में जिसका नाम हैं बेरियम, ५६ प्रोटान और ८६ न्युट्रान होते हैं। बाकी बचते हैं, दो न्युट्रान। यह स्वतन्त्र होकर अन्य दो २३५ वाले परमाणुओं को ध्वस्त करके इनसे निकले हुए चार न्युट्रान से आठ परमाणुओं को और फिर इनसे निकले सोलह को ध्वंसी क्रिया के लिए सक्रिय कर देते हैं। यह पर्याय ऐसा ही चलता ही जाता है। हर परमाणु के टूटने से कुछ ऊर्जा भी निकलती है। और यह भी देखा गया है, कि इस ऊर्जा के समानार्थक परमाणु की संहति भी कम हो जाती है। इससे यह भी सिद्ध है कि ऊर्जा द्रव्य का एक अव्यक्त रूप ही है।

आईन्स्टाईन ने गणित द्वारा सिद्ध किया कि अगर समानार्थक ऊर्जा 'ऊ' हो, कण की संहति 'स' और प्रकाशक का वेग 'व' हो तो

$$ऊ = स \times व^2$$

इस सिद्धान्त के अनुसार ५ ग्राम (लगभग पांच मासे) द्रव्य से जो ऊर्जा हमें प्राप्त हो सकती है, वह एक २००० अश्व शक्ति वाले इंजन को एक शती पर्यन्त चला सकती है। या यों समझ लीजिए कि एक रुपये में जितनी चांदी या अन्य धातु है, इसमें समानार्थक ऊर्जा इतनी है, कि २५० वाट के एक हज़ार लैम्प तीन सौ वर्ष तक प्रज्वलित रखे जा सकते हैं।

परन्तु परमाणु बम को बनाने के लिए उपर्युक्त न्युट्रान का पर्याय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कुछ देर तक चलना चाहिए। इसके लिए युरेनियम २३५ की न्यूनतम मात्रा की भी आवश्यकता है जिसका अन्दाजा कोई पन्द्रह किलोग्राम का है इस प्रक्रिया में जो ऊर्जा निकलती है, इसका एक परिणाम उष्मा है, जिसका ताप कम से कम एक करोड़ डिग्री तक होता है। बम में यह क्षण भर के लिए उत्पन्न होता है, परन्तु इतना भयानक होता है कि इससे एक मील दूर खड़े मनुष्यों के शरीर झुलस सकते हैं। और वायु का इतना दबाव हो जाता है कि आदमी मीलों दूर फेंके जा सकते हैं। ऐसा वृत्तान्त जापान के एक नगर हिरोशीमा के सम्बन्ध में मिलता है, जहां पर कि ऐसा परमाणु बम अमेरिका ने गिराया था। उद्रजन या हाईड्रोजन बम से जो ऊष्मा की उत्पत्ति होती है, उससे ताप जैसा पहले वर्णन किया गया है, कोई एक करोड़ डिग्री से भी अत्यधिक होता है। इतने ताप पर कोई परमाणु-परमाणु नहीं रह सकता। वस्तुएं कण रूप में हो जाती हैं अर्थात प्रोटान और इलैक्ट्रान का गतिशील झुरमुट-सा बन जाता है। गुरुत्व आकर्षण के कारण नाभिकाओं के साथ-साथ होने से पदार्थों का घनत्व करोड़ों गुना बढ़ जाता है। एक दियासलाई की डिबिया में रखे हुए ऐसे द्रव का भार एक करोड़ टन से कम नहीं होता जिससे परमाणुओं में परस्पर कुछ अद्भुत रासायनिक क्रिया हो जाती हैं। उदाहरणार्थ अगर हाईड्रोजन वहां हो, तो इसका परिवर्तन हिलियम में हो जाता है। और फिर इस प्रक्रिया में कुछ संहति उर्जा में भी बदल जाती है। ताप बढ़ जाता है। ऐसी विशेष योजना के अनुकूल बनाया हुआ यन्त्र हाईड्रोजन या उद्रजन बम कहलाता है। ऐसा बम पहले कथित बम से दस गुना अधिक भयानक होता है। यह याद रखें कि परमाणु बम में परमाणु का टूटना है, जिससे कुछ ऊर्जा निकलती है, और यह क्रिया केवल उन पदार्थों में होती है, जिनके नाभिकाएं बहुत भारी हों। इसके लिए यह जरूरी है कि परमाणु की नाभिका में कम से कम ८८ प्रोटान हों, जैसे रेडियम में। युरेनियम में ९२ होते हैं। परन्तु वह परमाणु जिनमें बहुत थोड़े प्रोटान होते, संगलन (fusion) क्रिया से अन्य पदार्थों में बदल जाते हैं। और साथ ही ऊर्जा की भारी मात्रा भी प्रकिरण हो जाती है।

इस उपर्युक्त वृत्तान्त का सारांश यह है कि आधुनिक विज्ञान अनु-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सार नाभिकाओं के एक प्रकार के सादे और सरल हाईड्रोजन के परमाणुओं के संगलन के कारण भारी परमाणु बनते रहते हैं जिसके लिए एक करोड़ से बीस करोड़ डिग्री ताप की ज़रूरत होती है। और जब परमाणु काफी भारी हो जाते हैं, तो यह स्वयं टूट कर या न्युट्रान द्वारा इनका विस्फोट होकर अन्य पदार्थों में तबदील हो जाते हैं। ऐसी क्रियाओं से सब प्रकार के पदार्थ जो दृष्टिगोचर हो रहे हैं, बनते रहते हैं। परन्तु ऐसी प्रक्रियाओं के स्थान यह सब सूर्य आदि दीप्तिमान लोक हैं। इस लिए आओ इनका भी कुछ परिचय प्राप्त कर लेवें।

—वेद में कहा गया है, कि।

असौ वा आदित्यो ब्रह्म (यजु, १३, ३)

अर्थात प्रकृति का अब रूप आदित्य है, और सृष्टि का मूलमंत्र है। पृथ्वी पर तो सेंद्रिय जगत का आरम्भ इसी से है। इसलिए हर प्रकार की सृष्टि की जानकारी के लिए सूरज का कुछ ज्ञान अत्यावश्यक है। सूरज के अस्तित्व को थोड़ा और स्पष्ट करते हुए श्रुति ने यह भी बताया, कि—

सूर्यो ज्योतिः ज्योतिः सूर्यः स्वाहा
सूर्यो वर्चो ज्योतिः वर्चः स्वाहा
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा

अर्थात सूर्य का प्रकाश जो है, वही प्रकाश ही सूर्य है, इसको समझिए। सूर्य का जो तेज है (जीवन का आधार है) वही प्रकाश सूर्य है, इसलिए ज्योति ही सूर्य है, और जो है,वही ज्योति है। इसको समझिए। इससे स्पष्ट है, सूर्य प्रकाश या तेज का स्रोत ही नहीं, अपितु केवल प्रकाश या तेज ही है। वास्तव में सूर्य से प्रकाश या तेज के रूप में शक्ति का एक अविरल प्रवाह कम से कम दो अरब वर्ष से चलता आ रहा है, और कम से कम इतने या इससे अधिक समय तक चलता भी जाएगा। परन्तु फिर प्रश्न होता है, इतने प्रकाश का कारण क्या है। कहां से आकर यह सब प्रकाश इकट्ठा हो गया है ? श्रुति में जो इसका उत्तर मिलता है वह है कि इसका कारण एक सर्व व्यापक सर्वशक्तिमान ईश्वर है, जिसकी शक्ति से यह ऋत और सत्य रूप हुई प्रकृति चमकते हुए सूर्य में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बदल गई । जैसा ऋग्वेद में आया है, कि

ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।

अर्थात, यह प्रज्वलित या चमकते हुए ऋत और सत्य (उसके) ज्ञान रूपी तप से उत्पन्न हुए । श्रुति अनुसार, यह स्पष्ट है, कि त्रिगुणात्मक प्रकृति को सत् रूप धारण करने से पहले यह कण रूप में हुई । ऐसा जान पड़ता है, कि इन कणों की उत्पत्ति से गुरुत्वाकर्षण शक्ति का प्रवाह इस आकाश में उमड़ पड़ा हो, जिसके कारण कणों में परस्पर आकर्षण उत्पन्न हो गया हो । इससे कणों में गति उत्पन्न हो जाती है, अर्थात आकर्षण से गतिज ऊर्जा का उत्पादन हो जाता है, और फिर इसका परिवर्तन ऊष्मा और प्रकाश में । इस प्रकार आकर्षण के कारण चमकते हुए कणों में संघनन होकर नीहारिकाओं का विकास हो जाता है । अब इन्हीं नीहारिकाओं के अन्दर स्थान-स्थान पर कणों के खून संघनन के कारण चमकते तारे या सूरज बनने लग जाते हैं । नीहारिकाओं में मूल कण हाईड्रोजन में बदल जाते हैं । इसलिए सूर्य आदि चमकते हुए हाईड्रोजन के परमाणुओं के समूह ही माने जाते हैं । हां, जब किसी सूर्य के अन्दर का ताप एक दो करोड़ डिग्री हो जाता है, तो इस गैस का परिवर्तन हिलियम में होना आरम्भ हो जाता है । ज्यों-ज्यों सूर्य पुराना होता जाता है, इसमें हिलियम की मात्रा भी बढ़ती जाती है । और यह दोनों पर्यायवाची होने के कारण हिलियम की मात्रा से किसी सूर्य या तारे की आयु भी जानी जा सकती है । आधुनिक विचारधारा के अनुसार प्रकृति का रूप इस प्रकार है—

डाईराक (Dirac) एक प्रसिद्ध अंगरेज भौतिक विज्ञान का विशेषज्ञ है । इसने गणित द्वारा यह देखा कि जब कोई कण कारण-प्रकृति (Background material) से उत्पन्न होता है, तो इसके साथ ही इसका प्रतिकण (Anti Particle) भी उत्पन्न होना चाहिए । यह एक बड़ी उलझन थी । इसका सुलझाव जो डाईराक ने दिया वह यह है कि कारण-प्रकृति एक अनन्त अगाध अलौकिक इलैक्ट्रोनों का समुद्र है और जो पारदर्शक, घर्षण रहित अद्भुत पदार्थ है, जिसका द्रव्य ऋणात्मक है, अर्थात बल लगाने से यह पीछे की ओर चलता है । अजीब सा पदार्थ है । ऐसा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पदार्थ बुद्धि से परे है, क्योंकि व्यावहारिक दृष्टि से इसका होना असम्भव है। फिर भी दो विरोधी कणों की एक बार उत्पत्ति के सुलझाव के लिए ऐसे सिद्धांत को स्वीकार्य ही किया गया। प्रयोग द्वारा इन दोनों प्रकार के कण मिल भी गए हैं। अर्थात इलैक्ट्रान और पाजिट्रान जो एक दूसरे के प्रति वस्तु हैं, दोनों ही प्रयोग द्वारा विद्यमान पाए गए हैं। यह इस अथाह समुद्र से कैसे उत्पन्न हुए? इसका सुलझाव जो 'डाईराक' ने प्रस्तुत किया वह इस प्रकार है—जब इस कण-समुद्र में इसके किसी एक इलैक्ट्रान पर किसी बाह्य वल पर प्रहार होता है, तो यह इलैक्ट्रान अपने स्थान से अलग हो जाता है। पहले इसकी ऋणात्मक ऊर्जा नष्ट हो जाती है जिससे यह एक निष्क्रय कण हो जाता है। इससे अधिक बल से यह एक सक्रिय कण बन जाता है। परन्तु इसके निकलने से समुद्र में जो छेद-सा बन जाता है, वह दूसरे स्थानों की अपेक्षा धन आवेषित अथवा धनत्व संहति वाला कण माना जा सकता है। इस प्रकार इस अगाध समुद्र से भारी कण बनाने के लिए अधिक बाह्यबल की आवश्यकता होती है और प्रयोग द्वारा प्रतिप्रोटान जैसे भारी कण भी निकल गए हैं, और यह भी देखा गया है, कि ऐसे कणों की उत्पत्ति से प्रति-प्रोटान भी उग पड़ते हैं।

हमारे धार्मिक विचार के अनुसार इस बाह्य बल का कारण एक सर्वव्यापक ज्ञानमय शक्ति है, जिसे इस बात का पूर्ण ज्ञान है कि किसी कण के वनाने के लिए कितने बल की जरूरत है। हम भी इस शक्ति की मात्रा को गणित द्वारा जान सकते हैं। परन्तु मालूम होता है कि ऐसे मूल कण किसी नियम के अनुसार हाईड्रोजन गैस में बदल जाते हैं और यह गैस ही इस वक्त इस खगोल वा 'डाईराक समुद्र' में समा जाती है। जैसे पहले वर्णन किया गया है, इसी गैस से नीहारिकाओं की उत्पत्ति हो जाती है। और फिर इन्हीं नीहारिकाओं में हाईड्रोजन के परमाणुओं के संघठन से इन चमकते हुए तारों की उत्पत्ति हो जाती है। यह तारे सूर्य हैं जो हमारे सूरज की तुलना में वड़े भी हैं, छोटे भी, बालक भी हैं, और आयु में वृद्ध भी। यह श्वेत, लाल और नीले रंग के होते हैं। आयु के अनुसार इनमें भिन्न-भिन्न रासायनिक क्रियाएं भी होती रहती हैं, इसलिए इनका ठीक-ठीक अध्ययन करने के लिए इनकी बांट कई श्रेणियों में की गई है,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जैसे श्वेत बौने, काले बौने, लाल दैत्य, अधि दैत्य आदि। जब कोई नीहारिका ऐसे तारों से भरपूर हो जाता है तो उसे ब्रह्मांड कहते हैं। इस अन्तरिक्ष के उस भाग में, जो बड़ी से बड़ी दूरबीन से देखा जा सकता है, कोई दस करोड़ के लगभग ब्रह्मांड माने गए हैं और हर ब्रह्मांड में अरबों तारे। हमारे ब्रह्मांड में इनकी गिनती दस अरब के लगभग है। क्या इस तारों में मनुष्य आदि सृष्टि है ? हरगिज नहीं। क्योंकि श्रुति के अनुसार जिसके प्रमाण का उल्लेख पूर्व हो चुका है, यह केवल प्रकाश अथवा तेज के भण्डार हैं।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह सब सूर्य एक प्रकार की भट्ठी हैं, जिसके अन्दर का ताप कम-से-कम दो करोड़ डिग्री है, और जिसमें हाईड्रोजन गैस हिलियम में बदलती जा रही है। इसके साथ ही इसका कुछ भाग ऊर्जा में भी बदलता जा रहा है, जिसका अविराम प्रवाह तेज और प्रकाश के रूप में बनता हुआ सारे विश्व का आधार हो रहा है। इस पृथिवी पर तथा अन्य स्थानों में जितनी शक्तियां जान पड़ती हैं, इन सब का यह प्रवाह ही स्रोत है, जो बहता जा रहा है, परन्तु वृक्ष तथा हर प्रकार की वनस्पति इसको जज्ब कर सकती है, और सामयिक आवश्यकता के अनुसार कोयले तेल लकड़ी के रूप में काम में लाई जा सकती है। इस प्रकार इनका तेज सर्वव्यापक होने से यह 'वसु' कहलाते हैं और साथ ही वसुधाओं के उत्पादक भी माने जाते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि किसी तारे या सूर्य की आकृति बाह्य वातावरण के अनुसार बदलती रहती है। जब इसे काफी हाईड्रोजन मिल जाती है, तो इसका आकार भी बढ़ जाता है। इससे गैस की खप्त भी अधिक होती है। जिससे खूब चमकने लगता है। परन्तु गैस के कम मिलने से यह अपने अन्दर गैस को खाना शुरू कर देता है। खूब खाता है जिसके कारण यह दैत्य कहलाता है। आतिशबाजी के स्फुलिंगी चक्र की तरह घूमते-घूमते अपने चारों ओर चमकते हुए टुकड़ों को बिखेरता भी रहता है। कई बार इससे एक आध बड़ा-सा टुकड़ा काटकर कोई एक करोड़ मील प्रति घंटा की गति के वेग से उड़ भी जाया करते है। इससे इसके अन्दर की उद्दीप्ति स्पष्ट देखी जा सकती हैं। इस वक्त इसका नाम साधारण नोवा (Simple

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Nova) रखा गया है।

कई बार ऐसा भी देखा गया है कि जब इस दैत्य ने अपनी सारी सम्पत्ति को खा डाला, तो यह सुकड़ना शुरू कर देता है, जिससे इसका ताप कोई तीन सौ गुणा बढ़ जाता है। इस वक्त इसके अन्दर कई प्रकार की रासायनिक क्रियाओं का आरम्भ हो जाता है। हिलियम का अब कई अन्य पदार्थों में बदलना शुरू हो जाता है जिससे सब प्रकार के तत्त्व बनने लगते हैं। ऐसी रासायनिक क्रियाओं में ऊष्मा का अवशोषण हुआ करता है, जिससे यह खूब सुकड़ जाता है, और जिसके कारण इसका घनत्व इतना बढ़ जाता है कि एक दियासलाई की डिबिया में पड़ा हुआ इसका द्रव्य कोई एक अरब टन हो सकता है। इस वक्त इसका नाम 'संकुचित अधिदैत्य' है। परन्तु अब यह असन्तुलितता के कारण एक बड़े भयानक धड़ाके के साथ फट जाता है और करोड़ों मील की रफ्तार से इसके टुकड़े और गैसीय द्रव्य आकाश में तितर-बितर हो जाते हैं। इसका नाम अब अधिनोवा या सुपरनोवा है। कभी-कभी इसका केन्द्रीय टुकड़ा अलग होकर कहीं दूर स्थान पर श्वेत बौने के रूप में चमकता रहता है। परन्तु जब यह अपनी ऊष्मा करोड़ों वर्ष के पश्चात् खो देता है, तो यह फिर 'काला बौना' बनकर आकाश में अनजाने हा घूमता रहता है।

परन्तु जो गैसीय द्रव्य है, वह किसी निकट के तारे से आकर्षित हुआ इसके गिर्द घूमना शुरू कर देता है। और फिर खण्डित होकर ठण्डे होने पर ग्रहों का रूप धारण कर लेता है। ऐसे ही हमारी वसुन्धरा (पृथ्वी) है। क्या ऐसी और भी पृथ्वियां हैं, जैसे हमारी, और क्या उनमें ऐसे ही जीव-जन्तु और ऐसी ही मनुष्य-सृष्टि हो सकती है? इसका उत्तर जो तारा विज्ञान विशेषज्ञ देते हैं, वह यह है कि बड़ी सम्भावना है। कारण यह कि पर्यवेक्षों द्वारा ज्ञात हुआ है कि लगभग चार सौ साल में एक सुपरनोवा खण्डित हो जाता है। हमारे ब्रह्मांड की आयु इस समय तक चार अरब साल मानी गई है। इस अवधि में कोई एक करोड़ सौर-मंडल बन जाने चाहिए। अगर इनका दसवां भाग भी हमारे जैसे सौर-मण्डल हों तो कोई दस लाख ऐसी 'वसुधा' होनी चाहिए, जैसे हमारी पृथ्वी, जिसमें इसी प्रकार के जीव-जन्तु और सृष्टि हो सकती है। इसी प्रकार दस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करोड़ अन्य ब्रह्मांडों में भी। इसलिए इस दृश्यमान अन्तरिक्ष में कम-से-कम दस पद्म या एक सागर हमारी पृथ्वी जैसी वसुधाएं स्पष्ट हैं। इन सब में हमारे जैसे आदमी हो सकते हैं, जिनके ज्ञान का स्रोत एक ही है, और वह है यही वेद, जिसका बोलबाला इस पृथ्वी पर है। क्या हम वहां पहुंच सकते या वह यहां आ सकते हैं? इसके उत्तर में कुछ कहा नहीं जा सकता है। निकट से निकट तारे को हम अपने जैसा सौर-मण्डल मान लेवें, तो भी वह इतनी दूरी पर है कि वहां से प्रकाश को यहां तक आने में चार साल लगते हैं। कुछ इतने दूर हैं कि वहां से रोशनी की किरण चली हुई आदि सृष्टि से लेकर अब तक यहां नहीं पहुंची। कोई स्थानीय वस्तु चाहे वह आध्यात्मिक हो या आधिभौतिक एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए समय मांगती है, और इस वक्त तक रोशनी की रफ्तार से किसी की रफ्तार अधिक नहीं मानी गई।

हां, कुछ ऐसा मानते हैं कि 'मन' काल और स्थान के बन्धन में नहीं, क्योंकि ऐसा देखा गया है कि केवल ध्यान में तत्काल हम सैकड़ों मील दूर स्थानों में तुरन्त पहुंच जाते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में यह भी देखा गया है कि 'मन' उन्हीं स्थानों में पहुंच सकता है, जो इसके देखे-भाले हों। अन्य स्थानों का भी सुनी-सुनाई बातों से भी अनुमान लगा लेता है, जो सही या गलत भी हो सकता है। ऐसे विचारों से जान पड़ता है कि मन दौड़ नहीं लगाता, वास्तव में यह अपने अन्दर अंकित किए हुए दृश्यों को ही देखता है। इससे यह भी जान पड़ता है कि शायद मनुष्य का अस्तित्व इस पृथ्वी पर ही मण्डल-नृत्य करता रहता हो। क्योंकि समय-समय ऐसी घटनाएं होती रहती हैं, जिसमें दो से पांच साल की आयु वाले बालक अथवा बलिकाएं अपने पहले जन्म की कुछ बातों को स्पष्ट जानते हों। परन्तु आवागमन न मानने वाले अथवा शरीर के बिना इसके किसी अस्तित्व को न समझने वाले ऐसी बातों में आस्था नहीं रखते। फिर भी मनोवैज्ञानिक ऐसी घटनाओं को न मानने के लिए भी कोई युक्ति नहीं देखते। इसलिए यह ऐसी घटनाओं को मन के किसी ऐसे गुण से सम्बन्धित कर रहे हैं जो साधारण मनोविज्ञान से परे हो। इस साइन्स का नाम परामनोविज्ञान है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपर्युक्त वृत्तांत से यह जान पड़ता है कि अगर आवागमन का सिद्धांत ठीक है, तो मनुष्य का फिर जन्म अपनी-अपनी वसुधाओं में होना चाहिए। परन्तु ऋषियों का विचार है कि किसी प्रेत का जन्म अन्य ब्रह्मांडों में भी हो सकता है। जैसे प्रश्नोपनिषद् के पांचवें प्रश्न के सातवें श्लोक में कहा गया है :—

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते।
तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परंचेति।

ऋग से इस पृथिवी पर, यजु से अंतरिक्ष में, साम से उस लोक में जो विद्वान् जानते हैं वह (मनुष्य) जन्म लेते हैं। और जो इन तीनों क अनुसार व्यवहार करते हैं, वह ओंकार के ही अवलम्बन में कहे जाते हैं, जिससे वह उस लोक में पहुंच जाते हैं, जहां पर अशांति नहीं, बुढ़ापा नहीं, मृत्यु नहीं और कोई भय भी नहीं। ऐसा उत्तम लोक इनके लिए है।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथम यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ।।

ऋग्वेद (१०, १२९, ४)

(सृष्टि की उत्पत्ति की) कामना से पहले यह बीज रूप-सी मन में पहले ही थी। (इसलिए) विद्वान् मननशील कवियों ने सत् (व्यक्त रूप) और असत् (अव्यक्त रूप) का बन्धुत्व खोज करके अपने हृदयों में पाया।

जैसे घड़े का प्रकाशक सूर्य घड़े के नाश हो जाने पर भी नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह का प्रकाशक 'आत्मा' देह के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपसंहार

देखा आपने ? यह "कौन" कितना बड़ा प्रश्नवाचक चिह्न बनकर कितने काल में कितने विद्वानों के सम्मुख खड़ा रहा है ? यह तो बीच का इतिहास आपने देखा। यह जिज्ञासा सृष्टि की आदि में ही उत्पन्न हुई थी और इसका उत्तर पाने के लिए इन्द्र को १०१ वर्ष का ब्रह्मचर्य करना पड़ा था।

हुआ यह कि सृष्टि की उत्पत्ति के बाद प्रजापति ने एक घोषणा की कि "जो यह आत्मा है वह निष्पाप, जराहीन, मृत्युरहित, शोक दुःखादि से शून्य, नियमादि में विरक्त है, यह सत्यकाम है, यह सत्यसंकल्प है, इसकी ही खोज करनी चाहिए। इसको जानने की इच्छा मन में रखनी चाहिए और प्रयत्न भी करना चाहिए। जो इसको जान लेगा उसे सभी लोक सुलभ हो जाएंगे, इसकी सभी कामनाएं पूर्ण हो जाएंगी।"

यह घोषणा देव और असुर दोनों ने ही सुनी। दोनों ने ही घोषणा के अनुसार अपना लक्ष्य बनाया कि हम "कौन" की समस्या को सुलझाकर देखेंगे। इसकी ही खोज करेंगे। असुरों का नेता था 'विरोचन' और देवताओं का नेता था 'इन्द्र'। दोनों नम्र होकर—बड़ी श्रद्धा निष्ठा और पूर्णसमर्पण की भावना अपने मन में लिए हुए पहुंच गए प्रजापति के पास। प्रजापति के चरणों में उन्होंने सर्वप्रथम बत्तीस वर्ष का ब्रह्मचर्य किया। प्रजापति ने पूछा 'क्यों, क्या बात है ? कैसे आप कठिन व्रत करने में लग रहे हैं ? आप लोगों की क्या कामना है ?" वे दोनों बोले "महाराज ! आपने आत्मा की परिभाषा बताते हुए, इसके स्वरूप का विवेचन करते हुए जो घोषणा की थी हम उसके अनुसार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोक आदि कामनाओं को प्राप्त करने की इच्छा से इस आत्मा की खोज करना चाहते हैं, उसका पता लगाना चाहते हैं।"

"य एषोऽक्षिणी पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति।"

समाधान प्रजापति ने दिया ३२ वर्ष ब्रह्मचर्य के उपरान्त। परन्तु ऐसा दिया जो न तो विरोचन के ही मन में। "अक्षिणि" का अर्थ उन्होंने समझा आँख में पानी भौतिकरूप में। सो, इन्द्र और विरोचन दोनों ने एक दूसरे की आँखों में झांककर देखा उन्होंने जो कुछ देखा वह ऐसा था कि जो पानी में भी दीखता है या जो दर्पणों में भी दीखता है। इसी लिए वे बोले कि "जो कुछ आँखों में दिखाई देता है क्या इसमें और पानी और दर्पण में जो दिखाई देता है इन दोनों आत्माओं में भिन्न है? प्रजापति समझ गए कि अभी इन दोनों की तपस्या पूरी नहीं हुई। तपस्या पूरी हो जाती, अन्तस पवित्र होता तो मेरी बात अभी समझ जाते। उन्होंने इस समस्या को क्रमिक रूप में सुलझाने का उपाय किया। वे बोले "किसी पानी भरे प्याले में अपना प्रतिबिम्ब देखो और यदि उसे न जान पाओ तो मुझे तुम फिर बताना।" वे वस्त्र, आभूषण आदि पहने हुए नहीं थे। देखा तो नख से शिख तक एक दीर्घ आकार दिखाई दिया। उन्होंने दोनों से फिर आधे वस्त्राभूषणादि धारण करके इसी प्याले में अपना रूप देखने को कहा उन दोनों ने आदेश का पालन किया।

"क्या देख रहे हो?" पूछा प्रजापति ने।

'बड़ा सुन्दर है, सुन्दर वस्त्रों से सज्जित है, अत्यन्त परिष्कृत है" दोनों बोले।

प्रजापति बोले—"यह आत्मा है, यह अमृत है, अभय है।"

परीक्षा लेने का प्रकार था यह एक। दोनों इन्द्र और विरोचन शान्त हृदय होकर चल पड़े।

प्रजापति सोचने लगे बिना आत्मा को पूरी तरह समझे-बूझे ही चल पड़े हैं यदि इसी प्रतिबिम्ब को आत्मा समझा तो ये कभी भी अपना लक्ष्य नहीं पा सकते।

देवताओं के नेता इन्द्र बीच में जाते-जाते साचने लगे—बिना कपड़े

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आभूषण पहने देखा था तो रूप कुछ और था अब कपड़े आदि पहनकर जो देखा तो भिन्नरूप है। पर आत्मा तो नित्य है, शाश्वत है, अमृत है। इस अविनाशी आत्मा में विकार ? कैसे सम्भव है ? विकारी तो कभी भी अविनाशी नहीं हो सकता। वे वापस लौट पड़े।

दूसरी ओर विरोचन ने प्रजापति के सच्चे मन के भावों को न समझ कर उनके शब्दों को अन्तिम सन्देश माना। उसने विवेचना नहीं की। "विरोचन" संभवतः अब भी इस असत्य की विवेचना नहीं कर पाता। विरोचन का तो अर्थ ही यह है जो यह देखे कि मैं कैसा लगता हूँ, सुन्दर लगता हूं कि नहीं, अच्छा मोटा, तन्दुरुस्त लगता हूं कि नहीं। इसी प्रकार उस विरोचन ने भी कोई विवेचना नहीं की। छान्दोग्योपनिषद् ने इस प्रसंग को इतने सुन्दर शब्दों में रखा है कि विरोचनवाद—भौतिकवाद बहुत स्पष्ट रूप में सम्मुख आ जाता है। विरोचन के शब्द ऐसे हैं कि उसका बल्लियों उछलता मन साफ दिखाई देता है मानो कोई बहुत बड़ा खजाना पा लिया जबकि वस्तुतः इसके हाथ लगा है घोंघा ही।

"आत्मेवेंह मह्य आत्म परिचर्य आत्मानमेवेह मध्यन्नात्मने परिचरन्नुभौ लोकाववाप्नोतीमञ्चामुञ्चेति।"

यह शरीर ही आत्मा है, "मह्यः" इसी की पूजा करो, "परिचर्य्यः" इसी की सेवा करो, पुष्ट करो इस शरीर की जो पूजा करेगा वह इस लोक को भी पालेगा उस लोक को भी।

विरोचन कितना खुश है। इसका "अन्वेष्टक", उसका "विजिज्ञासित्व्य" इसे मिल गया। ३२ वर्ष की तपस्या में ही उसने अपना लक्ष्य पा लिया। इस विरोचन की घोषणा को असुरों ने शिरोधार्य किया और लगे अपने शरीरों को पूजने और उसकी सेवा करने। अब भी विरोचन वाद के अनुयायी कम नहीं हैं। अपना स्वास्थ्य बनाने का अर्थ वे समझते हैं शरीर को मोटा बनाना। इसके लिए अंडे भी खा सकते हैं और मांस भी। शराब भी पी सकते हैं।

"आत्मैवेह मह्य"

विरोचन का बहुत सुन्दर नारा है। ये विरोचन के अनुयायी अपनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मा और बुद्धि और चेतना के मूल्य पर अपने शरीर को ही सोचते चले जाते हैं। शराब पीने से बुद्धि का लोप होता है—होने दो, कोई परवाह नहीं। हिंसा से आत्मा की अवनति होगी। आत्मा—कौन आत्मा—अरे यह शरीर ही तो आत्मा है—इससे अलग भी कोई आत्मा है ? और हिंसा करने में माँस खाने से तो यह आत्मा मोटी होती है ? अवनति कहां होती है ? झूठ बोलते हो कि हिंसा से आत्मा की अवनति होती है। यह है विरोचनवाद—असुर धर्म—आसुरी सभ्यता और संस्कृति जो आज के जमाने में भौतिकवाद और मैटिरियैलिज्म (Materialism) के रूप में इस धरती पर नाच रही है। छान्दोग्योपनिषद् का कितना स्पष्ट वर्णन है—

तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरोबतेत्यसुराणां ह्येवोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालंकारेणेति संस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं नेष्यन्तो मन्यन्त इति।"

अदानी, अश्रद्धालु और अयजमान आज भी शिष्टजनों के द्वारा 'असुर' कहे जाते हैं। क्योंकि यह उपनिषद् असुरों की है। वे मृत शरीर को ही अन्न-वस्त्र और अलंकार से सुसंस्कृत करते हैं और समझते हैं कि हम इस लोक को जीत लेंगे।

उपनिषद् की यह चेतावनी आज भी कितनी महत्त्वपूर्ण है। इस आसुरी सभ्यता ने जब वहुत से ऊटपटांग रोगों को पैदा किया तो इसके लिए चिकित्सा का मूल भी शरीर ही है इसलिए आयुर्वेद शास्त्रों ने चिकित्सा की इस पद्धति को आसुरी चिकित्सा का नाम दिया। यदि हमें आज की इन आसुरी परिस्थियों से विमुक्त होना है तो हमें विरोचन का मार्ग छोड़कर इन्द्र का मार्ग अपनाना होगा। इसलिए आइए हम इस रोचन को असुरों में नाचता-कूदता छोड़कर इन्द्र की ओर चलें।

इन्द्र को सन्देह हुआ तो वह देवताओं के पास तक गया भी नहीं, बीच में ही वापस प्रजापति के पास लौट आया।

"क्यों क्या बात हो गई ? इन्द्र ! तुम तो मेरी बात सुनकर शान्त होकर चले गये थे विरोचन के साथ—अब क्या बात हो गई ? कैसे वापस आ गए ?"—प्रजापति मुस्कराते हुए बोले।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महाराज ! कभी तो यह नंगा दीखता है, कभी बड़ी सजधज वाला। अच्छे कपड़े पहनो सुन्दर दीखने लगता है, कपड़े उतार दो नंगा हो जाता है। ऐसा विकारी आत्मा तो नहीं हो सकता ?" इन्द्र ने शंका की।

"ठीक कहते हो इन्द्र ! मैं इस आत्मा की और व्याख्या करूंगा, अपनी बात और स्पष्ट करूंगा पहले तुम ३२ वर्ष का ब्रह्मचर्य फिर करो ताकि तुम्हारा मन पवित्र हो जाए और मेरी बातों को यथार्थ रूप में समझ सको।

३२ वर्ष का ब्रह्मचर्य होने के बाद फिर जब इन्द्र प्रजापति के चरणों में उपस्थित हुए, प्रजापति ने कहा—"यह जो स्वप्न में "महीयमान" होकर विचरण करता है वह "आत्मा" है, वह अमृत है और अभय है।"

शान्त होकर इन्द्र चला गया। पर फिर विवेचना की। उसको इस उत्तर में भी समाधान नहीं दिखाई दिया। वह फिर प्रजापति के पास आया। प्रजापति ने पूछा—फिर कैसे चले आए ?

'महाराज ! स्वप्न का आत्मा भी आत्मा नहीं मालूम पड़ता। इसका तो शरीर से कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। आंखें अन्धी होने से आत्मा अन्धा थोड़ा ही हो जाता है ? शरीर रोगी हो आत्मा तो रोगी नहीं होता। वह काटा जा सकता है पर आत्मा तो नहीं काटा जा सकता। पर स्वप्न का आत्मा अनुभव करता है कि मैं मर गया, मैं कट गया, मैं अन्धा हो गया, मैं रोगी हो गया।

शरीर के दोषों से इस प्रकार दूषित होने वाला आत्मा कैसे हो सकता है ?" इन्द्र की और भी गम्भीर शंका थी।

"ठीक कहते हो इन्द्र ! वह आत्मा नहीं है। मैं इस बारे में तुम्हें कुछ और भी बताऊंगा, पर ३२ वर्ष का ब्रह्मचर्य फिर करो।"—प्रजापति ने उत्तर दिया।

३२ वर्ष का फिर ब्रह्मचर्य करके जब इन्द्र आए तो प्रजापति बोले—सुषुप्तावस्था में जो प्रसन्न रहता है स्वप्न भी नहीं देखता वह आत्मा है।"

इन्द्र चल दिया। देवताओं तक पहुंचा भी नहीं था कि उसको फिर शंका हो आई। सुषुप्ति में ? इसमें तो "मैं" का भान ही नहीं होता। "में ऐसा हूं" "मैं यह हूं" की अनुभूति ही नहीं होती। वह आत्मा कैसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिसे "मैं की ही अनुभूति न हो। "मैं" अथवा अपने स्वरूप का ही ज्ञान न हो। आत्मा तो चेतन है। इसे तो ज्ञान होना चाहिए।

सन्तोष नहीं हुआ। समाधान के लिए समित्पाणि होकर फिर प्रजापति के पास आए इन्द्र।

"नहीं हुआ सन्तोष ? और होता भी नहीं अभी इन्द्र। बस थोड़ी सी कसर और रह गई है मंजिल तक पहुंचने में। बस पांच वर्ष का ब्रह्मचर्य और कर लो मैं "आत्मा" का स्पष्ट स्वरूप तुम्हें समझा दूंगा।"
—प्रजापति बोले।

इन्द्र ने पांच वर्ष का और ब्रह्मचर्य किया।

"शतञ्चै का हृदयस्यनाड्यः"

हृदय से निकली मुख्य नाड़ियां भी १०१ हैं। उन सबकी पवित्रता हो तब न पवित्रता होगी सारे सूक्ष्म शरीर और प्राण की। १०१ वर्ष के ब्रह्मचर्य ने इन्द्र की १०१ नाड़ियों को और उनके द्वारा सारे सूक्ष्म शरीर और प्राण को पूर्ण पवित्र निष्कलंक कर दिया।

मघवन्मर्त्यं वा इदं शरीरमात्तं मृत्युना। तदस्यामृतस्या शरीरस्या छिष्ठान मात्तो वै सशरीरः प्रिया प्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रिया-प्रिययोरपहति रुस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः।"

प्रजापति ने अब समझाया—हे इन्द्र ! शरीर अलग है आत्मा अलग है। शरीर के साथ मृत्यु लगी है। यह शरीर इस 'अमृत'—न मरने वाले अविनाशी और अशरीरी—निराकार—आतमा का अधिष्ठान है। जब आत्मा इस मर्त्य शरीर के साथ सम्पृक्त होता है हमको सुख दुःख (प्रिय, अप्रिय) की अनुभूति होती है। शरीर के साथ सम्पृक्त होते हुए इस आत्मा को सुख दुःख न लगे ऐसा नहीं हो सकता। हां जब वह आत्मा इस शरीर को छोड़कर केवल अपने रूप में रह जाता है—अशरीरी—निराकार रूप में हो जाता है उसे कोई सुख दुःख नहीं लगा करता।

मैं कैसा हूं ?

इन्द्र विरोचनाख्यान के इस प्रसंग में एक बात और मिलती है "मैं कौन हूं" का तो स्पष्ट उत्तर प्रजापति ने दे ही दिया, पर सामान्य मनुष्य तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमसे यह भी जानना चाहता है कि प्रतिक्षण वह जो बहुत से काम कर रहा है उन कार्यों लौकिक परिस्थितियों तथा व्यवहारों के बीच उसकी उस "मैं" की स्थिति क्या है ? अर्थात वह पतनोन्मुख है या उत्थानोन्मुख है, पापों की ओर प्रवृत्त हो रहा है या पुण्य की ओर। इसको जानने के चार साधन इस प्रसंग में हैं।

१. **अक्षिणि**—आप दूसरों की आंखों में जो कुछ हैं वह आपकी आत्मा की वास्तविक स्थिति है। इसका अर्थ यह नहीं आप दूसरों की आंख में इन्द्र और विरोचन के समान अपना प्रतिबिम्ब देखने लगें। अपितु इसका अर्थ भावात्मक है। आप क्या हैं ? यदि इस बात को जानना चाहते हैं तो अपनी पीठ पीछे आप दूसरों की दृष्टि में कैसे हैं, मूर्ख हैं, चतुर हैं, स्वार्थी हैं, परोपकारी हैं, दुश्चरित्र हैं या सच्चरित्र हैं, या अशिष्ट हैं, इसका पता लगाइए।

२. **अप्सु**—जिनको आप प्राप्त करना चाहते हैं, जिन चीजों, भावों, संगतियों, विचारों आदि की आपको प्यास है, जिस प्रकार के साधनों में आप अपनी दैनिक, मानसिक, बौद्धिक प्यास बुझाना चाहते हैं उनको देखिए—उनका वर्गीकरण कीजिए आपको पता लग जाएगा कि आपकी आत्मा का स्वभाव कैसा है।

३. **स्वप्ने**—आपको स्वप्न किस तरह के आते हैं ? देखिए। अच्छे आते हैं या गन्दे। तामसिक आते हैं, राजसिक या सात्त्विक। स्वप्न में आत्मा और मन का ही साम्राज्य होता है। और उस अवस्था में आत्मा को अपने ही "कृत, दृष्ट और श्रुत" की अनुभूति हुआ करती है अतः उस अवस्था की घटनाओं और बातों का विश्लेषण करके भी आत्मा की स्थिति का पता लगाया जा सकता है।

४. **सुषुप्तौ**—नींद उनको अच्छी आती है जो निश्चिन्त हों, जिन्होंने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है। जब तक तनाव (Tension) बना रहता है नींद अच्छी आ ही नहीं सकती। और अच्छी नींद का अर्थ है पूर्ण सुषुप्ति। जिसमें कोई स्वप्न न देखे। जिसमें "मैं" तक का ज्ञान न हो। यदि यह अस्वस्था पूर्ण रूप में है तो समझिए आत्मा की स्थिति अच्छी है, अथवा नहीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसी प्रसंग में एक बात और स्पष्ट की जाती है। प्रजापति ने कहा —"**सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् ।**"

प्रश्न आता है कि क्या लोकों के प्राप्त करने में ही कामनाओं की पूर्ति नहीं हो जाती ? फिर "लोक" और "काम" ये दोनों लाभ अलग-अलग क्यों गिनाए ? सीधा-सा उत्तर है कि "लोकान्" का अर्थ है लौकिक व्यवहारों में सफलता और "कामान्" का अर्थ है आत्मिक सफलता। दूसरे शब्दों में लोक और काम ये शब्द अभ्युदय और निःश्रेयस के प्रतिपादक हैं। इस एक आत्मा को जान लेने में दोनों ही पक्षों की सिद्धियां हो जाती है।

"मैं" कहां है ?

कौन हूं, कैसे हूं इन बातों की व्याख्या के बाद इसका भी पता लगा लेना चाहिए कि "मैं" जिसे कहता हूं उस आत्मा का निवास कहां है ? शरीर में उसका वासस्थान कौन-सा है ? इस सम्बन्ध में श्री युधिष्ठिर मीमांसक जी के विचार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं। उन्होंने अनेकों प्रमाणों से सिद्ध किया है कि वैसे तो शरीर में अनेकों हृदय हैं— जैसे कि शतपथ में लिखा है **निकक्षे-निकक्षे हृदयम्**, शरीर के प्रत्येक विभाग में हृदय है परन्तु मुख्यतः तीन हृदय हैं। नाभि, हृदय और मस्तिष्क। आत्मा का हृदय में निवास है इसका अर्थ यह नहीं कि वह इस सामान्य हृदय में—जिसे बोल-चाल की भाषा में हृदय कहते हैं—निवास है अपितु उसका अर्थ है कि वह शरीर के द्युलोक में "मस्तिष्क" हृदय में रहता है। उनके अनुसार—

"**इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि हृदि ब्रह्मणा संश्रितानि**"

इस अथर्ववेद के मन्त्र का अर्थ है कि पांचों इन्द्रियां छठा मन तथा सातवां आत्मा इस 'मस्तिष्क' हृदय में स्थित हैं।

उनका कथन है कि इस मन्त्र में हृदय का अर्थ मस्तिष्क इसलिए लिया जाना चाहिए कि इन्द्रियों का उद्भव स्थान "शिरस" है सामान्य हृदय नहीं।

"**शिरः समाश्रितानीन्द्रियाणि भवन्ति**" (निरुक्त) अर्थात् इन्द्रियां

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सिर-मस्तिष्क में आश्रित हैं। अतः स्पष्ट है कि ये इन्द्रियां जहां रह रही हैं मन और आत्मा भी वहीं है। इस विषय में भी निम्न अनुसंधान तथा अवगाहन बहुत ही मूल्यवान है।

चरक सूत्र स्थान ३०।४ में कहा है—

षडङ्गमङ्गम् (१) विज्ञानम्, (२) इन्द्रियाणि, (३) अर्थपञ्चकम् (४) आत्मा च सगुणः, (५) चेतः, (६) चिन्त्यं च हृदि स्थितम्।

अर्थात्—(१) विज्ञान, (२) इन्द्रियां (३), पांचों अर्थ, (४) आत्मा गुणरहित, (५) चित्त, (६) चिन्त्य ये छः हृदय में स्थित हैं।

यहां इन्द्रियों के साथ 'आत्मा' का स्पष्ट हृदय स्थान कहा है। इन्द्रियों का स्थान उरःस्थानीय हृदय नहीं है अतः यह हृदय निश्चय ही मस्तिष्क-रूप है। और वहीं आत्मा का वास है। यही चरक सूत्र स्थान अ० १७ में लिखा है—

प्राणाः प्राणभृतां यत्र श्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च।
यदुत्तमाङ्गमङ्गानां शिरस्तदभिधीयते ॥

अर्थात्—जहां प्राणधारियों के प्राण सब इन्द्रियां स्थित हैं वह अंगों में उत्तम अंग सिर कहाता है।

आगे पुनः (सूत्र स्थान ३०।७) कहा है—

तत्परममोजसः स्थानं यत्र चैतन्यसंग्रहः।

अर्थात् वह ओज[1] का परमस्थान है जहां चेतना का निवास है।

ओज का स्थान मस्तिष्क में पूर्व प्रोक्तत्र्यर स्थान है। इस स्थान का निर्देश भी चरक (सूत्रस्थान १७।७५) में हृदय नाम से किया है—

हृदि तिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत् सपीतकम।
ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्ना विनश्यति ॥

अर्थात्—जो हृदय में रहनेवाला थोड़ा-सा पीतवर्ण का रक्त है वह शरीर में ओज कहाता है और उसके नाश से मृत्यु हो जाती है।

यहां सर्पिर्वर्णम् पाठान्तर है जिसका अर्थ है गोघृत के वर्ण वाला।

---

१. ओज के विषय में चरक सूत्रस्थान अ० ३०।१०-१४ देखें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऐसा पदार्थ मस्तिष्क में ही वर्तमान है। यही ब्रह्मजल और सोम कहाता है—

पुनः निदान स्थान (८।३) में कहा है—

आत्मनः श्रेष्ठमायतनं हृदयम्।

चरक में ही अन्यत्र कहा—

सर्वेषामेव भावानां हृदयं स्थानमुच्यते।

अर्थात्—सब भावों का स्थान हृदय है।

इन स्थानों में उक्त हृदय मस्तिष्क स्थान ही है। इसकी पुष्टि सुश्रुत शारीरस्थान अ० ४ से होती है। वहां लिखा है—

पुण्डरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम्।
जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतश्च निमीलति॥

अर्थात्—हृदय कमल के समान अधोमुख है। जाग्रत अवस्था में वह विकसित होता है और निद्रावस्था में वह संकुचित होता है।

इस वचन में हृदय का जो विकास और संकोच धर्म बताया है वह लोक प्रसिद्ध उरःस्थानीय हृदय का नहीं है। वह जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में समान रूप रहता है। मस्तिष्क में ये दोनों धर्म उपलब्ध होते हैं। अतः स्पष्ट है कि यहां हृदय मस्तिष्क का ही वाचक है।

तैत्तिरीय उपनिषद् १।६ में साक्षात् हृदयरूप इन्द्रयोनि (आत्म-गृह) का निर्देश है। उसकी स्थिति इस प्रकार दर्शाई है—

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः अमृतो हिरण्यः अन्तरेण तालुके यः स्तन इवालम्बते स इन्द्रयोनिः यत्रासौ केशान्तो विवर्तते व्यपोह शीर्षकपाले।

अर्थात्—यह जो हृदय के अन्दर आकाश है उसमें मनोमय नाश रहित हिरण्यमय पुरुष रहता है जो तालुओं के मध्य में स्तन के समान लटकता है। वहां वह दोनों शीर्ष कपाल को घेरकर केशों का मूल विभाग से रहता है।

इस वचन में हृदय को पुरुष का निवास कहकर अगले ही वाक्य में तालु से लेकर कपाल शीर्ष पर्यन्त भाग को इन्द्र का घर कहा है। इससे स्पष्ट है कि यहां हृदय शब्द उरःस्थानीय अवयव का वाचक नहीं है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस प्रकार मूलवेद और चरक सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थों से यह भली प्रकार प्रमाणित है कि आत्मा का निवास स्थान मस्तिष्कान्तर्गत त्र्यर नामक स्थान विशेष है। जहां हृदय में "आत्मा" का निवास कहा है वहां हृदय शब्द भी मस्तिष्क का ही वाचक है उर:स्थानीय शरीरावयव का नहीं।

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि हृदय शब्द मस्तिष्क का भी वाचक है; केवल उर:स्थानीय मांसमय अवयय का ही नहीं। अत: **अङ्गुष्ठमात्र: पुरुष:** सदा जनानां पुरुष: **सन्निविष्ट:** (कठो० ६।१७) इत्यादि प्रमाणों से लोक प्रसिद्ध हृदय अवयव ही आत्मा का निवास स्थान है ऐसा मानना न केवल अनुचित है अपितु वेद और शरीर विज्ञान से भी विपरीत है। इसलिये कठादि उपनिषदों में भी हृदय का अर्थ मस्तिष्कान्तर्गत ब्रह्मगुहा ही करना उचित है। इतना ही नहीं, उक्त कठश्रुति में पुरुष को अङ्गुष्ठमात्र परिमाण वाला कहा है इतना परिमाण होने पर उसे दृश्य होना चाहिये। वस्तुत: यहाँ तात्स्थ्य उपाधि से मञ्चा: क्रोशन्ति के समान अङ्गुष्ठपर्व परिमाण वाले आज्ञाचक्र अन्तर्गत वर्तमान होने से जीव को भी अङ्गुष्ठपर्वमात्र कह दिया है।

अब रह जाता है तीसरा मत—जीवात्मा सुषुम्णा में निवास करता है। इस प्रसिद्धि का मूल कारण भी यही है कि सुषुम्णा का शीर्ष भाग ब्रह्म गुहा से सम्बद्ध है। इसलिये ब्रह्म गुहा में जो ब्रह्म जल (ओज धातु) है उसको शरीर परिभाषा में मस्तिष्क सुषुम्णान्तरीय जल[३] कहा जाता है। इसी जल में आत्मा निवास करता है।[४]

यह जल आयुर्वेद के मत में वीर्य का सार ओज है। वैदिक परिभाषा में सोम है। देव=इन्द्रियां और देवाधिपति इन्द्र=जीव इसी सोम के पान से जीवित रहते हैं। इसी सोम पान से देव=इन्द्रियाँ मृत्यु का, स्वशक्ति ह्रास का अपवारण करती हैं। इसके नाश से प्राणी का तत्क्षण नाश हो जाता है।

ऋग्वेद का नवममण्डल पवमान सोम का प्रतिपादक है। अधिदैविक जगत् में यह सोम द्युलोकस्थ है वह पार्थिव जल का सूक्ष्मतम सार है। जो सूर्य किरणों द्वारा द्युलोक में क्षरित होता है। उसी से आदित्य प्रका-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शित होता है। अध्यात्म में यह पवमान सोम ओज वा ब्रह्म जल है। यह वीर्य का सूक्ष्मतम सार है। वीर्यऊर्ध्वगामी होता हुआ सूक्ष्म भाव को प्राप्त होकर ब्रह्मगुहा में क्षरित होता है। उसी इन्द्र जीव और देव इन्द्रियाँ कार्यकारो होती है।

प्रसंगात् हम यहाँ योगदर्शन और व्यास भाष्य के दो स्थलों का निर्देश कर देना भी आवश्यक समझते हैं वे इस प्रकार हैं—

सूत्रम्—मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्। विभूतिपाद।

भाष्यम्—शिरः कपालेऽन्तश्छिद्रं प्रभास्वरं ज्योतिस्तत्र संयमं कृत्वा सिद्धानां द्यावापृथिव्योरन्तरालचारिणां दर्शनम् ॥३२॥

अर्थात्—शिरः कपाल के अन्दर एक छिद्र है उसमें प्रकाशवाली ज्योति है वहाँ संयम करने से द्युलोक और पृथ्वी लोक के मध्य विचरण करने वाले सिद्धों का दर्शन होता है।

सूत्रम् हृदये चित्तसंवित् ॥ विभूति ३४ ॥

भाष्यम्—यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं। इम तत्र विज्ञानं तस्मिन् संयमात् चित्तसंवित् ॥३४॥

अर्थात—यह जो ब्रह्मपुर है उसमें गर्तरूप कमल समान स्थान है वहाँ विज्ञान रहता है। उसमें संयम करने से चित्त का बोध होता है।

इन उद्धरणों में मूर्धा और हृदय का पृथक् निर्देश होने से भ्रान्ति हो सकती है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर दोनों में कोई विरोध नहीं है। प्रथम सूत्र और उसके भाष्य में ब्रह्मरन्ध्र में संयम का फल कहा है और द्वितीय सूत्र में ब्रह्मगुहा रूप ब्रह्म हृदय में। ब्रह्मपुर मस्तिष्क के अन्तर्गत ब्रह्मगुहा के लिये ही प्रयुक्त होता है यह पूर्व उद्धरणों से स्पष्ट है। और वही मनः या चित्त की स्थिति कही गई है। अतःदोनों उद्धरणों में दो पृथक् स्थानों का निर्देश होने से कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार गम्भीर विवेचना करने से स्पष्ट हो जाता है कि लोक प्रसिद्ध उरःस्थानीय हृदय अथवा सुषुम्णा दोनों ही मूलतः आत्मा के निवास स्थान नहीं हैं। **आत्मा का निवास वस्तुतः मस्तिष्कान्तर्गत दोनों आज्ञाचक्र के मध्य वर्तमान ब्रह्मगुहा (त्र्यर, वैदिक नाम)** ही है। वेद ने आत्मनिवास स्थान का जो वर्णन किया है वह शरीर के किसी अन्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अवयव पर घटित नहीं होता। अतः वेद के मत में "आत्मा" का निवास स्थान ब्रह्मगुहा ही है। उपनिषद् वचनों में भी हृदय शब्द का अभिप्राय भी उक्त स्थान से ही है। वैदिक वाङ्मय में मस्तिष्क को भी हृदय शब्द से कहा जाता है। सुषुम्णा का मूल भी यही संवद्ध है। अतः लोक-प्रसिद्धियों का भी इस अर्थ में अनुगमन हो जाता है।

यह "मैं।" इस 'मैं" की महत्ता मनुष्य ही समझ सकता है। क्योंकि परमात्मा ने उसे मस्तिष्क प्रधान बनाया है। उसका जीवन भरा है। "मैं" उस यज्ञ का होता है। परमात्मा इस यज्ञ का ब्रह्मा है। "मन" इस यज्ञ का अध्वर्यु है। "बुद्धि" इस मैं की उद्गाता है। "श्रद्धा" इस यज्ञ में "मैं" की पत्नी है।

मनुष्य को चाहिए कि वह इस सारी नियमित योजना को समझे। जन्म में, मृत्यु में, सृष्टि में प्रलय में संसार के एक-एक परिवर्तन में एक नियम और योजना के अस्तित्व का अनुभव करे और अपने-आपको भी इस महान् योजना का एक अभिन्न अंग बना लें।

उस बृहद् योजना का अंग बनने के लिए ही शास्त्रों ने "धर्म" रूप साधन दिया। जो मनुष्य इस धर्म का सहारा लेकर आगे बढ़ता है वह स्वयं इस बृहद् योजना का अभिन्न अंग बनता चला जाता है।

"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।"

जिसके द्वारा यह संसार स्वर्ग हो जाए और अगला संसार भी स्वर्ग बने वही धर्म है। "इह" को छोड़कर केवल "पर' की, "सम्भूति" को छोडकर केवल "असम्भूति" की चिन्ता करने को नहीं कहता। इसीलिए **ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या**" की अशास्त्रीय घोषणा करके मनुष्यों को गलत रास्ते पर लगाने वाले तथा कथित "धार्मिकों" को भगवान् कृष्ण ने असुरों के वर्ग में रखा है।

इसी प्रकार "पर" की चिन्ता करके "इह" की चिन्ता करने वाले तथा अपने इसी "इह" को ही सुधारने में लगे रहने वाले भी असुर हैं। देव "इह" और "पर" दोनों को ही साथ में लेकर चलते है। उनके लिए "निः श्रेयस" तो लक्ष्य है ही "अभ्युदय भी आवश्यक है। धर्म इन दोनों को ही सिद्ध करता है।

जो मनुष्य अपने लक्ष्य को जान लेगा, अपना उत्तरदायित्व समझ लेगा, मार्ग पहचान कर परमात्मा की अमर ज्योति के प्रकाश में उस पर बढ़ता जाएगा, तथा धर्म को सर्वदा साथ रखेगा उसको अपने जीवन में निश्चित ही सफलता मिलेगी, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

"नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय"—"मैं" को जानो

क्योंकि आनन्द प्राप्ति का और कोई मार्ग ही नहीं है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'जन-ज्ञान' आप से प्रार्थना करता है—

● "जन-ज्ञान' आर्यसमाज को महर्षि दयानन्द का आर्यसमाज बनाने के लिए कृतसंकल्प है।

● 'जन-ज्ञान' आपस की फूट, पार्टीबाजी और झगड़ों की छाया तक से दूर रहकर 'वेद' के प्रसार और अवैदिक मतों की समाप्ति के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है।

● 'जन-ज्ञान' एक पत्र नहीं, प्रकाशन संस्थान है। हमारा उद्देश्य सस्ता, सुन्दर, आकर्षक वैदिक साहित्य विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित करना है।

यदि आप हमारे लक्ष्य से सहमत हों तो—

आज ही

१. ६) भेजकर इसके वार्षिक सदस्य बनिए और अपने इष्ट-मित्रों को भी बनाइए।

२. साहित्य प्रकाशन के लिये आप जो भी सहयोग दे सकते हों, देने की कृपा करें।

भूलिए नहीं, साहित्य द्वारा ही महर्षि दयानन्द का लक्ष्य पूर्ण होगा···

जन-ज्ञान प्रकाशन
१५९७, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५

विनीत
भारतेन्द्र नाथ
संचालक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रसिद्ध विचारक

और

"मैं कौन हूं"

के

लेखक

प्रो० संतराम एम० एस-सी०

देश के गिने चुने विचारकों में से एक, शिक्षा धर्म और राजनीति के साथ साथ विज्ञान के भी मर्मज्ञ, श्री संतराम का ग्रन्थ "मैं कौन हूँ ?" आप पढ़ चुके।

वे दिन रात चिन्ता करते हैं देश की, नवयुवकों की और गिरते हुए चरित्र की। राष्ट्र की उलझी परिस्थितियां उन के मन को मथती रहती हैं।

उनका चिन्तन और विचार राष्ट्र की अनमोल निधि हैं। परमात्मा से हम उनके दीर्घ जीवन और स्वास्थ्य की कामना करते हैं। हमें विश्वास है कि उनका मार्गदर्शन 'जन-ज्ञान' को निरंतर प्रेरणा देता रहेगा।

—संपादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान (मासिक) Regd. No. D. 1631

१५६७, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५ : अक्टूबर १९६८ :

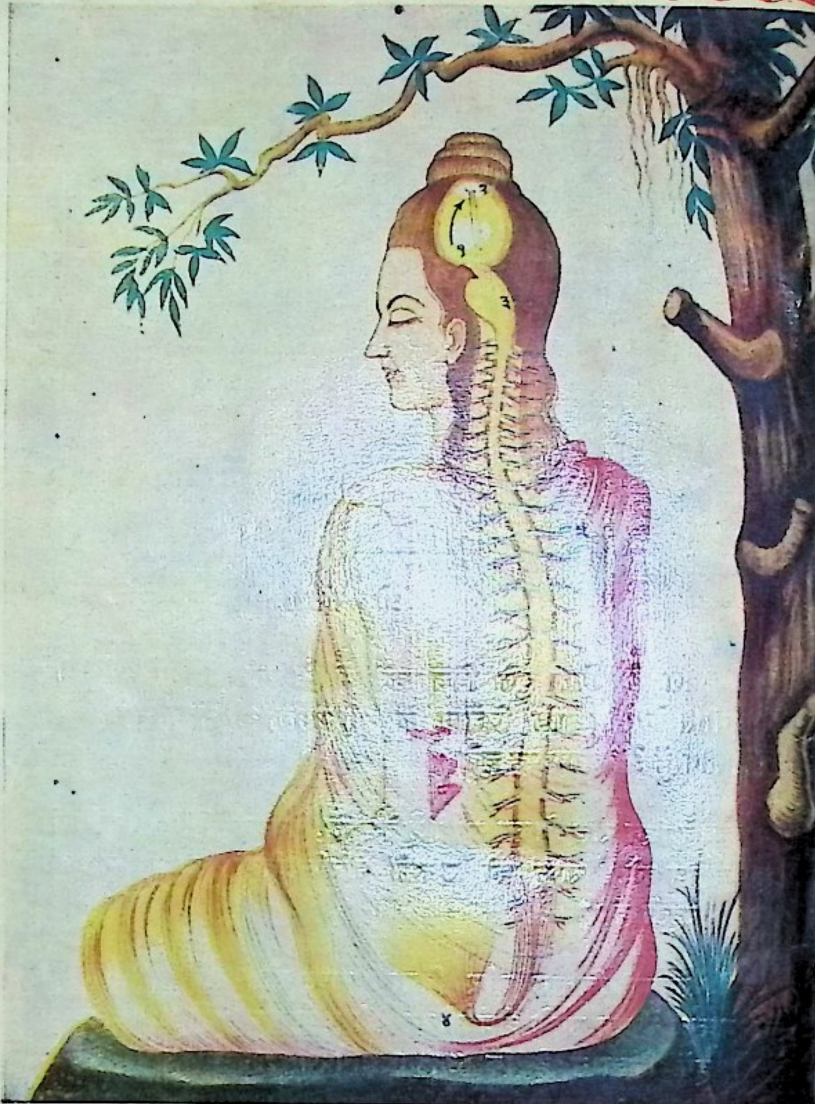

आत्मचिन्तन में लीन : प्रकाशयुक्त "मैं"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi